CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ह्रि. ३५५ व्र. १२८

गद्य-भारती

केशवप्रसाद मिश्र
पद्मनारायण आचार्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नं.१३८

हि-३६८

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गद्यभारती

(राष्ट्रभाषा की चुनी हुई गद्यरचनाएँ)

(संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण)

—:o:—

संपादक—
केशवप्रसाद मिश्र
पद्मनारायण आचार्य
अध्यापक, हिन्दी विभाग,
हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी

संस्कृत सीरीज आफिस
बनारस
पो. बाक्स

एजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस
बनारस।

चतुर्थ संस्करण १०००]   १९५१   [मूल्य ३॥)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुद्रक—परेशनाथ घोष,
सरला प्रेस, बाँसफाटक, बनारस ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आमुख

जब समस्त भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत थी, उस समय उसका नाम 'भारती' था। वह भारत की 'भाषा' या उसकी अन्तरात्मा 'सरस्वती' थी। वह भाषा अपने वाङ्मय या 'सरस्वती' को वहन या धारण करने की इतनी प्रकाम क्षमता रखती थी कि उपासकों ने भाषा और भाव—शरीर और आत्मा—दोनों की एकता मानकर विग्रह में ही देवता की प्रतिष्ठा कर ली।

आज सारे हिन्द की राष्ट्रभाषा हिन्दी है। भारत की भारती और हिन्द की हिन्दी में तात्विक कोई भेद नहीं है। पर आज उसका वह विशुद्ध रूप नहीं है जो उसके स्थानी का था। यद्यपि पिछले दिनों में भी 'भारती' के नैसर्गिक तीन रूप—संस्कृत, प्राकृत, तथा अपभ्रंश—अपने-अपने क्षेत्र में प्रचलित थे, जैसा कि हेमचन्द्र ने—

'भाईरहि जिवँ 'भारइ' मग्गेहिं तिहिंवि पवट्टइ'
(सिद्धहेमप्राकृ० व्या० ८।४।३४७)

(भागीरथी के समान 'भारती' तीन मार्गों में चलती है।)

यह उक्ति उद्धृत करके इस बात की सूचना की है, तथापि आज जैसा संकर उसमें कभी नहीं था। देश में विविध-भाषा-भाषी विदेशियों के निवेश से उनके साथ वाग्व्यवहार की आवश्यकता ने लेन-देन का ऐसा रास्ता खोल दिया कि अभारतीय एशिया और यूरोप के बहुत से चलतू शब्द उसमें घुस पड़े। बात यहीं तक रहती तो गनीमत थी; पर आज तो राजनैतिक खग्रास ने हिन्दी, उर्दू, हिन्दुस्तानी का एक नया झगड़ा खड़ा कर दिया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी के संबंध में "गद्यभारती" के संपादकों का वही मत है जिसका प्रतिपादन आचार्य शुक्लजी ने इस पुस्तक में संगृहीत अपने भाषण में किया है। वस्तुतः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्द की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही है, हिन्दुस्तानी, उर्दू आदि उसके भिन्न-भिन्न शैली में ढले और भिन्न-भिन्न परिस्थति में पले रूपान्तरमात्र हैं।

इस संग्रह में यथान्याय. राष्ट्रभाषा के सभी रूपों को स्थान दिया गया है। यह संग्रह उन विद्यार्थियों के लिये प्रस्तुत किया गया है जिनको हिन्दी के प्रौढ साहित्य का अध्ययन न करके भी उसकी वर्तमान प्रचलित शैलियों का परिशीलन और अनुकरण करना अभीष्ट है। इस अभीष्ट-सिद्धि के लिए प्रायः देश के भविष्णु नवयुवक अधिकाधिक उत्सुक और प्रयत्नशील हो रहे हैं—यह सौभाग्य की बात है, क्योंकि 'भारत' से अपरिचित भारतीय केवल अभारतीय ही नहीं और कुछ भी है। इसमें गद्य के प्रायः सभी भेदों का सन्निवेश किया गया है। इससे विद्यार्थियों को एकत्र ही सब प्रकार के नमूने मिल जायँगे और विविधता के कारण पढ़ने में विरसता का अनुभव भी न होगा।

संकलन के समय लक्ष्य था प्रयोजन-सिद्धि; इसलिए दृष्टि कृति के गुणों की ओर ही प्रवृत्त थी, कर्त्ता की ख्याति की ओर नहीं! अतः इसमें बहुत से अविख्यात लेखकों की कृतियाँ भी आ गई हैं और कई लब्धप्रतिष्ठ लेखक छूट गये हैं। आशा है, इससे किसी प्रकार की दुर्भावना न उत्पन्न होगी।

प्रत्येक लेख के अन्त में जो कुछ समीक्षा का प्रयास है वह अध्यापन की सर्वतोमुखी गुरुता का निदर्शनमात्र है, सधर्मा अध्यापक के लिए मार्गप्रदर्शन की धृष्टता नहीं।

उद्देश्य न रहने पर भी प्रायः भारत के सभी प्रान्तों के लेखकों की कृतियाँ इस संग्रह में स्वतः सन्निविष्ट हो गई हैं, अतः इसका 'गद्यभारती' नामधेय स्वयमागत है, बलात्कृत नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विषय-सूची

क्रमसंख्या कृति	कर्ता	पृष्ठ
१. कलरव	रवीन्द्रनाथ ठाकुर	१
२. रोमांचकारी कुश्ती	श्रीराम शर्मा	३
३. काला शैतान	ब्रजमोहन शर्मा	१३
४. ग़बन	प्रेमचन्द	२६
५. नुमायश	हरदयाल 'मौजी'	४५
६. शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय	जैनेन्द्रकुमार	५५
७. वंशज	सुभद्रा काटजू	७४
८. पत्र-लेखन-कला	बनारसीदास चतुर्वेदी	८०
९. जयशंकर प्रसाद	सूर्यकान्त (लाहौर)	९२
१०. कल की बात	अन्नपूर्णानन्द वर्मा	९७
११. पद्मसिंह शर्मा	मोहनलाल महतो	१०४
१२. पगली का पत्र	अयोध्यासिंह उपाध्याय	१११
१३. स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू	ब्रजमोहन वर्मा	११८
१४. शब्दों का अर्थ	जवाहरलाल नेहरू	१३०
१५. रूप	रामकृष्ण गर्ग	१३९
१६. हिन्दी की उत्पत्ति	सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या	१५५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

क्रमसंख्या कृति	कर्ता	पृष्ठ
१७. हिंदी और हिंदुस्तानी	रामचन्द्र शुक्ल	१७०
१८. दो मसजिदें	जवाहरलाल नेहरू	१८६
१६. ऊँह (अनुवाद)	मिर्जा फरहतुल्ला 'देहलवी'	२००
२०. गुण्डा	जयशंकर प्रसाद	२०७
२१. शतरंज के खिलाड़ी	प्रेमचन्द	२२२
२२. 'जोग' की झाँकी	काका कालेलकर (वर्धा)	२३८
२३. फूलवालों की आख़िरी सैर	अख्तरहुसेन रायपुरी	२४६
२४. कलाजगत् और वस्तुजगत्	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२६५
२५. दो बातें	अयोध्यासिंह उपाध्याय	२७७
२६. ध्रुवस्वामिनी	जयशंकर प्रसाद	२८१
२७. अभिनन्दनपत्र	(हि० वि० वि० काशी)	२६८
२८. रामचरितमानस के सिद्धान्त, साधन और साध्य		३०१
२६. हिन्दी की गद्यशैली		३०७

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गद्यभारती

——०——

कलरव

× १ ×

परमात्मा बड़े बड़े साम्राज्यों से विमुख हो जाता है, परन्तु छोटे-छोटे पुष्पों से कभी खिन्न नहीं होता।

× २ ×

अन्याय पराजय नहीं सहन कर सकता; धर्म कर सकता है।

× ३ ×

प्रत्येक बालक यह संदेश लेकर संसार में आता है कि ईश्वर अभी मनुष्यों से हताश नहीं हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

× ४ ×

जो उपकार जताने का इच्छुक है, वह द्वार खटखटाता है। जिसके हृदय में प्रेम है, उसके लिए द्वार खुले हैं।

× ५ ×

फूल चुनने के लिए ठहरो मत। आगे बढ़े चले चलो, तुम्हारे मार्ग में निरंतर फूल खिलते रहेंगे।

× ६ ×

जड़ें पृथ्वी के नीचे फैली हुई वृक्ष की शाखाएँ हैं। शाखाएँ आकाश में फैली हुई वृक्ष की जड़ें हैं।

× ७ ×

रात्रि ने सूर्य से कहा—"चंद्रमा द्वारा तुम अपने प्रेम-पत्र मेरे पास भेजते हो। मैं घास पर आँसुओं में अपना उत्तर छोड़ जाती हूँ।"

× ८ ×

महापुरुष जन्म-सिद्ध शिशु है।

जब वह मरता है, तो अपना शिशुत्व संसार को प्रदान कर जाता है।

× ९ ×

हथौड़ी की चोट से नहीं जल-नर्तन के संगीत से, पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े इतना सुन्दर रूप धारण करते हैं।

× १० ×

यदि तुम भूलों को रोकने के लिए द्वार बन्द कर दोगे, तो सत्य भी बाहर रह जायगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रोमांचकारी कुश्ती

वेदान्त का प्रथम सूत्र है—'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' और संसार के अनेक जीवों का जीवन-सूत्र है—'अथातो युद्धजिज्ञसा'। युद्धजिज्ञासा मानव-धर्म का मूल-मन्त्र न हो; पर साम्राज्यवादी प्रवृत्ति युद्ध-जिज्ञासा-रूपी शराब परही जोर मारती है। व्यक्तिगत रूप से भी युद्ध-जिज्ञासा संसार में चली आई है। जंगल के जीवों में भी कुछ ऐसे बिगड़ैल, लड़ाकू और अनुभव-हीन होते हैं कि, तनक-सी बात पर वे कट मरते हैं। जीवन उनके लिए खिलवाड़ होता है—मरने या मारने के लिए। साम्राज्यवाद तो इस दुपाये—मनुष्य—की ही करतूत है—दूषित पूंजीवाद की सन्तान।

शहर और आबादियों की युद्धजिज्ञासा, पापलिप्सा और अनुपम त्याग की घटनाएँ हम आँखों देख लेते हैं। और कुछ नहीं होता, तो थियेटर और सिनेमाओं में सुखान्त और दुःखान्त नाटक देख लेते हैं, पर जंगल के रंगमंच पर खेले जानेवाले नाटकों को कम ही लोग देख पाते हैं, और देखकर कितने हैं, जो अपनी कल्पनाशक्ति को जंगल के दृश्यों से पैनी कर सकें—ऐसी पैनी कि वह दिलों को चीर कर पार हो जाय।

जंगल के रोमांचकारी नाटक आबादी से दूर, प्रकृति के प्रांगण में खेले जाते हैं, जहाँ पर जंगली जंतुओं का ही बोलबाला होता है। वे रोमांचकारी ऐसी घटनाएं होती हैं, जिन्हें देखकर जमा हुआ भी खून एक बार दौड़ने लगता है, हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, और तन्मयता तो ऐसी हो जाती है, मानो दर्शक समाधिस्थ हो गया हो।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक दिन जेम्स इंगलिस नामक एक गोरा अपनी नील की कोठी का निरीक्षण कर रहा था। इतने में उसको खबर लगी कि कोठी से कुछ दूर शेर ने एक गाय मारी है। शीघ्रता से उस ओर जाकर देखा, तो हाल की मारी हुई गाय की लाश मिली—गरम खून से लथपथ। करीब ही शेर के पद-चिह्न भी मिले। बस, फिर क्या था, बैठने का स्थान बनने लगा। एक गड्ढा खोदा गया। चारों ओर से उसे काँटों और लक्कड़ों से सुरक्षित बना कर इंगलिस साहब एक गुमाश्ते के साथ उस गढ़े में घुस गये।

दस बजे रात का समय होगा। अर्धचन्द्र बादलों के क्षीण टुकड़ों से टक्कर लेता हुआ, छिप-छिप कर अपने मार्ग पर जा रहा था। दूर—काफ़ी दूर—पर रात्रि की नीरवता में गंगा की धार अनवरत रूप से जम्हाई-सी लेती सुनाई पड़ती थी। ठंडी हवा का झोंका जैसे ही लम्बी घास से अठखेलियाँ करता निकलता, वैसे ही जान पड़ता, मानो रात्रि देवी के हृदय से एक ठंडी कँपकँपाती-सी आह निकल रही है। यह आह 'साँय-साँय' और 'हर्र-हर्र' करती मैदान की ओर घबराई-सी निकल जाती। पेड़ों की डालियाँ और लताओं की फुनगियाँ भी, खुशामदी मुसाहिबों की भाँति उसी हर्र ध्वनि के साथ हाँ-में-हाँ मिलातीं। सहसा नदी किनारे से चकवा की पुकार 'केऊँ' निस्तब्धता को भंग करती; पर फिर शीघ्र ही नीरवता का राज्य फैल जाता। कुछ देर के लिए जंगल की आत्मा साँस-सी साध लेती। थोड़ी देर बाद उस दृश्य की फिर आवृत्ति होती।

गढ़े में बैठे दोनों आदमी सजगता की प्रतिमा बने प्रकृति की छटा देख और महसूस कर रहे थे। वायु के मन्द झकोरों, पेड़ों की शाखाओं की किलोलें, चकवा की केऊँ, चन्द्रमा की शराबी की-सी चाल और जंगल की आत्मा की गोचर छटा को देखते और अनुभव करते हुए जब कभी सेहीं, लोमड़ी अथवा गीदड़ के पैर की आहट

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होती, तब शेर की आशंका से उनका हृदय धौंकनी की भाँति चल उठता।

कुछ प्रतीक्षा के उपरान्त गुमाश्ते ने साहब बहादुर का हाथ दबाया और कान में इतने धीरे से कुछ कहा कि साहब बहादुर केवल इतना ही सुन पाये कि दाईं ओर को देखो। उधर जो गोरे ने आँख उठाई, तो रोमांचकारी बिजली-सी शरीर में दौड़ गई। धुँधले क्षितिज पर, रात्रि की लम्बी और भूरी छाया में, एक भीमकाय आकार अस्पष्ट-सा दिखाई पड़ा, जिसको गुमाश्ते ने आसाधारण सूअर बताया। वह ठीक गड्ढ़े की ओर आ रहा था--धीमी, अलमस्त और निश्शंक चाल से। कभी-कभी आत्मतोष प्रकट करने के लिए थम कर वह 'हुक्ख' करता और अपनी थूथनी से ज़मीन खोदकर जड़ें खाता आता था। उसकी लचीली थूथनी हलके फाले की भाँति ज़मीन को फाड़ती थी।

गोरे ने बन्दूक उठाकर जैसे ही छाती का निशाना साधा, वैसी ही सूअर ने अपना सिर ऊपर उठाया, और उसका आकार स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा। अपार शक्ति और शान का वह प्रतिबिम्ब अकड़ कर खड़ा हो गया। उसी समय अकस्मात् जंगल से गुर्राहट और गर्जना सुनाई पड़ी। बनराज अपने शिकार-पथ पर था। गुमाश्ते ने गोरे की बाँह ज़ोर से दबाई और उसके कान से अपना मुह लगा कर अतिक्षीण ध्वनि में कहा—"शेर।"

गड्ढे में दोनों आदमियों की स्नायुएँ खिंच गईं, उत्सुकता से दिल की धड़कन बढ़ी। शूकरराज चौकन्ना, पर लापरवाई से, खड़ा था। उसके ढंग से प्रतीत होता था कि उसका रोम-रोम कह रहा है—"शेर हो अथवा मल्कुल मौर, 'यहाँ कुम्हड़ बतियाँ कोउ नाहीं। शेर और शेर का नगड़दादा मेरी काँपों (tusks) पर......" सिर झुकाकर और क्रोधपूर्ण झटके से उसने भयावना शब्द किया—"हू-हुक्ख।" जंगल से आवाज़ आई--"ऊँगा।" सूअर ने उत्तर दिया वही—"हू-हुक्ख।" देहात

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में जैसे एक लठैत किसी को गाली दे और उसका प्रतिद्वन्द्वी गाली में ही उसे उत्तर दे और फिर शीघ्र ही खटाखट लाठी चलने लगे, ठीक वैसे ही शेर के चैलेंज को सूअर ने स्वीकार कर लिया। शेर ने सूअर को भागते न समझ कर और भी कम्पोत्पादक गर्जना की, मानों शेर ने भी चैलेंज की स्वीकृति दे दी हो। तुरन्त ही उस अखाड़े में एक बलशाली पट्ठा शेर कूद पड़ा। वह क्रोध से भन्नाया हुआ था। होठ पीछे खींचे, मूँछें खड़ी किये, दाँतों का प्रदर्शन करते और पूँछ को अपनी बगलों से मारते हुए, गर्दन के बड़े बालों को सतर किये, विजय और युद्ध-जिज्ञासा से शेर दाँवघात करने को आ खड़ा हुआ। यौवन की उन्मत्तता में—नदी की बाढ़ के समान--वह किसी को गिननेवाला न था। सैकड़ों सूअरों को उसने खा डाला था। दो-चार ने हमला भी किया था; पर एक ही थाप में उसने उनका कचूमर निकाल दिया। यों थोड़ी-बहुत खरोंथ और एक-आध घाव सूअर की काँप के लगे थे; पर वे सब सूअरों की ओर से आत्मरक्षा में लगे थे। उसके गर्जन-तर्जन और गुर्राहट से हिरन और गाय-भैंस घबराकर ढीले हो जाते थे। फिर उसका भव्बराता यौवना ! यौवन की आँधी अनेकों को उखाड़ फेंकती है। यौवन ऐसा नशा है कि उसके सुरूर में कुछ-का-कुछ दिखाई पड़ता है। जवानी में जवानों के पैर ज़मीन पर ऐसे पड़ते हैं, मानो उनमें 'इलैस्टिक' लगी हो। दुःख, भय और आशंका-रूपी अन्धकार यौवन प्रभात से पलायमान हो जाता है। शेर भी जवानी की धार में बह रहा था ! दम तो उसमें बेहद था, पर अनुभव की पूरी घाटी में होकर वह न गुज़रा था, इसलिए जब वह सूअर से भिड़ने आया, तब वह समझता था कि सूअर उससे डरेगा और अवसर पाकर वह उसे मार गिरायेगा। सूअर ने बचाव के लिये किसी झाड़ी का सहारा लिया होगा।

और सूअर ? सूअर ने शेर की तनक भी परवा न की। उसने 'हू-हुक्ख' की ताल नहीं ठोंकी, वरन् शेर की ओर उसने एक छोटी दौड़-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सी भी लगाई और गर्दन के बाल फुलाकर अपनी पूँछ ज़रा ऊपर को की। सूअर की पूँछ का उठना आक्रमण का सिगनल है। सूअर विकट भट होता है, और एक बार हमले की ठान कर पीछे पीठ नहीं दिखाता। सूअर ने भी समझा कि उस स्थान पर वह पहले से क़ाबिज़ था। शेर का वहाँ आना मदाख़लत बेजा है। इसलिए अपने अधिकार की रक्षा के लिए शेर को सबक सिखाना चाहिए।

मैदान में दोनों लड़ाके जम गये। शेर घात लगाकर कभी छपकता और कभी सूअर के चारों ओर रेंगता-सा चलता कि किसी प्रकार पीछे से उस पर हमला करे। सूअर भी शेर की घात का ख़याल करके पैंतरे बदलता और अपना सिर उसकी ओर ही रखता। दाएँ-बाएँ गोलाकार चक्कर में, शेर और सूअर सम्हले और तने, कुछ देर तक हमले का अवसर देखते रहे। पैंतरों का चक्कर कुछ और संकीर्ण हुआ। गुर्राहट और हू-हुक्ख के ताल दोनों ही पहलवान ठोंक रहे थे। दावघात और ताल-ठुकाई कुछ ही सेकेण्डों के लिए हुई। शेर एक बार लम्बा होकर ज़मीन से मिल-सा गया। पुट्ठों और स्नायुओं को खींच कर उसने अपने कसे-कमाये और फुर्तीले शरीर को एकत्र-सा किया, और जंगल को दहलाने वाले गर्जन के साथ शक्ति का वह पुंज विद्युत् गति से सूअर पर टूट पड़ा। एक मिनट के लिए दोनों की लड़ाई में रोमांचकारी उत्तेजना थी। एक ही तेज़ और कौशलपूर्ण थाप से जो सूअर के जबड़े पर पड़ी थी, बलिष्ठ सूअर लड़खड़ाने लगा। उस थाप के साथ शेर का बोझा तीव्र गति से सूअर के ऊपर गिरा था; पर सम्हल कर सूअर ने 'हू-हुक्ख' की, और क्रोध-पूर्ण जलती हुई आँखों से पैंतरा कर उसने अपनी अटूट गर्दन और मज़बूत सिर से तीन चार बार, दाएँ और बाएँ, शेर पर किये।

सूअर के पेंच चार ही होते हैं, और वे चारों पेंच उसको खूब रवाँ होते हैं—सीधी टक्कर मारना, दाएँ और बाएँ काँपें घुसेड़ना, और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कच-कच करके दाँतों से चबा डालना। अन्तिम पेंच वह प्रायः अपने अन्तिम समय में ही करता है। घायल होकर जब वह आदमी को चबाता है, तो आदमी का बचना कठिन ही है। पैर पकड़ कर चबाता है और ऊपर घुटने और जाँघ तक हड्डियों को कच-कच करता हुआ तोड़ डालता है—भुरकुट कर डालता है। साधारणतया टक्कर मारता हुआ वह भाग जाता है। शिकारी निशाना चूकने पर टक्कर लगाते ही कलमुँडी खाकर गिरता है, और हाथ-पैर झाड़ तथा थोड़ी-बहुत चोट झेल कर बच जाता है। पेंच नम्बर दो और तीन—दाएँ और बाएँ टक्कर मारने के मानी हैं, पैनी काँपों को शत्रु के शरीर में इंचों गहरी और लम्बी घुसाना। कभी कभी लगातार एक के बाद दूसरे, पहले, दूसरे और तीसरे नम्बर के पेंचों को चला कर वह क़हर ही ढाता है। अब सूअर ने सम्हलकर दूसरे और तीसरे नम्बर के पेंच चलाये, और शेर की बगल में तीन-चार छेद कर दिए। शेर के शरीर से खून के झरने-से झरने लगे।

इस प्रकार पहली कुश्ती बराबर पर छूटी; पर मार अधिक खाई सूअर ने। शेर के प्रहार से सूअर के सिर और गालों पर खाल और मांस के चिथड़े लटक रहे थे; ऊपर सिर की खाल उधड़ कर बुरके की भाँति सूअर की आँखों पर आ पड़ी थी। फलस्वरूप वह अर्ध अन्ध-सा हो गया था; लेकिन सूअर की युद्धप्रवृत्ति और क्रोध की माय घटी न थी, वरन् और भी प्रज्ज्वलित हो गई थी।

शेर साहब पर भी बुरी तरह बीत रही थी। छाती और बगल के छेदों से फ़व्वारे फूट निकले थे। पूँछ की गति उसकी अनिश्चित मनोवृत्ति की द्योतक थी। उससे झलक रहा था, मानो शेर कह रहा हो कि मैं किस बला में आ फँसा?

सूअर क्रोध से भन्ना रहा था। बिगड़ कर और ललकार—'हू-हुक्ख' कर वह शेर पर टूट पड़ा। भगकर उसने पेंच नम्बर एक को चला कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरे, तीसरे और चौथे नम्बर के पेंचों को क्रमानुसार और क्षणों में ही चलाना चाहा; पर फुर्ती की प्रतिमा शेर ने सूअर के प्रथम दाँव को बचाया, और जैसे दोहरी-सी होकर बिल्ली चूहे पर टूट पड़ती है; वैसे ही शेर उछल कर सूअर की गर्दन पर आ गिरा। शीघ्र ही सूअर के अगले पुट्ठों में शेर के कीले घुस गये, और उसके पंजों ने उन्मत्त और कम्पित सूअर को फाड़ना प्रारम्भ किया। भँभोड़ने और फाड़ने से भारी-भरकम सूअर की दुर्दशा होने लगी, ऐसा प्रतीत हुआ कि अपनी उद्दण्डता का फल सूअर को मिल गया। शेर तगड़ा ही नहीं पड़ रहा था, वरन् अपने प्रतिद्वन्द्वी को ठंढा करता हुआ दिखाई देता था। सूअर लड़खड़ा कर आगे को गिरा। मार की चोट से, अथवा दाँव-घात से, सो कहना कठिन है। यह हुई दूसरी कुश्ती; जो बराबर रही; पर शेर ने सूअर की दुर्गति कर डाली।

मगर सूअर के गिरने का फल हुआ शेर का सूअर के सिर पर होकर आगे गिर पड़ना। शेर के आगे गिरते ही सूअर उसकी छाती पर चढ़ बैठा। अपने अगले पैर शेर की छाती पर रख कर तीन चार विकट हमले सूअर ने किये। अपनी पैनी और बड़ी काँपों से उसने शेर की छाती को फाड़ डाला। जैसे कड़ी ज़मीन में फाला चर्र करता हुआ जाता है, वैसे ही सूअर की तीखी काँपों ने शेर की छाती को जोत-सा डाला। 'आव, घुर्र' करके शेर पंजे और मुँह चलाता था; पर शेर की तोमड़ी बन्द थी, और सूअर का भी नाकों दम था। चोट करके, शेर को छोड़ कर, सूअर लड़खड़ाता और थका हुआ-सा कुछ दूर जा बैठा; पर क्रोध और युद्ध-जिज्ञासा से अब भी वह अपने जबड़े कच-कच करके चला रहा था। क्रोधित शेर हाँफता हुआ एक ओर वहीं पड़ा-पड़ा फूँ-फाँ करके अपना रोष प्रकट कर रहा था। यह थी तीसरी कुश्ती, जिसमें सूअर तगड़ा पड़ा, पर जोड़ रहा बराबर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राण-वेदना को कम करने के लिए दो आवाजें हुईं—"धाँय-धाँय !" जंगल गूँज गया। चकवा ने कौतूहल से पूछा—"केंऊँ" दूसरे तट से चकवी ने उत्तर दिया—"केंऊँ ?" जंगल प्रतिध्वनित हुआ—'अ र र र घ र र र ?' और दोनों लड़ाके शान्त हो गये।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुश्ती

यह एक नये ढङ्ग का निबंध है। इसे अंग्रेजीवाले तो स्केच कहेंगे पर हिन्दी में शिकारी लेख, रेखानिबंध अथवा केवल 'निबंध' कह सकते हैं। इस निबंध में उस संघर्ष का चित्र है, वह लड़ाकू और अजेय प्रवृत्ति अंकित है जो मानव मात्र का हृदय गुदगुदा देती है--बच्चे बूढ़े, स्त्री-पुरुष सभी उसका स्वाद लेते हैं। प्रकृति और घटना के शब्दचित्र और मनोविज्ञान से इस मृगया-साहित्य में कुछ और ही बात आ जाती है–न किया शिकार भी आनन्दानुभूति का कारण बन जाता है।

श्रीराम शर्मा इस साहित्य के जन्मदाता और लोकप्रिय लेखक हैं। स्वर्गीय आलोचक पद्मसिंह शर्मा ने लिखा था—आप प्रसिद्ध और सिद्ध--अचूक निशाना लगानेवाले शिकारी हैं। आपके लेखों का भी निशाना सीधा पाठकों के हृदयों पर जाकर बैठता है। पढ़नेवाला लोट-पोट हो जाता है। अपने ढङ्ग के आप एक ही लेखक हैं।......।......। आपकी वर्णन-शैली बड़ी सजीव, भावविश्लेषण मनोविज्ञानसम्मत और भाषा विषय के अनुरूप बड़ी सुघड़ होती है।

वस्तु और शैली दोनों की दाद उन्हें मिल चुकी है, अब कृति में प्रभाव की गंभीरता देखना है? क्या यह तात्कालिक प्रशंसा उसे कालाश्रित कीर्ति दे सकेगी? सच्चा उत्तर तो काल ही देगा पर आलोचक-बुद्धि उसे स्थायी संपत्ति मानती है क्योंकि उसमें उस प्रकृति का चित्र है जो चिरनवीन रहती है।

इस प्रकार निबंध के सभी गुण इस लेख में हैं, पर कुछ दोष खटकते हैं। पहला दोष है उपदेश और प्रचार की वृत्ति। लेख के आरंभ में ही यह बेतुका उपदेश दर्शन देता है। कलाकार का काम है दृढ़संकल्प होकर चित्र खींचना न कि विकल्प या विचार करना। यह दूसरा काम आलोचक का है। दूसरी खटकने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाली बात है अथ और इति की कला का अभाव। प्रतिभा स्वयं कला है इसी से इस लेख में आप आदि और अन्त बन गया है। पर पहले के चार प्रघट्टक निकालने पड़ेंगे। यों तो चन्द्रमा के कलंक के समान वे भी रह सकते हैं। पाँचवें और अंतिम प्रघट्टक में जो प्रकृति का वर्णन है वह संपुट मंत्र है। साहित्य के अनुष्ठान में उतने की ही ज़रूरत है।

अंतिम बात है तुलना की। ठीक इसी ढङ्ग का दूसरा स्केच है 'अटल नियम'। उसमें सिंह और भैंसे की भिड़न्त है। बड़ा रोमांचक चित्र है, पर आदि और अन्त की दृष्टि से प्रस्तुत लेख ही बीस ठहरता है। दो और लेख हैं जिनमें धड़कन बन्द करनेवाला युद्ध होता है। एक का नाम है 'भिड़न्त' और दूसरे का 'यमदूत से साक्षात्।' तुलना में चाहे जो कहा सुना जाय पर हैं सबके सब सजीव और मनोरम। यों तो इस एक चावल को देखकर ही पूरे साहित्य का अनुमान किया जा सकता है पर अधिक लेख पढ़ने से अध्ययन और आस्वाद दोनों का सुख बढ़ेगा। 'शिकार' और 'प्राणों का सौदा' लेखक के दो संग्रह हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काला शैतान

शाम का वक्त था। ढाका जिले में नारायणगंज के पास ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे के एक गाँव में कुछ देहाती नवयुवतियाँ नहाने, पानी भरने के लिए जा रही थीं। वे आपस में हँसतीं-बोलतीं, चुहलें करतीं ब्रह्मपुत्र के घाट पर पहुँचीं। पानी में घुस कर कुछ देर तक तो वे जल-क्रीड़ा करती रहीं और फिर अपने-अपने घड़े भरकर सिर पर रखकर चलने को तैयार हुईं। उसमें से एक सुन्दरी-सी युवती कुछ अधिक चपल थी। दूसरों के मना करने पर भी वह कमर तक गहरे पानी में चली गई। वहाँ उसने अपना घड़ा भरकर एक अदा से सिर पर रक्खा और धीरे २ पानी मँझाती हुई किनारे की तरफ बढ़ी। वह दो चार कदम ही बढ़ी होगी कि बड़े जोर से चीख उठी और पानी में गिरकर गायब हो गई। पहले तो साथवालियों को जान पड़ा कि शायद उसका पैर फिसल गया है; किन्तु एक दृष्टि डालते ही उन्हें मालूम हो गया कि कोई बलपूर्वक उस असहाय लड़की को पानी के भीतर खींचे लिये जा रहा है। सारी-की-सारी युवतियाँ अपने अपने घड़े फेंक कर किनारे को भागीं और जोर-जोर चीखने-चिल्लाने लगीं—"दौड़ियो, काला शैतान ले गया!"

नदी के किनारे ही डाक बंगला था, जिसमें सर्वे विभाग के साहब मि० आगस्टस समरविल ठहरे हुए थे। लड़कियों का चीखना-पुकारना सुनकर वे अपनी राइफिल लेकर दौड़े; उधर गाँव के कुछ मर्द और औरतें भी दौड़ पड़ीं। उस लड़की के माँ-बाप भी आ गए और ढाढें

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मारकर रोने लगे। नदी तट की सायंकालीन निस्तब्धता में एक कोहराम-सा मच गया। हर एक काले शैतान को कोस रहा था।

गाँववालों ने मि० समरविल को दो चार शब्दों में बतलाया कि 'काला शैतान' एक विशालकाय मगर है, जो अब तक पचीसों आदमियों को खा चुका है, और जिसके नाम से आसपास कई कोस तक का इलाका दहल उठता है। इस आशा से कि शायद अभागी लड़की की लाश ही मिल जाय, गाँव वाले और मिस्टर समरविल एक घण्टे तक नदी का किनारा खोजते रहे; लेकिन बेकार हुआ।

दूसरे दिन सबेरे आठ-सात देहाती मिस्टर समरविल के पास पहुँचे और उन्होंने काले शैतान के काले कारनामों की दास्तान कह सुनाई। मिस्टर समरविल पुराने शिकारी थे, हिन्दुस्तान के अनेक हिस्सों में अनेक बार मगर का शिकार कर चुके थे, और मगर की चालाकियों और आदतों से बखूबी वाक़िफ थे। लेकिन देहातियों की बातें सुनकर उन्हें मालूम हो गया कि ब्रह्मपुत्र का यह 'काला शैतान' धूर्तता में उन सबका गुरु घंटाल है। उसका दस्तूर यह था कि घाट पर आकर नहाते हुए आदमियों में से किसी एक को हड़प कर जाता था। मगर वह ऐसा चालाक था कि फिर जल्द उसी घाट पर दूसरा हमला न करता था। अगर आज उसने नारायणगंज में शिकार किया, तो हफ्ते भर बाद सुनाई देगा कि उसने दस-पंद्रह मील दूर किसी गाँव में दूसरे आदमी की जान ली। दस पाँच दिन बाद जब नारायणगंज में मामला ठंढा पड़ जायगा और लोगों की सतर्कता ढीली पड़ जायगी, तो वह सहसा फिर प्रकट होकर किसी दूसरे व्यक्ति को चट कर लेगा।

काले शैतान की यह कारवाई महीनों से चल रही थी। लोग इतने भयभीत हो रहे थे कि इक्का-दुक्का आदमी नदी में घुसने की हिम्मत ही न करता था। वे दस-पाँच मिलकर ही पानी में उतरते, सो भी तब, जब यह निश्चय कर लेते कि आस पास काला शैतान नहीं देखा गया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस खूनी मगर को मारने के लिए बहुत कोशिशें की गईं लेकिन सब बेसूद। काँटे लगाये गये, लेकिन बेकार साबित हुए; जाल डाले गये, किन्तु काला शैतान उनमें फँसकर भी उन्हें तोड़कर निकल गया। स्थानीय शिकारियों ने उसे मारने की कोशिश की, पर नाकामयाब हुए। पहले तो सरकार ने यह कानून बना रक्खा था कि कोई भी गोरा—चाहे वह खूनी, लुटेरा, बदमाश ही क्यों न हो—बिना लाइसेंस के बंदूक, रिवाल्वर, राइफिल जो चाहे रख सकता था और अच्छे से अच्छे भारतीय को तलवार तक रखने के लिए लाइसेंस लेना पड़ता था। अब यद्यपि गोरों को भी बंदूक का लाइसेंस लेना पड़ता है, लेकिन देहाती तक जानते हैं कि किसी भी गोरे को कहने-भर से ही लाइसेंस मिल जाता है, जब कि देहाती भारतीय को लाइसेंस मिलना अगर असम्भव नहीं, तो बहुत मुश्किल जरूर है। इसीलिए दो-चार स्थानीय शिकारियों के पास जो बंदूकें थीं भी, वे पुराने जमाने की तोड़ेदार या टोपीदार बंदूकें थीं, जिनकी गोलियों का काले शैतान की पीठ पर कोई असर ही नहीं होता था। देहाती जानते थे कि मिस्टर समरविल की बंदूक राइफिल होगी, इसलिए उन्होंने समरविल साहब से इस मर्दुमखोर को मारने की प्रार्थना की।

मि० समरविल ने भी हामी भर ली। उनके पास बहुत अच्छी राइफिल थी। उन्होंने सोचा कि निकेल की एक गोली काले शैतान का काम तमाम कर देगी, मगर बेचारे यह नहीं जानते थे कि इस मगर विशेष ने जो काले शैतान का खिताब पाया था, वह योंही नहीं था। हफ्ते भर तक समरविल साहब अपने काम में बहुत व्यस्त रहे। इस बीच में मगर की भी कोई बात नहीं सुनाई दी। हफ्ते भर बाद मगर की खबर मिली।

जाड़े का मौसम था। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। इतवार को सुबह नदी के विशाल वक्ष की ओर से बड़ी तेज़ और ठंढी हवा बह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रही थी। ऐसा खराब मौसम ही तो काले शैतान के लिए फिर पुरानी शिकारगाह में प्रकट होने के लिए उपयुक्त था। मिस्टर समरविल डाक बँगले में सो रहे थे। बाहर बहुत से आदमियों की आवाज़ सुनकर नींद खुल गई, उठकर बाहर देखा, कई देहाती खड़े थे। उन्होंने कहा—"काला शैतान आज फिर दीख पड़ा है। आप चलकर उसे मार दीजिए।"

मिस्टर समरविल को यह सुनकर आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि मगर को ठंढा पानी अच्छा नहीं लगता, इसीलिए जाड़े के दिनों में वे धूप खाने के लिए पानी से निकल-निकल नदी के किनारे की रेती और चरों पर लेटा करते हैं, और उसी मौसम में मगर का शिकार होता है। गरमी में बहुत थोड़े मगर मारे जाते हैं। अतः मिस्टर समरविल राइफिल उठाकर और दस पाँच कारतूस जेब में डाल कर चल दिये।

देहाती एक पतली पगडंडी की राह मिस्टर समरविल को नदी की ओर ले चले। थोड़ी दूर चलकर अगुवा देहाती ने दल के और लोगों को वहीं रुकने का आदेश दिया और मिस्टर समरविल को बहुत सावधानी से आगे बढ़ने को कहा। नदी के किनारे एक जगह पहुँचकर मिस्टर समरविल ने देखा, सामने कुछ दूरी पर सचमुच काला शैतान रेती पर पड़ा था।

'काला शैतान' दर असल काला शैतान था। वह पूरे अठारह फीट लम्बा था! इतने लम्बे मगर और भी मिलते हैं; लेकिन काले शैतान की विशेषता यह थी कि वह चौड़ा-मोटा भी बहुत था। रेती पर पड़ा हुआ वह ऐसा दीखता था, मानो कोई नाव औंधी पड़ी हो।

समरविल साहब ने सारी स्थिति को अच्छी तरह समझा और यह सोचने लगे कि छिपे-छिपे मगर के नजदीक कैसे पहुँचा जाय। जिस वक्त मगर पेट के बल लेटा रहता है, उस वक्त उसको मारना नामुमकिन-सा होता है। सब से ताकतवर राइफिल की गोली भी उसकी अभेद्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पीठ पर लगकर उचट जाती है। ऐसी हालत में सिर्फ तभी वह मारा जा सकता है, जब गोली उसकी गर्दन पर पड़े, इसीलिये सभी शिकारी गर्दन का निशाना लेने की ही कोशिश करते हैं।

जब मि० समरविल उसके नजदीक पहुँचने के लिए आगे बढ़े, तो उन्हें मालूम हुआ कि काले शैतान ने लेटने के लिए जगह चुनने में कैसी चालाकी से काम लिया है। उसके तीन तरफ लगभग १०० गज तक एकदम खुली रेती थी—आड़ की या छिपने की कोई जगह ही न थी। प्रत्यक्ष हो गया कि छिपकर मगर के नजदीक पहुँच सकना नामुमकिन है, और सौ गज की दूरी से गर्दन का निशाना मारने में सफलता की कोई आशा नहीं। गोली की जद के भीतर पहुँचने की एक ही तरकीब थी, वह यह कि नदी की राह मगर की पुश्त की तरफ से पहुँचा जाय, समरविल साहब ने वही किया।

दूसरी राह से घूमकर वे नदी के चढ़ाव की ओर कोई आध मील दूर गए। वहाँ नाव पर दो आदमियों के साथ सवार हुए। नाव पेड़-पत्तों से ऐसी ढँक दी गई, जिससे मालूम हो कि कोई पेड़ बहा आ रहा है। नाव धीरे-धीरे धार के साथ मगर की ओर बहने लगी।

लेकिन काला शैतान इतनी आसानी से पकड़ में आनेवाला नहीं था। वह चुपचाप लेटा हुआ बहते हुए पेड़-पत्तोंवाली नाव को देखता रहा। जैसे ही नाव बंदूक की जद में पहुँचनेवाली थी, वैसे ही वह छप से पानी में कूद कर गायब हो गया।

अब सब बेकार था। समरविल साहब ने किनारे की तरफ नाव खेने का हुक्म दिया। नाव मुश्किल से पाँच-सात गज आगे बढ़ी थी कि वह बुरी तरह हिलने डोलने लगी। उसका अगला हिस्सा अचानक बहुत ऊँचा उठ गया। पहले तो साहब और उसके साथियों की समझ में न आया कि मामला क्या है। हवा भी बहुत जोर की नहीं है, लहरें भी बहुत बड़ी नहीं हैं, लेकिन क्षण-भर बाद ही असली कारण जान कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नौकारोहियों को मानो लकवा मार गया। काला शैतान नाव के नीचे से नाव को उलट देने की कोशिश कर रहा था।

डर के मारे तीनों के तीनों पत्थर हो गये। साँस भी बंद होती-सी मालूम होती थी। नाव के नीचे से मगर की चकत्तेदार पीठ दीखने लगी। नाव का एक हिस्सा बराबर ऊपर उठता जा रहा था। वे चंद सेकेण्ड घंटों से जान पड़े। एकाएक समरविल साहब ने अमानुषीय हिम्मत करके राईफल उठाई और जैसे ही मगर का खौफनाक खुला हुआ थूथन पानी के बाहर निकला, वैसे ही अन्धाधुन्ध गोली दाग दी। मालूम हुआ कि गोली ने कुछ असर जरूर किया, क्योंकि दूसरे ही क्षण काला शैतान पानी में गड़ाप हो गया। ऊपर उठी हुई नाव एक धमाके के साथ पानी में इस जोर से गिरी कि औंधी हो गई और तीनों सवार पानी में डुबकियाँ खाने लगे।

इत्तफ़ाक से उस जगह पानी गहरा नहीं था। तीनों के तीनों जान लेकर किनारे की ओर भागे। बेचारों को हर कदम पर यही मालूम होता था कि अब पीछे से शैतान ने पकड़ा, अब पकड़ा। खैर, वे सही सलामत किनारे पर पहुँच गये। समरविल साहब को काले शैतान से इस तरह छकने पर बड़ी लज्जा आई। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि चाहे जो हो, इस शैतान को मारे बिना न छोड़ूँगा।

अब साहब और मगर में एक तरह से लुका चोरी का खेल आरम्भ हो गया। साहब दिन-रात काले शैतान की खोज में घूमते। शैतान भी कभी कभी दीख जाता था, लेकिन ऐसे ढंग से कि समरविल को कभी गोली चलाने का मौका ही न मिलता था। सुबह जैसे ही मगर पानी से निकल कर धूप लेने के लिए रेती पर आये वैसे ही गोली चलायें, इस आशा से साहब गड्ढे खोद कर रात-रात भर कीचड़-काँदा में पड़े पड़े ठिठुरते, परन्तु कभी सफलता न मिलती। उस पर तुर्रा यह कि शैतान नियमित रूप से आदमियों का शिकार करता रहा, जिसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानी यह हुए कि उसे समरविल साहब की रत्ती-भर चिन्ता न थी। इस प्रकार एक महीने से ऊपर हो गया, पर मगर हाथ न चढ़ा।

मगर का पीछा करते-करते समरविल साहब नारायणगंज से तीस मील दक्षिण एक गाँव में आ पहुँचे थे। काले शैतान ने आखिरी आदमी इसी गाँव में खाया था। साहब रात-भर नदी के किनारे एक घने पेड़ पर छिप कर बैठे रहे कि शायद मगर बाहर निकले। मगर वहीं आसपास मौजूद था, क्योंकि रात में दो बार साहब ने उसकी आवाज सुनी थी; लेकिन वह दिखाई नहीं दिया।

सवेरे साहब पेड़ से उतरे। रात-भर सर्दी और ओस में सिकुड़े बैठे-बैठे उनके अंग-अंग अकड़ गये थे। सारा बदन दर्द कर रहा था। अब उन्होंने हार मान ली। सोचा, कब तक इस तरह वक्त खराब करूँ। इस शैतान से पार पाना मुश्किल है।

मि० समरविल पेड़ के नीचे खड़े होकर हाथ-पैर सीधे कर रहे थे और काले शैतान को कोस रहे थे। इतने में पीछे से एक आवाज़ सुनाई दी। सिर फेर कर देखा, तो एक मुसलमान बुढ़िया खड़ी थी। बुढ़ापे के मारे उसकी कमर झुक रही थी। वह समरविल साहब को देखकर मुसकराने लगी।

उसने पोपले मुँह से हँसते हुए कहा—"साहब यह मगर मामूली मगर नहीं है। यह शैतान है, शैतान!"

हाँ, भाई!—साहब ने तिनककर कहा—"वह जरूर शैटान है, वरना हम उसको मार डिया होटा।"

बुढ़िया ने क्षण-भर साहब की तरफ घूमकर देखा, और फिर मुसकराकर बोली—"अच्छा बेटा, मेरे साथ आओ। तुमने अपनी चालाकी और ताक़त दिखा ली; अब ज़रा मेरे बुढ़ापे की करामात भी देखो।"

यह कहकर बुढ़िया एक पगडंडी पर आगे आगे चलने लगी। बुढ़िया की शक्ल और बातचीत में कुछ ऐसा आकर्षण और आत्मविश्वास-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सा था कि मि० समरविल चुपचाप उसके पीछे हो लिये। चलते चलते दोनों एक झोपड़ी के सामने पहुँचे, जो ठीक जंगल की छोर से मिली हुई थी। झोपड़ी के दरवाजे पर मिं० समरविल को बिठला कर बुढ़िया भीतर घुस गई। भीतर कुछ देर तक खटपट-सी सुनाई दी। उसके बाद ही बुढ़िया पीतल के लोटे में दूध भरकर बाहर निकली। उसे साहब को पीने के लिये देकर उसने ज़ोर-ज़ोर से कई आवाजें दीं। आवाज़ सुनकर एक दुबला-पतला लड़का आ मौजूद हुआ और आश्चर्य से मुँह बाये साहब की तरफ घूर घूर कर देखने लगा।

बुढ़िया ने कहा—"पागल कहीं का! मुँह बाये क्या देखता है? ले, साहब से तीन रुपये ले ले और गाँव चला जा। सोनार बाई के पास दो पाठे (बकरी के बच्चे) बिक्री को हैं; जाकर उन्हें फौरन ले आ।"

बिना कुछ पूछे-बताये साहब ने चुपके से तीन रुपये निकाल लड़के के हवाले किये और वह भागता हुआ पगडंडी पर गायब हो गया। साहब ने बुढ़िया से पूछा—"बकरी के बच्चों का क्या होगा? तुम क्या करना चाहती हो?"

"साहब, तुम चुपचाप बैठे बैठे देखते जाओ, अभी मालूम हो जायगा कि मैं क्या करती हूँ।" इसके सिवा बुढ़िया ने और कुछ बतलाने से इनकार कर दिया। मजबूर होकर साहब चुपचाप बैठे रहे। आध घंटे बाद लड़का बकरी के बच्चे लेकर आ गया। बच्चे करीब तीन महीने के होंगे। बुढ़िया ने एक बच्चे को पेड़ से बाँध दिया और लड़के से छुरी मँगाकर दूसरे को ऐसी सफाई से हलाल कर दिया, जिससे मालूम होता था कि बुढ़िया इस काम में पुरानी अभ्यस्त है। उसने बकरी के बच्चे को इस तरह हलाल किया था कि उसका सिर धड़ में ज्यों-का-त्यों लगा रहे। उसने उसका पेट, चाक करके भीतर की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आँतें-वातें निकाल कर फेंक दीं और लाश को धो-पोंछकर साफ किया। वह फिर झोंपड़ी में गई और वहाँ से डलिया भर फूँका हुआ चूना ले आई। उसने मरी हुई बकरी के पेट में ठूँस ठूँसकर चूना भरा और फिर टाँके लगा कर सी दिया। अब वह एक खूब मोटा ताज़ा बच्चा दीखने लगा।

अब बूढ़ी उठ खड़ी हुई। वह मरे हुए बच्चे को अपनी गोद में लेकर नदी की तरफ रवाना हुई। नदी किनारे पहुँच कर बुढ़िया ने साहब को पेड़ों के एक झुरमुट में छिपकर बैठने को कहा और जिन्दा बच्चे को ज़मीन पर उतार दिया। मुर्दा बच्चे को अपनी चादर में छिपाकर बुढ़िया नदी के किनारे चलने लगी। जिन्दा बच्चा छूटकर बुरी तरह मिमियाता हुआ बुढ़िया के पीछे पीछे चलने लगा।

कुछ देर तक बुढ़िया नदी के किनारे इधर से उधर, उधर से इधर बहती हुई लकड़ियाँ और घोंघे इकट्ठे करती हुई फिरती रही और जिन्दा बच्चा उसके दामन के पीछे-पीछे मिमियाता घूमता रहा। आखिरकार मानो अपने काम से थक कर बुढ़िया ने जीवित बच्चे को पानी से जरा सी दूर एक पेड़ से बाँध दिया और खुद थोड़ी दूर पर अलग बैठकर सुस्ताने ऊँघने लगी।

इस प्रकार कोई एक घंटा बीत गया। बकरी का बच्चा भागने में अपने को असमर्थ पाकर बार-बार रस्सी को खींचता और प्रतिवाद-स्वरूप जोर-जोर से चिल्लाता था। बुढ़िया बैठी-बैठी ऊँघती जान पड़ती थी और कुछ दूरी पर पेड़ों के झुरमुट में समरविल साहब आँख गड़ाए, कान खड़े किये, चौकन्ने से नदी की ओर देख रहे थे।

नदी के पानी में कुछ बुलबुले उठते दीख पड़े। फिर किनारे पर छोटी छोटी लहरें उठने लगीं। लहरें धीरे धीरे बड़ी होने लगीं, यहाँ तक कि पानी के भीतर से शैतान का विशाल काला शरीर निकला और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बिना शब्द किए धीरे धीरे बकरी के बच्चे की ओर बढ़ने लगा। बकरी का बच्चा भी अब भयभीत हो रहा था। उसी क्षण बुढ़िया मानो जाग उठी और गला फाड़ फाड़ कर चिल्लाती हुई, हाथ की लकड़ी फटकारती, किनारे की तरफ दौड़ी। पलक मारते ही काला शैतान पानी में गायब हो गया और फिर चारों तरफ सन्नाटा छा गया। क्षण भर के लिए बुढ़िया बकरी के बच्चे के ऊपर झुकी और बड़ी फुर्ती और सफाई से उसने जीवित बच्चे के मुर्दा बच्चे बदल दिया। फिर अपनी पुरानी जगह लौटकर वह ऊँघने लगी।

मिमियाना फिर शुरू हुआ। जान पड़ता था कि जीवित बच्चे को अपनी चादर में लपेट कर बुढ़िया ऊँघते हुए भी रह रह कर उसके बकोटे काटती थी, जिससे वह बेचारा मिमियाता था। कुछ देर बाद मगर फिर किनारे पर प्रकट हुआ। इस बार वह कुछ देर तक गौर से बुढ़िया को देखता रहा। जब उसे विश्वास हो गया कि बुढ़िया सो रही है, तो यह धीरे से पानी से निकला और एक ही झपट्टे में मुर्दा बच्चे को दबोच कर एक-दो बार मुंह चवलाकर निगल गया और दूसरे ही क्षण पानी में जा कूदा।

बड़ी फुर्ती से बुढ़िया उठ खड़ी हुई। उसने समरविल साहब को पुकारा। दोनों के दोनों नदी के किनारे जा खड़े हुए और पानी को देखने लगे। कुछ देर तक एकदम सन्नाटा रहा। उसके बाद पेड़ के तने जैसा एक विशाल आकार पानी की सतह पर निकला और तेज़ी से इधर से उधर तैरने लगा। उसके तैरने से बेचैनी-सी जान पड़ती थी। जैसे जैसे क्षण बीतने लगे, उसकी बेचैनी और बेकली बढ़ने लगी। अब वह मुँह-बाये नदी में ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर बुरी तरह भागता फिरता था और रह रहकर जोर से दाँत बजाता था। इस बीच में किनारे पर गाँववालों की भीड़ जमा हो गई। कुछ देर में उसे पानी में रहना असम्भव-सा जान पड़ने लगा और वह किनारे की ओर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दौड़ा। किनारे पर आते ही एकत्रित भीड़ ने पत्थरों की वर्षा शुरू कर दी।

मजबूर होकर मगर फिर पानी को लौटा और क्रोध और बेचैनी से अपनी विशाल पूँछ फटकारता हुआ तेजी से चक्कर काटने लगा। दो-चार मिनट बाद वह फिर किनारे पर चढ़ा। इस बार उसने भीड़ के हल्ले-गुल्ले और पत्थरों की परवा न की। वह तट पर आकार हाँफता हुआ लेट रहा। उसके खुले हुए जबड़े से फेना और खून बह रहा था और वह बेचैनी से छटपटा रहा था।

साहब को उसकी छटपटाहट पर दया आई। उन्होंने उस लड़के को जो बकरी के बच्चे लाया था, अपनी राइफिल लाने के लिए दौड़ाया।

बुढ़िया ने कहा—"साहब, उसे छटपटाने दीजिये। उसने भी तो सैकड़ों आदमियों को इससे ज्यादा छटपटाया है।"

बुढ़िया का कहना ठीक था, फिर भी उसकी छटपटाहट देखी नहीं जाती थी। समरविल साहब ने मगर के नजदीक जाकर उसकी गरदन में गोली मारकर उसकी छटपटाहट का अन्त कर दिया।

इस प्रकार काले शैतान का खात्मा हुआ। जिस मगर को भारतीय और गोरे शिकारी सैकड़ों कोशिशें करके भी न मार सके, उसे बुढ़िया की तदबीर ने एक ही दाँव में खत्म कर दिया। मगर ने जैसे ही बकरी के मुर्दा बच्चे को निगला वैसे ही दबाव पाकर बच्चे के पेट में लगे हुए कमजोर टाँके टूट गये और उसके पेट में भरा हुआ सारे का सारा बिना बुझा चूना मगर के पेट में पहुँच गया। पानी पड़ते ही बिना बुझा चूना गर्म होकर उबलने लगता है। मगर के पेट में आग लग गई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसे बुझाने के लिए मगर जितना ही पानी पीता गया, पेट के भीतर का उबाल उतना ही जोर पकड़ता गया।

खाल उतारते वक्त जब मगर का पेट चीरा गया, तो उसके भीतर ८६ चूड़ियाँ, अनेकों अँगूठियाँ और बिछिये तथा एक थर्मस बोतल निकली। *

---

* 'वाइड वर्ल्ड' में मि० समरविल के लिखे हुए वृत्तान्त के आधार पर।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काला शैतान

कोई अद्भुत घटना इतिवृत्त निवेदक के हाथ में पड़कर पत्र का समाचार बन जाती है और प्रतिभाशाली लेखक के हाथ में कलामय कहानी। यह मगर के अनोखे शिकार का वर्णन कुछ मूललेखक की और कुछ से अधिक रूपान्तरकार की करामात से अच्छी खासी कहानी बन गया है। कहानी का नायक काला शैतान अपनी उदर ज्वाला शान्त करने के लिए यदि किसी भारी मछली, भैंस या बहुत से बहुत किसी काली कलूटी बुढ़िया को पकड़ लेता तो हम उसकी इस काली करतूत पर चश्मपोशी का परदा डाल उसके स्वतन्त्र जीवन नाटक को दुःखान्त ही मानते पर उस क्रूर दानव ने सुन्दरी युवती को, चञ्चल कुमारी को, भावी सुख संसार में अदा के साथ प्रवेश करने से रोक दिया इससे उसका अन्त सुखान्त ही समझा जायगा। आरम्भ के दो प्रघट्टकों में कही हुई यह नन्हीं सी कहानी वस्तुतः बहुत मार्मिक है। आगे शिकार का वर्णन बहुत सजीव अतएव मनोरञ्जक है। कथा-कौतुक अन्त तक शिथिल नहीं होने पाता। बुढ़िया का कौशल अनूठा होने पर भी असम्भव नहीं जान पड़ता। भाषा वर्णन के अनुसार सहज सीधी निपट सरल है पर लद्धड़ नहीं खूब चलती हुई। स्वर्गीय ब्रजमोहन वर्मा के कलम से निकलना ही उसकी अच्छाई का सबूत है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग़बन

महाशयँ दयानाथ जितनी उमंगों से ब्याह करने गए थे, उतना ही हतोत्साह होकर लौटे। दीनदयाल ने खूब दिया, लेकिन वहाँ से जो कुछ मिला, वह सब नाच-तमाशे नेग-चार में खर्च हो गया। बार-बार अपनी भूल पर पछताते, क्यों दिखावे और तमाशे में इतने रुपये ख़र्च किए। इसकी ज़रूरत ही क्या थी, ज्यादा-से-ज्यादा लोग यही तो कहते—महाशय बड़े कृपण हैं। उतना सुन लेने में क्या हानि थी। मैंने गाँववालों को तमाशा दिखाने का ठीका तो नहीं लिया था। यह सब रमा का साहस है। उसी ने सारे ख़र्च बढ़ा-बढ़ाकर मेरा दिवाला निकाल दिया। और सब तकाजे तो दस-पाँच दिन टल भी सकते थे, पर सर्राफ़ किसी तरह न मानता था। शादी के सातवें दिन उसे एक हज़ार रुपये देने का वादा किया था। सातवें दिन सर्राफ़ आया, मगर यहाँ रुपए कहाँ थे। दयानाथ में लल्लो-चप्पो की आदत न थी, मगर आज उन्होंने उसे चकमा देने की कोशिश की। किस्त बाँधकर सब रुपये छः महीने में अदा कर देने का वादा किया और कहा कि फिर तीन महीने पर आए। मगर सर्राफ़ भी एक ही घुटा हुआ आदमी था, उसी वक्त टला, जब दयानाथ ने तीसरे दिन बाकी रक़म की चीजें लौटा देने का वादा किया और यह भी उसकी सज्जनता ही थी। वह तीसरा दिन भी आ गया और अब दयानाथ को अपनी लाज रखने का कोई उपाय न सूझता था। कोई चलता हुआ आदमी शायद इतना व्यग्र न होता, हीले-हवाले करके महाजन को महीनों टालता रहा, लेकिन दयानाथ इस मामले में अनाड़ी थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जागेश्वरी ने आकर कहा—भोजन कब से बना ठंडा हो रहा है। खाकर तब बैठो।

दयानाथ ने इस तरह गर्दन उठाई, मानों सिर पर सैकड़ों मन का बोझ लदा हुआ है। बोले—तुम लोग जाकर खा लो, मुझे भूख नहीं है।

जागेश्वरी—भूख क्यों नहीं है, रात में भी तो कुछ नहीं खाया था? इस तरह दाना-पानी छोड़ देने से महाजन के रुपये थोड़े ही अदा हो जायँगे?

दयानाथ—मैं सोचता हूँ, उसे आज क्या जवाब दूँगा। मैं तो यह विवाह करके बुरा फँस गया। बहू कुछ गहने लौटा तो देगी?

जागेश्वरी—बहू का हाल तो सुन चुके, फिर भी उससे ऐसी आशा रखते हो। उसकी टेक है कि जब तक चन्द्रहार न बन जायगा, कोई गहना ही न पहनूँगी। सारे गहने सन्दूक में बन्द कर रक्खे हैं। बस वही एक बिल्लौरी हार गले में डाले हुए है। बहुएँ बहुत देखीं; पर ऐसी बहू न देखी थी। फिर, कितना बुरा मालूम होता है कि कल की आई बहू, उससे गहने छीन लिए जायँ।

दयानाथ ने चिढ़कर कहा—तुम तो जले पर नमक छिड़कती हो, बुरा मालूम होता है, तो लाओ एक हज़ार निकाल कर दे दो, महाजन को दे आऊँ, देती हो? बुरा मुझे ख़ुद मालूम होता है; लेकिन उपाय क्या है? गला कैसे छूटेगा?

जागेश्वरी—बेटे का व्याह किया है कि ठट्ठा है? शादी-व्याह में सभी लेते हैं, तुमने कोई बात नहीं की। खाने-पहनने के लिए कौन कर्ज़ लेता है। धर्मात्मा बनने का कुछ फल मिलना चाहिए या नहीं? तुम्हारे ही दर्जे पर सत्यदेव हैं, पक्का मकान खड़ा कर दिया, जमींदारी ख़रीद ली, बेटी के व्याह में कुछ नहीं तो पाँच हज़ार ख़र्च किए ही होंगे।

दयानाथ—जभी दोनों लड़के भी तो चल दिए!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जागेश्वरी—मरना-जीना तो संसार की गति है, लेते हैं वह भी मरते हैं, नहीं लेते वह भी मरते हैं। अगर तुम चाहो, तो छः महीने में सब रुपए चुका सकते हो।

दयानाथ ने त्योरी चढ़ाकर कहा—जो बात ज़िन्दगी-भर नहीं की; वह अब आख़िरी वक्त नहीं कर सकता। बहू से साफ़-साफ़ कह दो, उससे परदा रखने की ज़रूरत ही क्या है और पर्दा रह ही कै दिन सकता है। आज नहीं तो कल उसे सारा हाल मालूम ही हो जायगा। बस तीन चार चीज़ें लौटा दे, तो काम बन जाय। तुम उससे एक बार कहो तो।

जागेश्वरी झुँझलाकर बोली—उससे तुम्हीं कहो, मुझसे तो न कहा जायगा।

सहसा रमानाथ टैनिस-रैकिट लिए बाहर से आया, सफ़ेद टैनिस शर्ट था, सफ़ेद पतलून, केनवस का जूता, गोरे रंग और सुन्दर मुखाकृति पर इस पहनावे ने रईसों की शान पैदा कर दी थी। रूमाल में बेले के गज़रे लिये हुए था। उससे सुगन्धि उड़ रही थी। माता-पिता की आँखें बचाकर वह ज़ीने पर जाना चाहता था, कि जागेश्वरी ने टोका, इन्हीं के तो सब काँटे बोए हुए हैं, इनसे क्यों नहीं सलाह लेते? (रमा से) तुमने नाच-तमाशे में बारह-तेरह सौ रुपए उड़ा दिए, बतलाओ सर्राफ़ को क्या जवाब दिया जाय? बड़ी मुश्किलों से कुछ गहने लौटाने पर राज़ी हुआ; मगर बहू से गहने माँगे कौन? यह सब तुम्हारी ही करतूत है।

रमानाथ ने इस आक्षेप को अपने ऊपर से हटाते हुए कहा—मैंने क्या ख़र्च किया? जो कुछ किया बाबूजी ने किया। हाँ, जो कुछ मुझसे कहा गया, वह मैंने किया।

रमानाथ के कथन में बहुत कुछ सत्य था। यदि दयानाथ की इच्छा न होती, तो रमा क्या कर सकता था? जो कुछ हुआ, उनकी अनुमति

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से हुआ। रमानाथ पर इल्ज़ाम रखने से तो कोई समस्या हल न हो सकती थी। बोले—मैं तुम्हें इल्ज़ाम नहीं देता भाई। किया तो मैंने ही; मगर यह बला तो किसी तरह सिर से टालनी चाहिए। सर्राफ़ का तक़ाज़ा है। कल उसका आदमी आवेगा। उसे क्या जवाब दिया जायगा? मेरी समझ में तो यही एक उपाय है कि उतने रुपए के गहने उसे लौटा दिए जायँ। गहने लौटा देने में भी यह झंझट करेगा, लेकिन दस-बीस रुपए के लोभ में लौटाने पर राज़ी हो जायगा। तुम्हारी क्या सलाह है?

रमानाथ ने शरमाते हुए कहा—मैं इस विषय में क्या सलाह दे सकता हूँ, मगर मैं इतना कह सकता हूँ कि इस प्रस्ताव को वह खुशी से मंजूर न करेगी। अम्मा तो जानती हैं कि चढ़ावे में चन्द्रहार न जाने से उसे कितना बुरा लगा था। प्रण कर लिया है, जब तक चन्द्रहार न बन आयगा, कोई गहना न पहनूगी।

जागेश्वरी ने अपने पक्ष का समर्थन होते देख, खुश होकर कहा—यही तो मैं इनसे कह रही हूँ।

रमा—रोना-धोना मच जायगा और इसके साथ घर का पर्दा भी खुल जायगा।

दयानाथ ने माथा सिकोड़ कर कहा—उससे परदा रखने की ज़रूरत ही क्या। अपनी यथार्थ स्थिति को वह जितनी ही जल्दी समझ ले उतना ही अच्छा।

रमानाथ ने जवानों के स्वभाव के अनुसार जालपा से खूब ज़ीट उड़ाई थी। खूब बढ़-बढ़कर बातें की थीं। ज़मीदारी है, उससे कई हज़ार का नफ़ा है। बैंक में रुपये हैं, उसका सूद आता है। जालपा से अब अगर गहने की बात कही गई, तो रमानाथ को वह पूरा लबाड़िया समझेगी। बोला—पर्दा तो एक दिन खुल ही जायगा, पर इतनी जल्द खोल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देने का नतीजा यही होगा कि वह हमें नीच समझने लगेगी। शायद अपने घरवालों को भी लिख भेजे। चारों तरफ़ बदनामी होगी।

दयानाथ—हमने तो दीनदयाल से यह कभी न कहा था कि हम लखपती हैं ?

रमा०—तो आपने यही कब कहा था कि हम उधार गहने लाये हैं और दो-चार दिन में लौटा देंगे। आख़िर यह सारा स्वाँग अपनी धाक बैठाने के लिए ही किया था या कुछ और ?

दया०—तो फिर किसी दूसरे बहाने से माँगना पड़ेगा। बिना माँगे काम नहीं चल सकता। कल या तो रुपए देने पड़ेंगे, या गहने लौटाने पड़ेंगे। और कोई राह नहीं।

रमानाथ ने कोई जवाब न दिया। जागेश्वरी बोली—और कौन-सा बहाना किया जायगा ? अगर कहा जाय, किसी को मँगनी देना है, तो शायद वह देंगी नहीं। देंगी भी तो दो-चार दिन में लौटायेंगे कैसे ?

दयानाथ को एक उपाय सूझा। बोले—अगर उन गहनों के बदले मुलम्मे के गहने दे दिए जायँ ? मगर तुरन्त ही उन्हें ज्ञात हो गया कि यह लचर बात है, खुद ही उसका विरोध करते हुए कहा—हाँ बाद को जब मुलम्मा उड़ जायगा तो फिर लज्जित होना पड़ेगा। अक्ल कुछ काम नहीं करती। मुझे तो यही सूझता है, यह सारी स्थिति उसे समझा दी जाय। ज़रा देर के लिए उसे दुःख तो ज़रूर होगा, लेकिन आगे के वास्ते रास्ता साफ हो जायगा।

संभव था, जैसा दयानाथ का विचार था, कि जालपा रो-धोकर शांत हो जायगी; पर रमा की इसमें किरकिरी होती थी। फिर वह मुँह न दिखा सकेगा। जब वह उससे कहेगी, तुम्हारी ज़मींदारी क्या हुई ? बैंक के रुपए क्या हुए, तो उसे क्या जवाब देगा ? विरक्त भाव से बोला—इसमें बेइज्ज़ती के सिवा और कुछ न होगा। आप क्या सर्राफ़

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को दो-चार-छः महीने नहीं टाल सकते ? आप देना चाहें, तो इतने दिनों में हज़ार-बारह सौ रुपए बड़ी आसानी से दे सकते हैं।

दयानाथ ने पूछा—कैसे ?

रमा०—उसी तरह जैसे आपके और भाई करते हैं।

दया०—वह मुझसे नहीं हो सकता।

तीनों कुछ देर तक मौन बैठे रहे। दयानाथ ने अपना फैसला सुना दिया। जागेश्वरी और रमा को यह फैसला मंजूर न था। इसलिए अब इस गुत्थी को सुलझाने का भार उन्हीं दोनों पर था। जागेश्वरी ने भी एक तरह से निश्चय कर लिया था। दयानाथ को झख मारकर अपना नियम तोड़ना पड़ेगा। यह यहाँ की नीति है कि हमारे ऊपर संकट पड़ा हुआ हो और हम, अपने नियमों का राग अलापे जायँ। रमानाथ बुरी तरह फँसा था। वह खूब जानता था कि पिताजी ने जो काम कभी नहीं किया, वह आज न करेंगे। उन्हें जालपा से गहने माँगने में कोई संकोच न होगा और यही वह न चाहता था। वह पछता रहा था कि मैंने क्यों जालपा से डींगें मारीं। अब अपने मुँह की लाली रखने का भार उसी पर था। जालपा की अनुपम छबि ने पहले ही दिन उस पर मोहिनी डाल दी थी। वह अपने सौभाग्य पर फूला न समाता था। क्या यह वर ऐसी अनन्य सुन्दरी के योग्य था ? जालपा के पिता पाँच रुपये के नौकर थे; पर जालपा ने कभी अपने घर में झाड़ू न लगाई थी। कभी अपनी धोती न छाँटी थी। अपना बिछावन न बिछाया था। यहाँ तक कि अपनी धोती की खोंच तक न सी थी। दयानाथ पचास रुपया पाते थे; पर यहाँ केवल चौका बासन करने के लिए महरी थी। बाकी सारा काम अपने ही हाथों करना पड़ता था। जालपा शहर और देहात का फर्क क्या जाने ! शहर में रहने का उसे कभी अवसर ही न पड़ा था। वह कई बार पति और सास से साश्चर्य पूछ चुकी थी, क्या यहाँ कोई नौकर नहीं है ? जालपा के घर दूध दही घी की कमी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं थी। यहाँ बच्चों को भी दूध मयस्सर न था। इन सारे अभावों की पूर्ति के लिए रमानाथ के पास मीठी-मीठी बड़ी-बड़ी बातों के सिवा और क्या था। घर का किराया पाँच रुपया था। रमानाथ ने पन्द्रह बतलाये थे, लड़कों की शिक्षा का खर्च मुश्किल से दस रुपये थे, रमानाथ ने चालीस बतलाए थे। उस समय उसे इसकी जरा भी शंका न थी, कि एक दिन सारा भण्डा फूट जायगा। मिथ्या दूरदर्शी नहीं होता, लेकिन वह दिन इतनी जल्दी आएगा यह कौन जानता था। अगर उसने ये डींगें न मारी होतीं, तो जागेश्वरी की तरह वह भी सारा भार दयानाथ पर छोड़ कर निश्चिंत हो जाता, लेकिन इस वक्त वह अपने ही बनाए हुए जाल में फँस गया था। कैसे निकले ?

उसने कितने ही उपाय सोचे, लेकिन कोई ऐसा न था, जो आगे चलकर उसे उलझनों में न डाल देता, दलदल में न फँसा देता। एकाएक उसे एक चाल सूझी। उसका दिल उछल पड़ा; पर इस बात को वह मुँह तक न ला सका। ओह ! कितनी नीचता है। कितना कपट, कितनी निर्दयता। अपनी प्रेयसी के साथ ऐसी धूर्तता ! उसके मन ने उसे धिक्कारा। अगर इस वक्त उसे कोई एक हजार रुपया दे देता, तो वह उसका उम्र भर के लिए गुलाम हो जाता।

दयानाथ ने पूछा—कोई बात सूझी ?

'मुझे तो कुछ नहीं सूझता।'

'कोई उपाय सोचना ही पड़ेगा।'

'आप ही सोचिए, मुझे तो कुछ नहीं सूझता।'

'क्यों नहीं उससे दो-तीन गहने माँग लेते ? तुम चाहो, तो ले सकते हो। हमारे लिए मुश्किल है।'

'मुझे शर्म आती है।'

'तुम विचित्र आदमी हो, न खुद माँगोगे न मुझे माँगने दोगे, तो आखिर यह नाव कैसे चलेगी ? मैं एक बार, हज़ार बार कह चुका कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मुझसे कोई आशा मत रक्खो । मैं अपने आखिरी दिन जेल में नहीं काट सकता । इसमें शर्म की क्या बात है, मेरी समझ में नहीं आता । किसके जीवन में ऐसे कुअवसर नहीं आते ? तुम्हीं अपनी माँ से पूछो ।'

जागेश्वरी ने अनुमोदन किया—मुझसे तो नहीं देखा जाता था कि अपना आदमी चिंता में पड़ा रहे, मैं गहने पहने बैठी रहूँ । नहीं तो आज मेरे पास भी गहने न होते ? एक-एक करके सब निकल गए । विवाह में पाँच हजार से कम का चढ़ाव नहीं गया था, मगर पाँच ही साल से सब स्वाहा हो गया । तब से एक छल्ला बनवाना भी न नसीब हुआ ।

दयानाथ जोर देकर बोले—शर्म करने का यह अवसर नहीं है । इन्हें माँगना पड़ेगा ।

रमानाथ ने झेंपते हुए कहा—मैं माँग तो नहीं सकता, कहिए उठा लाऊँ ।

यह कहते कहते लज्जा, क्षोभ और अपनी नीचता के ज्ञान से उसकी आँखें सजल हो गईं ।

दयानाथ ने भौंचक्के होकर कहा—उठा लाओगे उससे छिपा कर ?

रमानाथ ने तीव्र कण्ठ से कहा—और आप क्या समझ रहे हैं ?

दयानाथ ने माथे पर हाथ रख लिया, और एक क्षण के बाद आहत कण्ठ से बोले—नहीं, मैं ऐसा नहीं करने दूँगा । मैंने जाल कभी नहीं किया, और न कभी करूँगा । वह भी अपनी बहू के साथ ? छिः छिः जो काम सीधे से चल सकता है, उसके लिए यह फरेब ? कहीं उसकी निगाह पड़ गई, तो समझते हो, वह तुम्हें दिल में क्या समझेगी ? माँग लेना इससे कहीं अच्छा है ।

रमा०—आपको इससे क्या मतलब । मुझसे चीजें, ले लीजिएगा, मगर जब आप जानते थे, यह नौबत आएगी, तो इतने जेवर ले जाने की जरूरत ही क्या थी ? व्यर्थ की विपत्ति मोल ली ? इससे कई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लाख गुना अच्छा था, कि आसानी से जितना ले जा सकते, उतना ही ले जाते। उस भोजन से क्या लाभ कि पेट में पीड़ा होने लगे। मैं तो समझ रहा था कि आपने कोई मार्ग निकाल लिया होगा। मुझे क्या मालूम था कि आप मेरे सिर यह मुसीबतों की टोकरी पटक देंगे। वरना मैं उन चीजों को कभी न ले जाने देता।

दयानाथ कुछ लज्जित होकर बोले—इतने पर भी केवल चन्द्रहार न होने से, वहाँ हाय-तोबा मच गई।

रमा०—उस हाय तोबा से हमारी क्या हानि हो सकती थी। जब इतना करने पर भी हाय-तोबा मच गई तो मतलब भी तो पूरा न हुआ उधर बदनामी हुई, इधर यह आफत सिर पर आई। मैं यह नहीं दिखाना चाहता कि हम इतने फटे-हाल हैं। चोरी हो जाने पर तो सब्र करना ही पड़ेगा।

दयानाथ चुप हो गए। उस आवेश में रमा ने उन्हें खूब खरी-खरी सुनाई और वह चुपचाप सुनते रहे। आखिर जब न सुना गया, तो उठ कर पुस्तकालय चले गये। यह उनका नित्य का नियम था। जब तक दो-चार पत्र-पत्रिकाएँ न पढ़ लें उन्हें खाना न हज़म होता था। उसी सुरक्षित गढ़ी में पहुँच कर घर की चिन्ताओं और बाधाओं से उनकी जान बचती थी।

रमा भी वहाँ से उठा, पर जालपा के पास न जाकर अपने कमरे में गया। उसका कोई कमरा अलग तो था नहीं, एक ही मर्दाना कमरा था, इसी में दयानाथ अपने दोस्तों से गपसप करते, दोनों लड़के पढ़ते और रमा मित्रों के साथ शतरंज खेलता। रमा कमरे में पहुँचा, तो दोनों लड़के ताश खेल रहे थे। गोपी का तेरहवाँ साल था। विश्वम्भर का नवाँ। दोनों रमा से थरथर काँपते थे। रमा खुद खूब ताश और शतरंज खेलता; पर भाइयों को खेलते देख कर उसके हाथ में खुजली होने लगती थी। खुद चाहे दिन भर सैर-सपाटे किया करे; मगर क्या

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मजाल कि भाई कहीं घूमने निकल जायँ। दयानाथ खुद लड़कों को कभी न मारते थे। अवसर मिलता तो उनके साथ खेलते थे। उन्हें कनकौवे उड़ाते देखकर उनकी बाल-प्रकृति सजग हो जाती थी। दो-चार पेंच लड़ा देते। बच्चों के साथ कभी-कभी गुल्ली-डंडा भी खेलते थे। इसलिए लड़के जितना रमा से डरते उतना ही पिता से प्रेम करते थे।

रमा के देखते ही लड़कों ने ताश को टाट के नीचे छिपा दिया और पढ़ने लगे। सिर झुकाए चपत की प्रतीक्षा कर रहे थे, पर रमानाथ ने चपत नहीं लगाई। मोढ़े पर बैठ कर गोपीनाथ से बोला—तुमने भंग की दूकान देखी है न, नुक्कड़ पर?

गोपीनाथ प्रसन्न होकर बोला—हाँ देखी क्यों नहीं?

'जाकर चार पैसे का माजूम ले लो, दौड़े आना हाँ। हलवाई की दूकान से आध सेर मिठाई भी लेते आना। यह रुपया लो।'

कोई १५ मिनट में रमा ये दोनों चीजें ले, जालपा के कमरे की ओर चला।

रात के दस बज गए थे। जालपा खुली हुई छत पर लेटी हुई थी। जेठ की सुनहरी चाँदनी में सामने फैले हुए नगर के कलस, गुम्बज और वृक्ष स्वप्न-चित्रों से लगते थे। जालपा की आँखें चन्द्रमा की ओर लगी हुई थीं। उसे ऐसा मालूम हो रहा था मैं चन्द्रमा की ओर उड़ी जा रही हूँ। उसे अपनी नाक में खुश्की, आँखों में जलन और सिर में चक्कर मालूम हो रहा था। कोई बात ध्यान में आते ही भूल जाती; और बहुत याद करने पर भी याद न आती थी। एक बार घर की याद आ गई, रोने लगी। एक ही क्षण में सहेलियों की याद आ गई, हँसने लगी। सहसा रमानाथ हाथ में एक पोटली लिए, मुसकिराता हुआ आया और चारपाई पर बैठ गया।

जालपा ने उठकर पूछा—पोटली में क्या है?

रमा०—बूझ जाओ तो जानूँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जालपा—हँसी का गोलगप्पा है, (यह कहकर हँसने लगी)

रमा०—ग़लत।

जालपा—नींद की गठरी होगी।

रमा०—ग़लत।

जालपा—तो प्रेम की पिटारी होगी।

रमानाथ—ठीक। आज मैं तुम्हें फूलों की देवी बनाऊँगा।

जालपा खिल उठी, रमा ने बड़े अनुराग से उसे फूलों के गहने पहनाने शुरू किए, फूलों के शीतल कोमल स्पर्श से, जालपा के कोमल शरीर में गुदगुदी-सी होने लगी। उन्हीं फूलों की भाँति उसका एक-एक रोम प्रफुल्लित हो गया।

रमा ने मुसकिराकर कहा—कुछ उपहार?

जालपा ने कुछ उत्तर न दिया। इस वेश में पति की ओर ताकते हुए भी उसे संकोच हुआ। उसकी बड़ी इच्छा हुई कि ज़रा आईने में अपनी छवि देखे। सामने कमरे में लैंप जल रहा था, वह उठकर कमरे में गई और आईने के सामने खड़ी हो गई। नशे की तरंग में उसे ऐसा मालूम हुआ कि मैं सचमुच फूलों की देवी हूँ। उसने पानदान उठा लिया और बाहर आकर पान बनाने लगी।

रमा को इस समय अपने कपट व्यवहार पर बड़ी ग्लानि हो रही थी। जालपा ने कमरे से लौटकर प्रेमोल्लसित नेत्रों से उसकी ओर देखा, तो उसने मुँह फेर लिया। उस सरल विश्वास से भरी हुई आँखों के सामने वह ताक न सका। उसने सोचा—मैं कितना बड़ा कायर हूँ। क्या मैं बाबूजी को साफ़-साफ़ जवाब न दे सकता था? मैंने हामी ही क्यों भरी? क्या जालपा से घर की दशा साफ़-साफ़ कह देना मेरा कर्त्तव्य न था? उसकी आँखें भर आईं। जाकर मुँडेर के पास खड़ा हो गया। प्रणय के उस निर्मल प्रकाश में उसका मनोविकार किसी भयंकर जन्तु की भाँति घूरता हुआ जान पड़ता था। अपने ऊपर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतनी घृणा हुई कि एक बार जी में आया, सारा कपट व्यापार खोल दूँ, लेकिन सँभल गया। कितना भयंकर परिणाम होगा। जालपा की नजरों से गिर जाने की कल्पना ही उसके लिए असह्य थी।

जालपा ने प्रेम-सरस नेत्रों से देखकर कहा—मेरे दादाजी तुम्हें देख कर गए, और अम्मा जी से तुम्हारा बखान करने लगे, तो मैं सोचती थी, तुम कैसे होगे। मेरे मन में तरह-तरह के चित्र आते थे।

रमानाथ ने एक लम्बी साँस खींची। कुछ जवाब न दिया।

जालपा ने फिर कहा—मेरी सखियाँ तुम्हें देखकर मुग्ध हो गईं। शहजादी तो खिड़की के सामने से हटती ही न थी। तुमसे बातें करने की उसकी बड़ी इच्छा थी। जब तुम अन्दर गये थे, तो उसी ने तुम्हें पान के बीड़े दिये थे, याद है।

रमा ने कोई जवाब न दिया।

जालपा—अजी, वही जो रंग-रूप में सबसे अच्छी थी, जिसके गाल पर एक तिल था, तुमने उसकी ओर बड़े प्रेम से देखा था, बेचारी लाज के मारे गड़ गई थी। मुझसे कहने लगी, जीजा तो बड़े रसिक जान पड़ते हैं। सखियों ने उसे खूब चिढ़ाया, बेचारी रोनी हो गई। याद है?

रमा ने मानों नदी में डूबते हुए कहा—मुझे तो याद नहीं आता।

जालपा—अच्छा अबकी चलोगे, तो दिखा दूँगी। आज तुम बाजार की तरफ गए थे कि नहीं?

रमा ने सिर झुकाकर कहा—आज तो फुरसत नहीं मिली।

जालपा—जाओ मैं तुमसे न बोलूँगी। रोज हीले-हवाले करते हो, कल ला दोगे न।

रमानाथ का कलेजा मसोस उठा। यह चन्द्रहार के लिए इतनी विकल हो रही है! इसे क्या मालूम कि दुर्भाग्य उसका सर्वस्व लूटने का सामान कर रहा है। जिस सरल बालिका पर उसे अपने प्राणों को न्योछावर करना चाहिए था, उसी का सर्वस्व अपहरण करने पर वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तुला हुआ है। वह इतना व्यग्र हुआ, कि जी में आया, कोठे से कूद कर प्राणों का अन्त कर दे।

आधी रात बीत चुकी थी। चन्द्रमा चोर की भाँति एक वृक्ष की आड़ से झाँक रहा था। जालपा पति के गले में हाथ डाले हुए निद्रा में मग्न थी। रमा मन में विकट संकल्प करके धीरे से उठा; पर निद्रा की गोद में सोये हुए पुष्प-प्रदीप ने उसे अस्थिर कर दिया। वह एक क्षण खड़ा मुग्ध नेत्रों से जालपा के निद्राविहसित मुख की ओर देखता रहा। कमरे में जाने का साहस न हुआ। फिर बैठ गया।

जालपा ने चौंककर पूछा—कहाँ जाते हो, क्या सवेरा हो गया?

रमा०—अभी तो बड़ी रात है।

जालपा—तो तुम बैठे क्यों हो?

रमा०—कुछ नहीं जरा पानी पीने उठा था।

जालपा ने प्रेमातुर होकर रमा के गले में बाहें डाल दीं और उसे सुलाकर कहा—तुम इस तरह मुझपर टोना करोगे, तो मैं भाग जाऊँगी। न-जाने किस तरह ताकते हो, क्या मन्त्र पढ़ते हो, कि मेरा मन चंचल हो जाता है। वासंती सच कहती थी, पुरुषों की आँख में टोना होता है।

रमा ने फूटे हुए स्वर में कहा—टोना नहीं कर रहा हूँ, आँखों की प्यास बुझा रहा हूँ। दोनों फिर सोए, एक उल्लास में डूबी हुई, दूसरा चिन्ता में मग्न।

तीन घंटे और गुज़र गये, द्वादशी के चाँद ने अपना विश्वदीपक बुझा दिया। प्रभात की शीतल समीर प्रकृति को मद के प्याले पिलाती फिरती थी। आधी रात तक जागनेवाला बाजार भी सो गया। केवल रमा अभी तक जाग रहा था। मन में भाँति-भाँति के तर्क-वितर्क उठने के कारण वह बार-बार उठता था; और फिर लेट जाता था। आखिर जब चार बजने की आवाज़ कान में आई, तो घबराकर उठ बैठा और कमरे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में जा पहुँचा। गहनों का सन्दूक़चा आलमारी में रक्खा हुआ था; रमा ने उसे उठा लिया, और थर थर काँपता हुआ नीचे उतर गया। इस घबराहट में उसे इतना अवकाश न मिला, कि वह गहने छाँट कर निकाल लेता।

दयानाथ नीचे बरामदे में सो रहे थे। रमा ने उन्हें धीरे से जगाया, उन्होंने हकबका कर पूछा—कौन ?

रमा ने ओठ पर उँगली रख कर कहा—मैं हूँ। यह सन्दूक़ची लाया हूँ। रख लीजिये।

दयानाथ सावधान होकर बैठ गये। अभी तक केवल उनकी आँखें जागी थीं, अब चेतना भी जाग्रत हो गई। रमा ने जिस वक्त उनसे गहने उठा लाने की बात कही थी, उन्होंने समझा था कि यह आवेश में ऐसा कह रहा है। उन्हें इसका विश्वास न आया कि रमा जो कुछ कह रहा है उसे भी कर दिखायेगा। इन कमीनी चालों से वह अलग ही रहना चाहते थे। ऐसे कुत्सित कार्य में पुत्र से साँठ-गाँठ करना उनकी अन्तरात्मा को किसी तरह स्वीकार न था। पूछा—इसे क्यों उठा लाये ?

रमा ने धृष्टता से कहा—आप ही का तो हुक्म था ?

दया०—झूठ कहते हो।

रमा०—तो फिर रख आऊँ ?

रमा के इस प्रश्न ने दयानाथ को घोर संकट में डाल दिया, झेंपते हुए बोले—अब क्या रख आओगे ? कहीं देख ले, तो ग़ज़ब ही हो जाय। वही काम करोगे, जिसमें जग-हँसाई हो। खड़े क्या हो, सन्दू-कची मेरे बड़े सन्दूक में रख आओ और जाकर लेट रहो। कहीं जाग पड़े तो बस !

बरामदे के पीछे दयानाथ का कमरा था। उसमें देवदारु का पुराना सन्दूक रखा था। रमा ने सन्दूकची उसके अन्दर रख दी और बड़ी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फुर्ती से ऊपर चला गया। छत पर पहुँच कर उसने आहट ली, जालपा पिछले पहर की सुखद निद्रा में मग्न थी।

रमा ज्यों ही चारपाई पर बैठा, जालपा चौंक पड़ी और उससे चिपट गई। रमा ने पूछा—क्या है, तुम चौंक क्यों पड़ी?

जालपा ने इधर-उधर प्रसन्न नेत्रों से ताक कर कहा—कुछ नहीं एक स्वप्न देख रही थी। तुम बैठे क्यों हो, कितनी रात है अभी?

रमा ने लेटते हुए कहा—सवेरा हो रहा है, क्या स्वप्न देखती थीं?

जालपा—जैसे कोई चोर मेरे गहनों की सन्दूकची उठाए लिए जाता हो।

रमा का हृदय इतना ज़ोर से धक-धक करने लगा, मानों उस पर हथौड़े पड़ रहे हैं। खून सर्द हो गया। परन्तु सन्देह हुआ, कहीं इसने मुझे देख तो नहीं लिया। वह जोर से चिल्ला पड़ा—चोर! चोर!!

नीचे बरामदे में दयानाथ भी चिल्ला उठे—चोर! चोर!!

जालपा घबड़ाकर उठी। दौड़ी हुई कमरे में गई, झटके से आलमारी खोली। सन्दूकची वहाँ न थी। मूर्छित होकर गिर पड़ी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ग़बन

ग़बन प्रेमचन्द का कलापूर्ण उपन्यास है। जो खण्ड हमारे सामने है यह उसी विशाल 'ग़बन' का एक अंश है। इस संदर्भ में कहानी के सभी गुण हैं, पर यह एक छोटी कहानी ही नहीं है एक बड़े उपन्यास का बीज भी है। इस एक चावल से ही उपन्यास की परख हो जाती है, उपन्यास कला की सिद्धि देख पड़ती है।

स्वयं प्रेमचन्द ने उपन्यास के बारे में कुछ बातें कही हैं। हम उन्हीं की कसौटी लेकर, उनकी आलोचना करेंगे। कर्ता की कसौटी का आलोचना-जगत् में बहुत मान होता है।

प्रेमचन्द कहते हैं—मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है। 'ग़बन' सचमुच मानव-चरित्र का चित्र है। इस छोटे से टुकड़े में भी मानव-चरित्र के रहस्यों का—जीवन में दिन-रात होनेवाले अन्तर्द्वन्द्व और बहिर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्रण है। इसी से आलोचक ग़बन को चरित्रप्रधान उपन्यास का नमूना मानते हैं।

उपन्यास की आलोचन में दूसरी बात है कर्त्ता का दृष्टिकोण। आदर्शवाद और यथार्थवाद की दृष्टि का निर्णय करके ही चरित्र-प्रधान रचना का मूल्य आँका जा सकता है। प्रेमचन्द के अनुसार वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने ही के लिये यथार्थ का उपयोग होना चाहिये। ग़बन में ऐसा ही समावेश हुआ है। उसका यथार्थवाद पूर्णरूप से आदर्शोन्मुख है। उसका मुख्य उद्देश्य मनोरंजन के साथ 'आत्म-परिष्कार' और 'पथप्रदर्शन' है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपन्यास-साहित्य का तीसरा बड़ा प्रश्न है; उसका उद्देश्य । प्रेमचन्द 'कला के लिए कला' के सिद्धान्त को सबसे ऊँचा आदर्श मानते हैं। इसी से उनके अनुसार मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों की छटा दिखाना साहित्य का परम उद्देश्य है। पर साथ ही वे यह भी मानते हैं कि जो उपन्यास किसी विचार के प्रचार के लिये लिखा जाता है वह भी स्थायी महत्त्व का हो सकता है। हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि उसके विचार परोक्षरूप से व्यक्त हों, उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाये और उसमें मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभता रहे।

ग़बन के पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि प्रेमचन्द ने जो कुछ कहा है वह ठीक है। है तो यह प्रचार-प्रधान उपन्यास पर कलाकार के कौशल ने उसे स्थायी बना दिया है। सप्रयोजन रचना भी स्थायी और कालाश्रित हो सकती है, यदि वह प्रयोजन स्वाभाविकता और कला के भीतर छिपा रहे।

चौथी बात है कथावस्तु और कल्पना का विचार। यदि कवि में कल्पना है तो वह किसी भी छोटी घटना को लेकर अपना काम चला लेता है। उपन्यास में घटना की अपेक्षा कल्पना का महत्त्व बड़ा है। प्रेमचन्द के इस उपन्यास में यह बात सोलहो आने सत्य है। कल्पना के कारण ही वह इतना रमणीय है कि उसकी अस्वभाविकता और उसके चरित्रों की बनावटी कमज़ोरियाँ भी पाठक को नहीं खटकतीं।

पाँचवीं बात है लोक, शास्त्र आदि का निरीक्षण और लिखने का अभ्यास। ईश्वरदत्त शक्ति रहने पर भी कर्ता अपनी कृति को सजीव और स्वाभाविक नहीं बना सकता, यदि उसने उचित साधनों के द्वारा साहित्य की साधना नहीं की है। ग़बन में कर्ता की पूरी साधना के दर्शन होते हैं। उसके आरम्भिक उपन्यासों में भी प्रतिभा है, पर उपन्यास कला की ऐसी पूर्णता नहीं है।

उपन्यास में कल्पना, सजीवता और स्वाभाविकता आदि सब कुछ होने पर भी दो बातों की कमी से सब कुछ बिगड़ जाता है। एक साकांक्षता का निर्वाह और दूसरा संग्रह और त्याग का चुनाव। 'पहले छोटी सी बात खुले, फिर उससे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कुछ बड़ी और अन्त में मुख्य रहस्य खुलें। जिसमें पाठक की इच्छा सब कुछ जानने के लिए बलवती होती चली जाय।' और इसी प्रकार 'उपन्यासकला में यह बात भी बड़े महत्व की है कि लेखक क्या लिखे और क्या छोड़ दे।' प्रेमचन्द ने अपनी कही इन दोनों बातों को खूब साधा है, ग़बन इसका अच्छा सबूत है।

भाषा और शैली की दृष्टि से प्रेमचन्द का जादू सिर पर चढ़ कर बोलता है। ग़बन की भाषा टकसाली मानी जाती है, शैली सौम्य और सरल! यद्यपि इतिहास और भावना से संबंध रखनेवाले उपन्यासों में प्रसंगभरी और मधुर छायामयी कोमलकान्त पदावली बड़ी भली लगती है पर वह प्रायः लोकप्रिय नहीं हो पाती—उसके पाठकों का क्षेत्र छोटा रहता है। ग़बन के पाठकों का क्षेत्र बहुत बड़ा है।

आलोचना पूरी हो जाने पर भी अध्ययन की दृष्टि से एक बात पर और विचार होना चाहिए। उपन्यास और कहानी में भेद क्या है। ऊपर की सभी बातें दोनों में घटती हैं। तब क्या केवल बड़ाई और छोटाई का ही भेद दोनों में है? क्या उपन्यास बड़ी कहानी का ही नाम है। दोनों साहित्यरूपों में इतना मेल है कि दोनों का भेद अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। उपन्यास में देश, काल और व्यक्ति की पूर्णता का समुद्र लहराता है और कहानी में केवल पूर्णघट की सुन्दरता रहती है। इसी सीमा के कारण कहानी की एकता का पूरा अनुभव होता है, पर उपन्यास में वह एकता कभी कभी बिखरी रह कर भी सुन्दर लगती है। उसमें एक मूल प्रवृत्ति अथवा विचार का प्रधान होना परमावश्यक नहीं। इससे भी बड़ा भेद यह है कि सफल कहानी में एक स्थिति का प्रभाव रहता है—एक प्रकार का नाटकत्व रहता है पर उपन्यास में एक व्यक्ति अथवा युग का इतिहास रहता है। कहानी में अनुभूति अधिक रहती है और उपन्यास में इतिवृत्त। इसी से उपन्यास की अपेक्षा कहानी में प्रभाववादी रीतियों की अधिक आवश्यकता पड़ती है और इसी अनुभूति प्रधानता के कारण कहानी की कथा वस्तु कभी जटिल नहीं होती—बड़ी सरल और सीधी होती है, शायद ही कभी उसमें आधिकारिक और प्रासंगिक कथा की दुहरी लड़ी रहती हो।

कहानी का एक बन्धन और याद रखना चाहिये कि प्रगीत काव्य के समान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसमें कला की निपुणता बहुत आवश्यक है और उपन्यास में महाकाव्य से भी अधिक स्वतन्त्र और विशाल क्षेत्र रहता है। यद्यपि कहानी में नियम के बंधन लग नहीं पाते पर उससे कला का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है।

एक शब्द में कहानी मन और हृदय का रंजन करती है पर उपन्यास का मन और हृदय के साथ ही थोड़ा सा लगाव बुद्धि से भी अवश्य ही रहता है। उपन्यास में बुद्धि का पूर्ण विलगाव कभी निभ नहीं सकता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नुमायश

नुमायश का अहाता बनकर तैयार हो चुका था। बीच-बीच में फुलवारी की क्यारियाँ लग चुकी थीं। दूकानों और बाज़ारों की व्यवस्था भी क़रीब-क़रीब हो ही गई थी। कुछ सजधज का काम अभी कहीं-कहीं बाकी था। मिस्त्री बिजली का तार लिए घूम रहे थे। कुछ पेड़ों पर चढ़े बल्ब टाँगने में लगे थे। रविशों पर सुर्ख़ी बिछ रही थी। बड़े गेट को सजाया जा रहा था।

सन्तू, लगभग सात वर्ष का एक लड़का जो कुछ ही दूर पर अन्धी माँ के साथ बैठा था, टकटकी लगाए यह सब देख रहा था, बोला—'माँ !'

'हाँ !'—माँ, बोली।

'नुमायश होगी यहाँ ?'

'क्यों ?'

'परसाल की तरह सब हो रहा है।'

'कोई खेल आया होगा।'

'नहीं, माँ ! लोग कहते जा रहे थे।'

'सच ?'

'हाँ।'

'होती होगी। अच्छा है, दो पैसे मिल जाया करेंगे।'

'जैसे परसाल, ऐं माँ !'

'हाँ'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'परसाल तुमने हमें टिकट नहीं दिलाया था।'

'कैसा टिकट ?'

'नुमायश का।'

'माँ ने कुछ उत्तर न दिया।'

'क्यों माँ !'—वह फिर बोला।

'वह फिर चुप थी।'

'बोलती नहीं।'

'बेकार की बातें मुझे नहीं आतीं।'

'अच्छा, दिलाया था ?'

'नहीं दिलाया था।'

'क्यों ?'

'चाहती नहीं थी।'—हँसते हुए उसने कहा।

सन्तू चुप हो रहा। जानता था खिन्न होने पर भी माँ ऐसे हँसती है। उसकी निगाह फिर उस अहाते पर टिक रही। कुछ देर बाद अकुलाया-सा फिर बोला—'अच्छा, माँ।'

'हाँ'

'अबकी दिला दोगी ?'

'दिला दूँगी।'—अन्यमनस्क सी हुई वह बोली।

'नहीं ?'—उसने फिर पूछा।

'दिला दूँगी, कहती तो हूँ।'—माँ ने तब ज़ोर से कहा और मुस्कुराहट को दबाने के प्रयत्न में दोनों ओठ ज़ोर से सटा लिए।

'कहती ही हो बस।'—सन्देह में माँ के ओठों की तरफ़ देखता हुआ वह बोला।

'ऐसा ही सही।'—माँ ने कहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अच्छा, सच बताओ माँ, दिलाओगी कि नहीं ?'—जी भर कर ज़ोर लगाकर सन्तू ने विनय की।

हृदय की इस अपील पर अन्धी चुप रह गई। झूठ बोलना भी उतना ही कठिन हो गया, जितना सच।

'क्यों माँ !'—सन्तू ने फिर पूछा।

'अच्छा, देखूँगी।'—गम्भीर होकर अन्धी बोली, जैसे एक बड़ा बोझ उसके ऊपर आ गया हो।

सन्तू प्रफुल्ल हो उठा और एक ओर से कुछ आदमियों को आते देख माँ को कुहनी लगाई। इशारा समझकर अन्धी ने कहना शुरू किया—'बाबू अन्धी मुहताज को, बाबू···

दो दिन बाद। नुमायश का उद्घाटन हो रहा था। गेट पर बहुत भीड़ थी। सड़कें भरी आ रही थीं। रंग-बिरंगी पोशाक में सँवारे हुए स्त्री, पुरुष और बच्चे आतुर होकर गेट की तरफ़ बढ़ रहे थे।

एक तरफ़ जहाँ मोटर रुकती थी, अंधी भिखारिन सन्तू का हाथ पकड़े इधर-उधर डोल रही थी। वह कहती जाती थी कि बाबू! अंधी मुहताज को······'

बाबू मोटरों से उतरते और बचकर एक ओर से निकल जाते। वह कहती रहती—'बाबू! अन्धी मुहताज को······'

सन्तू कभी गेट की ओर देखता, कभी पों-पों करती हुई मोटरों की ओर और कभी उत्सुक हो उमड़ी हुई उस भीड़ की ओर। बीच-बीच में बुढ़िया के मुँह की तरफ भी देख लेता—जैसे कुछ कहना चाहता हो। उसकी बात उसकी आँखों पर आ अटकी मालूम होती थी, पर अन्धी निर्विघ्न चिल्ला रही थी।—'बाबू'···

रात के ग्यारह बज गये। सन्तू माँ का हाथ पकड़े घूमता ही रहा। आखिर वह थक गया। खड़ा रहना मुश्किल मालूम होने लगा। बोला—'माँ !'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'हाँ !'

'कितने पैसे हो गये ?'

तू नहीं जानता क्या ?'

'चार अभी हुए।'

'हो गए।'

'तो टिकट मिल जायगा।'

'मिल जायगा, पर रोटी नहीं।'—अंधी हँसकर बोली।

सन्तू समझ गया। वह चुप हो गया। उसकी निगाह माँ के मुँह पर थी। कुछ सोचता-सा फिर बोला—'रोटी नहीं खाऊँगा।'

'अच्छा भैया ! पेट भर तो कभी यों ही नहीं मिलता, आज पूरा ही फाका सही।···पर सन्तू ! मुझसे तो उठा न जायगा। देख लो, कुछ आज ही की बात नहीं, कल को भी किसी के पैर चाहिये।'

सन्तू ने कुछ न कहा, और अन्धी फिर उसी रट में लग गई और लगी रही, जब तक कि वहाँ सुनसान न हो गया।

प्रतिदिन शाम को वैसी ही भीड़ होती थी। वैसा ही स्त्री, पुरुष, बच्चों का एक समुद्र आनन्द से हिलोरें लेता था। सन्तू भी उन्हीं में हर रोज़ घूमा किया। स्वयं दर्शकों में उसकी गिनती भले ही न थी, पर दर्शकों का भी एक दर्शक वह था। उनको देख-देख कर उसे कुछ नुमायश का आनन्द आ जाता था। उसमें उसका हित था। उनकी वृद्धि और समृद्धि को देखकर वह खुश ही होता था। जैसे-जैसे मोटरों, एका, बग्घियों की क़तार लम्बी होती, उसकी सोई हुई आशा भी वैसे-ही वैसे जगती जाती और उसके जल्दी-जल्दी उठते हुए क़दमों के पीछे अन्धी घिसटने लगती।

किन्तु गेट से निकलते हुए सज्जनों को भी वह देखता था—बहुत से हमउम्र होते थे, कुछ अधिक उम्र के और कुछ कम उम्र के। कोई कुछ तारीफ़ करता निकलता, कोई कुछ। वह परेशान-सा अन्धी को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेकर उनके सामने हाज़िर होता। वे बचकर निकल जाते, वह खड़ा देखता रह जाता। पर वह एक जगह खड़ा नहीं रह सकता था, क्योंकि बुढ़िया का हाथ उसके हाथ में बराबर चलते रहने का तक़ाजा किया करता था।

कई दिन हो गये थे। नुमाइश भर रही थी। आज कुछ ज्यादा लोग आ रहे थे। ख़रीदारी भी अधिक हो रही थी। दूकानदारों ने चीज़ें आज पहले से कुछ सस्ती कर दी थीं। लगभग सभी लोग कुछ-न-कुछ हाथ में लिए गेट से निकल रहे थे। कुछ गोद भरे चले आ रहे थे और कुछ के पीछे कुली लदे थे। अधिकांश बच्चों के हाथों में खिलौने थे। सन्तू भी अपनी आशा, का टूटा-सा खिलौना लिए वहीं मौजूद था। आज वह विशेष दौड़-धूप करता दिखाई दे रहा था। माँ ने वादा किया था कि अगर चार पैसे भी मिले, तो वह उसे दे देगी। जैसे-तैसे भीड़ को चीरता हुआ जल्दी-जल्दी एक से दूसरे सज्जन के सामने अपनी अन्धी माँ को पेश कर रहा था। माँ चिल्ला रही थी—'बाबू अन्धी मुहताज को—'

पर वह समय ही ऐसा नहीं मालूम होता था कि किसी को उस अन्धी के हाथ की ओर देखने की गुंजायश या फुर्सत होती।

सन्तू इधर से उधर, उधर से इधर ताना बिनता ही रहा। बहुत देर हो चली। उसने बार-बार माँ के मुँह की तरफ देखा कि शायद कुछ और उपाय बतलाए, पर पूछने की हिम्मत न हुई। भीड़ हल्की हो रही थी। आ कम रहे थे, जा अधिक। सन्तू को वह दिन भी जाता ही मालूम हुआ। आखिर वह बिना पूछे नहीं ही रह सका। बोला—'माँ!'

'हाँ।'

'पैसे हो गए?'

'हो गए।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'ला तो फिर।'

'बस, एक पैसे की कमी है।'

'कमी है!'

'हाँ।'

सन्तू चुप हो गया। किन्तु उसकी खामोशी की वजह समझ कर माँ ने कहा—'और देखो, शायद मिल जाय।'

सन्तू फिर अन्धी का हाथ पकड़ कर इधर-उधर घूमने लगा। वह चिल्लाने लगी—'बाबू! एक पैसा।'

वह बहुत बेचैन हो रहा था। जिन जिन बाबुओं को वह मोटर की ओर जाते देखता, जिन-जिन को बहुत मोटा ताजा पाता, जिन-जिन के बच्चे बहुत खेल-खिलौने लिए गेट से निकलते, नजर पड़ते ही उन्ही की ओर उसके पैर खुद-बखुद चल पड़ते। पर वे लोग अपने ही में कुछ इतने मशगूल मालूम होते कि उस ओर उनका ध्यान ही न जाता।

जानेवाले आगे को बढ़े ही चले जाते थे। मोटर वाले मोटर में बैठे आँखों से ओझल हो जाते थे। अन्धी माँ को खबर भी न होती थी कि कब कौन गया। वह उसी एक ओर मुँह किए चिल्लाती रहती जब तक कि सन्तू के हाथ का इशारा न मिलता।

सन्तू बहुत बेचैन था। एक पैसे की कमी थी। किसी एक बाबू का इशारा बाकी था। उसी की वह खोज में था; पर कोई नहीं मिल रहा था। यह साल भी यों ही चला जायगा, यह सोच-सोच कर वह गेट की तरफ देख लेता था। आखिर उसने देखा, एक बाबू बुकिंग आफ़िस पर खड़े टिकट ले रहे हैं। सन्तू ने झट अन्धी को वहाँ ले जा खड़ा किया। अन्धी ने जैसे कलेजे से पुकार कर कहा—'बाबू! एक पैसा अन्धी को भी।'

किन्तु बाबू खिड़की से टिकट खरीद, गेट की ओर घूमने लगे। सन्तू से न रहा गया। उसका मुँह अनायास ही कह उठा—'बाबू!'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाबू रुक गए। उन्हें जान पड़ा, कोई आवाज़ देता है। आज पहली ही बार सन्तू ने किसी को पुकारा था।

'क्यों ?'—बाबूजी बोले।

'तीन पैसे हैं।'

'तो ?'

'एक पैसा दे दो।'

'क्या मतलब ?'

'एक टिकट लूँगा।'

'अच्छा, रहने दो भाई ! भीख माँगकर नुमायश देखने के पक्ष में मैं नहीं हूँ।' बाबू क़हक़हा लगा कर बोले, और यह देखो, भिखमंगे भी नुमायश देखेंगे।'—कहते हुए गेट के पार हो गये। उसकी बात की दाद और भी कई आदमियों ने हँसकर दी। कुछ देर के लिये इसी विषय पर विचार-विनिमय छिड़ गया।

सन्तू वहीं खड़ा था। हिलना उसे मुश्किल हो गया। अन्धी के कानों में भी क़हक़हे की आवाज़ पड़ी। उसने ज़ोर से सन्तू का हाथ झटक दिया और 'देखी नुमायश' कहते हुए वहाँ से चलने का इशारा किया।

सुबह हुई। दोनों माँ-बेटे एक मिट्टी के पुश्ते पर बैठे हुए थे। सन्तू ने देखा—दूकानों का सामान ठेलों पर लाद कर नुमायश गेट से बाहर हो रहा है। बोला—माँ !

'क्यों ?'

'क्या आज नुमायश न रहेगी ?'

'कैसे ?'

'सामान जा रहा है।'

'तो ?'

'हमने नहीं देखी।'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अगले साल देख लेना।'—अन्धी बोली और ठहाका मार कर हँस पड़ी। सन्तू उसके मुँह की ओर देख रहा था। 'हमने नहीं देखी।' अन्धी ने फिर सन्तू की बात को दुहराया और ज़ोर से हँस पड़ी। सन्तू देख रहा था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नुमायश

इस कहानी में कहानी के सभी गुण हैं। यह इतनी छोटी है कि इसे कोई कामकाजी भी एक बैठक में पढ़ सकता है। इसकी शैली में इतना प्रवाह और भाषा में इतनी सरलता है कि पाठक अनजाने ही बढ़ता चला जाता है। पर इसका सबसे पहला आकर्षण है इसकी सीधी घटना। बड़ी परिचित बात है, एक अंधी बुढ़िया भिखमंगिन का हाथ पकड़े एक छोटा लड़का नुमायश के सामने घूम रहा है। इतना तो हम सभी देखते हैं पर कवि ने इस घटना के भीतर झाँक कर देखा है। वही भीतर की झाँकी दर्दभरी कहानी है। छोटी ही सी घटना इतने कौशल से सामने आती है कि दिल पर चोट किये बिना नहीं रहती। आप से आप करुण रस की निष्पत्ति हो जाती है। कहानी पूरी हो जाती है पर अंधी माँ का ठहाका मार कर हँसना नहीं भूलता। उसमें कितना मार्मिक व्यंग्य है। कितना भीषण चीत्कार है !! उसकी ठेस सहृदय का हृदय ही जानता है।

कहानी की कथा अपने छोटेपन में भी पूर्ण है, कुछ छूटने नहीं पाया है। सब कुछ है। समाज के दोनों पक्ष हैं। एक ओर नुमायश की मस्तानी सैर और दूसरी ओर मुहताज अंधी का लड़का। माँ के हृदय का चित्रण ही कहानी का हृदय है। इसीसे चरित्र-चित्रण सफल होने पर भी आलोचक की दृष्टि में यह रसप्रधान कहानी है।

कथावस्तु और चरित्र-चित्रण दोनों का सौंदर्य बढ़ानेवाला तीसरा गुण है माँ-बेटे का मर्मस्पर्शी कथोपकथन। लड़का कहता है—

माँ, सामान जा रहा है।

तो ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हमने नहीं देखी।

अगले साल देख लेना।

इन छोटे वाक्यों में साक्षात् करुणा बोल रही है।

लेखक कहानी की कथोपकथन–शैली का उस्ताद है। वह व्यर्थ का वर्णन नहीं करता। केवल माँ के ठहाके की बात लिख के चुप हो जाता है। उसका यही मौन कहानी कला की सफलता है। भाषा भी वैसी ही अनगढ़, सरल और स्वाभाविक है जैसी कहानी की घटना। वर्णन तो इसमें है ही नहीं और उसकी आवश्यकता भी नहीं। इस कहानी का एक प्रयोजन है समाज पर व्यंग्य परन्तु वह कलाकार की कला में छिपा हुआ है। हमारे सामने केवल क़हानी है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के देहान्त की ख़बर जब यहाँ के अंग्रेजो अख़बार के एक कोने में पढ़ने को मिली, तब अनुभव हुआ कि कितने गम्भीर भाव से उस नाम ने मेरे भीतर जगह कर ली थी। मेरे अपने लिये वह सामान्य घटना न थी। इतनी असामान्य थी कि मैं सोचता रह गया कि किस भाँति यह सम्भव हुआ कि भारत का यह समाचार पत्र, चाहे फिर यह अँग्रेजी में ही छपता हो, ऐसे इस सूचना को ग्रहण करे। हमने शरद को क्यों नहीं समझा ? क्यों यह बंगाल के ही ज़िम्मे रहा कि वह शरद को पाए; पाकर कृतार्थ हो और खोलकर विकल हो जाय ? सोचता हूँ, अगर ब्रिटिश-नीति और ब्रिटिश-भाषा की जगह भारत के पास अपनी राष्ट्र-नीति और अपनी राष्ट्र-भाषा होती तो ?

शरद का आविर्भाव एक विशिष्ट घटना थी। इससे उनके अभाव की घटना ऐतिहासिक ही हो जाती। वह हमें बिना छुए नहीं रह सकती। जो मेरे जीवन में अधिक वास्तविक, अधिक सत्य है, वह अधिक आभ्यन्तर भी है। उसी कारण वह परोक्ष है। शरद हमारे बीच उसी मार्मिक किन्तु परोक्ष तत्व के प्रतीक थे प्रदर्शन से विमुख, लुब्धाकांक्षाओं से दूर, सहज-सामान्य मानवता की वह प्रतिमूर्ति थे। असाधारण इसलिए कि वह अन्त तक साधारण बने रहे। स्पर्द्धापूर्वक दूसरे को नाँघकर स्वयं आगे और ऊँचे दीखने की प्रवृत्ति उनमें मानों नीचे मुँह गाड़ कर खो गई थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

—२—

शरच्चन्द्र का नाम मैंने जीवन में जल्दी नहीं जाना। किताबें पढ़ी थीं और पढ़कर मन हिल-हिल गया था। उनकी कोई कहानी शायद ही बिना रुलाए रही हो। पर किताब के द्वारा स्वयं लेखक को पढ़ने की बात बहुत पीछे जाकर सूझी। कहानियों और उपन्यासों में घटनावली ही तो मुख्य है, सो उस घटनावली तक ही पाठक की हैसियत से मेरा सम्बन्ध रहता था। तब उस पुस्तक के लेखक का नाम तक मानो अनावश्यक था।

'मँझली दीदी', 'बड़ी दीदी', 'परिणीता', 'पंडितजी', 'चन्द्रनाथ', विजया' आदि, मन की इसी स्थिति में मैंने पढ़ी। पढ़कर शरद की मँझली और बड़ी दीदियाँ ठीक-ठीक मानो वैसी ही दीदियाँ मेरी भी बन आई थीं। शरद के पंडितजी, चन्द्रनाथ, विजया एवं अन्य पात्र मेरे मन के निकट बहुत घनिष्ठ और प्रत्यक्ष बन-बन जाते थे। उनके दुख के साथ मेरे मन में रोना उठता था। जी में अकुलाहट होती थी कि, इन (पात्रों) पर पड़नेवाली विपता कैसे हो कि सब स्वयं मैं झेल लूँ। सहानुभूति ऐसी उमड़ कर उठती थी।

इतना था, पर शरद बाबू से मैं अनजान था। सृष्टि को देखता था, मेरी कैसी भारी मूर्खता !

इस मूर्खता का पार बहुत दिन बाद पाया। यह तमाम सृष्टि जिस स्रष्टा को व्यक्त करती है उसको चिन्तना-कल्पना में न लाऊँ तो सृष्टि को ही कैसे उपलब्ध कर सकता हूँ। इस सब का स्रोत जहाँ है, समन्वय जहाँ है, वहाँ क्या पीड़ा क्या विछोह है, क्या यह समझने का प्रयास मुझे नहीं करना चाहिए ?

अपने अभ्यन्तरादभ्यन्तर में से क्या कुछ डालकर शरद ने अपने पात्र-पात्रियों को ऐसा सजीव, प्रत्यक्ष और प्रेरण-मय बना कर हमारे सामने प्रस्तुत किया कि हम मानो अत्यन्त कृतार्थ भाव से अपना जी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन (पात्र-पात्रियों) की मुट्ठी में दे बैठे ? हमारे मन की बद्ध-मूल परुषता में, अहंकार-जटित हमारे नाना नकार-निषेधों में शरद के किस अतर्क्य बल की ठेस लगी कि वे गलकर बहने को हो गए और मन कातर हो आया ? किस भाँति यह हो सका, जानना कठिन है। पर इसके अतिरिक्त जानना ही और क्या है।

सपने सभी लेते हैं वे मनोरथ रथ से मनोरम हैं, क्योंकि ये स्वप्न हैं उनमें सत्यता नहीं, यथार्थता नहीं। वे इतने सूक्ष्म हैं कि स्थल के स्पर्श पर छू हो जाते हैं। इससे 'वे हैं' यह भी झूठ हो जाता है। हमारा स्वप्न हमारे पास ही झूठ है। हम जगे नहीं कि वह उड़ जाता है। अपने ही सपने को पकड़ना कितना कठिन है। वह याद तक में नहीं बँधता।

और स्वप्न क्या है ? क्या वे हमारी ही अतृप्तियों के रूपक नहीं हैं ? आकांक्षाओं के छोर नहीं हैं ?

अपने भीतर निरन्तर वर्तमान उन स्वप्निल भावनाओं को अपने ही समक्ष प्रत्यक्ष पाना कितना दुस्साध्य है। सम्भव तो है, पर कितनी असम्भवता के साथ सम्भव। उसके बाद उन्हीं स्वप्नोपम भावनांशों को अपने से अन्य किसी के मन के भीतर उपलब्ध करा देना कितना दुस्साध्य न होगा। क्या यह काम कभी चतुराई के बस का हो सकता है ? केवलमात्र कौशल से हो सकता है लोग जो कहें, पर शरद ने यह काम किया और इस खूबी से किया कि अचम्भा होता है। कह लो शरद को आर्टिस्ट; लेकिन तब आर्ट चतुरता नहीं है। वह आत्मदान है। शरद ने अपने भीतर के दुर्लभ को उपलब्ध करने की राह में उसे हमारे लिए भी यत्किंचित् सुलभ कर दिया। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा जो चाहे पाया हो, पर हमने तो उनमें बहुत-कुछ अपना मर्म पाया। शरद ने अपने को देकर पाया है। जान पड़ता है उन्होंने अपने भीतर कुछ नहीं छोड़ा, बूँद-बूँद दे डाला है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह आत्मदान की लाचारी क्यों ? दुनियाँ में सब अपने-अपने को बटोरते दीखते हैं। तब यह व्यक्ति क्यों अपने जीवन में मानों दोनों ओर बत्ती लगाकर जलता रहा ? क्या इसलिए कि हमें प्रकाश देना चाहता था ? छिः, यह कहना आग की जलन को मिठास कहना है। मेरे पास एक ही उत्तर है। वह यह कि वह व्यक्ति महाप्राण था। महाप्राण पुरुष अपने स्वभाव में यह दुर्भाग्य लाते हैं। दुनिया कहे उसे प्रतिभा, लेकिन वह भीतर तक करुण पीड़ा की बनी होती है।

तभी तो उनके पात्र चित्र नहीं हैं। चित्र में गति-परिणमन नहीं होता, आत्मा नहीं होती। शरद की मूर्तियाँ इतनी आत्ममयी हैं कि उनपर हम-आप विवाद ही कर सकते हैं अधिकार नहीं कर सकते। उनमें अपना जीवन, अपना स्वभाव है इस कारण वे सब इतनी अबूझ हैं कि कोई दो व्यक्ति उनपर एक मत नहीं रख सकते। शरद ने जो कुछ उनके द्वारा करा दिया है, उससे आगे और उसके अतिरिक्त मानो कोई उन मूर्तियों से कुछ नहीं करा सकता। पुस्तक-गत स्थिति से भिन्न परिस्थिति में वे पात्र-पात्रियाँ क्या करतीं, लाख विवेचन पर भी मानो कोई निश्चित निश्चय नहीं हो सकता।

वे पात्र सजीव हैं, इससे नियम-निर्मित नहीं हैं। उनकी सृष्टि का सार शरद की अपनी आत्मा में ही है। आत्मा देश-कालातीत होती है। वह भाषा की परिभाषा में नहीं आती, नहीं आयगी। जीवन बेहिसाब है, क्योंकि उसका उस स्रोत से उद्‌गम है, जहाँ से इजाजत लेकर स्वयं काल चलता है। शरद के चरित्र उसीसे अनुप्राणित हैं। इससे उनपर कभी विवाद की समाप्ति नहीं हो सकती। मानो उनका भेद उन्हीं के भीतर बन्द है। भीतर से ही वह मिले तो मिले, बाहर से वह समझ की पकड़ में न आयगा। शरद ने अपने में से कुछ इतने गहरे की वस्तु उनमें डाली है कि उसे जाना नहीं जा सकता, अनुभूत ही किया जा सकता है। मेरे विचार में स्वयं शरद ने अपने पात्रों को जानने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की स्पर्धा नहीं की। शरद का नाता उनसे प्रेम का नाता था। प्रेम, यानी उत्तरोत्तर अभिन्नता। विज्ञान का नाता नहीं, जिसकी शर्त है द्वित्व और पार्थक्य।

इस सिलसिले में क्या मैं कहूँ कि रवि ठाकुर और अधिकांश अन्य पाश्चात्य लेखकों का अपने पात्रों के साथ सम्बन्ध इतने विशुद्ध प्रेम अर्थात् ऐक्य का नहीं होता। बीच में कहीं मानों विज्ञान को आ घुसने के लिए दुराव भी होता है। आधुनिक भाषा में कहें तो वे अपने पात्रों के प्रति, और जगत के प्रति प्रेमी से अधिक धीमान हैं।

—३—

ठीक सन् मुझे याद नहीं। शायद ३१ की बात है श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियों की एक पुस्तक हिन्दी में छपा रहे थे। भारतीय कलाकारों की बात करते हुए बोले—"भारत की ओर से इस संग्रह में दो कहानियाँ देना चाहता हूँ। क्या राय है?"

पूछा—"मैंने आप क्या सोचते हैं?

बोले—"शरद को मैं भारत का सर्वश्रेष्ठ कहानी लेखक मानता हूँ। रवीन्द्रनाथ की कहानी तो जायगी ही। उनकी कहानी क्या एक-एक नगीना हैं। पर शरद की कहानी कोई छोटी नहीं मिल रही है।"

मैंने कहा—"हिन्दी की पुस्तक में प्रेमचन्द की अनुपस्थिति निभेगी?"

बोले—"लेकिन, भाई, प्रेमचन्द शरद-रवीन्द्र के बाद आते हैं। क्यों, नहीं?"

आखिर पुस्तक में प्रेमचन्द की कहानी दी गई और शरच्चन्द्र की नहीं दी जा सकी। इसपर चन्द्रगुप्तजी का मन खिन्न था। पर शरद की छोटी कहानी भी दुर्लभ हो रही थी।

बोले—"शरद को मैं निश्चित रूप से भारत का सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मानता हूँ। जानता हूँ मैं वह बात दोहरा रहा हूँ। पर बार बार उसको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहकर मानो फिर कहने की इच्छा रहती है। रवीन्द्र की और बात है। साहित्यकार शरद से कहीं बड़े वह हों और हैं, पर कहानी की जहाँ चर्चा हो, वहाँ शरद हैं। क्यों, क्या नहीं ?"

मैंने तब कहा था (कहा था, अब नहीं कहता) कि मुझमें वैसी श्रद्धा नहीं है। शरद, हाँ, अच्छा लिखते हैं। पर जान पड़ता है, कहीं से कोई लटका उन्हें हाथ लग गया है। एक गुर पा गए हैं, बस उसी को हर जगह इस्तेमाल कर जाते हैं। देखिए न, हर कहानी में घूम-फिर कर वही बात, वही बात !

श्री चन्द्रगुप्त सुनकर मेरी ओर देखते-के-देखते रह गए थे। मानो मेरी धृष्टता सह्य हो सकी तो इसी से कि बेहद अप्रत्याशित थी। उस समय तो जैसे क्रोध भी उनसे न करते बना।

मैंने कहा—"सुनिए, शरद एक काम लाजवाब खूबी से करते हैं। वह खूबी है, और बेशक लाजवाब है। लेकिन लाजवाब हो चाहे कुछ हो, बस वह अकेली खूबी ही उनके पास है। स्त्री और पुरुष के प्रणय और मान के सम्बन्धों का जो चित्र वह खींच कर रख देते हैं, क्या वह चित्रण कहीं और भी मिलेगा ? लेकिन दुनिया स्त्री-पुरुष-प्रेम नहीं है। वह और भी बहुत कुछ है। असल में जीवन-दर्शन उनका एकांगी है। कहता तो हूँ कि कहीं से गुरु मंत्र पा गए हैं। उसी के बल पर चमत्कार-सा दिखा देते हैं।"

चन्द्रगुप्त जी ने मुझे तरह-तरह से समझाया-तर्क से भी, आग्रह से भी, झिड़का से भी। कहा कि कहानी-कला के बारे में ऐसी अहंकृत, उथली और भ्रान्त धारणा बनाकर चलना अपने हक में मेरे लिए अशुभ होगा। लेकिन मैं न मान सका। कहता रहा कि शरद की खूबी आकस्मिक है, गहरी नहीं है। शरद में रमी हुई नहीं है। एक प्रकार का रचना-कौशल है ; अधिक नहीं।

मैं नहीं जानता अगर ऐसा माननेवाले और लोग हों। लेकिन मैं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह जानता हूँ कि आज मैं ऐसा नहीं मानता। आज अचरज करता हूँ कि वह सब मैं किस भाँति कह गया हूँगा।

इस परिवर्तन का कारण है। कारण यह कि दो (अथवा अधिक) व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों के विकास अथवा विचार में जो मूल-सिद्धान्त का काम करता है, वही तो है सत्य। उसके अतिरिक्त ज्ञय और क्या है। क्या जो यह अनेकता की और दुई की माया चारो ओर फैली है वह अपने-आप में जानने योग्य है? वैविद्धय या अपने-आप में अर्थकारी है। अपने-अपने खानों में बटा हुआ विशेषित ज्ञान क्या सचमुच सत्य है? वह सत्य हो कैसे सकता है। फिर तो सत्य विभक्त और खंडित ठहरेगा। इससे उस प्रकार के लौकिक ज्ञान का समग्र रूप में मूलाधार जहाँ है, सत्य भी वहीं है। और लौकिक ज्ञान हितकर है तो तभी जब वह उस परमतत्व को प्रकाशित और विशद करे, जहाँ अनेक का ऐक्य और समस्त का समन्वय है।

व्यक्ति सच है कि पदार्थ?

व्यक्ति सच है कि समाज?

एक व्यक्ति सच है कि दूसरा व्यक्ति?

ये मूल प्रश्न जब सामने खड़े होते हैं तो जान पड़ता है कि सत्य किसी दूसरे को छोड़कर किसी एक में नहीं है। वह कहीं भी एक जगह नहीं है। पदार्थ में नहीं है, व्यक्ति में नहीं है समाज में नहीं है—वह एक एक में नहीं है। वह अनेक ऐक्य में है। वह ऐक्य है।

अर्थात् जो किन्हीं दो को दूर से पास करता है; और पास से इतना पास करता है कि वे दो एक हो जायँ, जो बिना इतना किये चैन लेता नहीं और न चैन देता है—जगत में यदि कुछ ज्ञातव्य है। वह है प्रेम। लिखने-पढ़ने द्वारा अथवा व्यवसाय-तपस्या द्वारा यदि कुछ भी हमें खोजना है, जानना है, पाना है, तो वह वही प्रेम है।

शरद ने यदि लौट-लौट कर अपनी रचनाओं में (स्त्री-पुरुष) प्रेम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की चर्चा की, उसी की व्याख्या की, तो समाज-हित की दृष्टि से, लेखक की हैसियत से, इससे और अधिक करणीय कर्तव्य दूसरा हो कौन सकता है ? अन्य बौद्धिक बातें झमेला हैं। वाद और विवाद बहुत से चल सकते हैं, चल रहे ही हैं लेकिन उनके भीतर व्यर्थता बहुत है, सिद्धि यत्किंचित् भी नहीं है । उनके ऊपर दूकानदारी चल सकती है, लड़ाई बन सकती है, मानव-हित-साधन उनसे असम्भव है। प्रेम का योग यदि नहीं, तो बौद्धिकता जड़ता है, बन्धन है।

इसलिए शरच्चन्द्र ने अनावश्यक को छोड़ कर आवश्यक ही पकड़ा, जब कि उन्होंने राजनीति एवं समाजनीति देशोद्धार अथवा समाजोद्धार की चर्चा नहीं की । स्त्री-पुरुष के मध्य खिंचाव की वेदना जितना सघन और सूक्ष्म रूप से शरद चित्रित कर सके हैं, उतने ही अंश में वह अपने को ज्ञानी प्रमाणित कर सके हैं । षड्दर्शनों का पंडित कैसा दार्शनिक है, मैं नहीं जानता। पर शरद खरे दार्शनिक हैं, यह मैं कृतज्ञभाव से स्वीकार करना चाहता हूँ। कलाकार का मैं और अर्थ नहीं जानता। कलाकार गतिशीलता में सत्य को बूझता है, पंडित का सत्य निस्पन्द है।

ऊपर कहा गया कि समाज-हित की दृष्टि से जो सर्वाधिक आवश्यक है, वह शरद ने किया। समाज मानव-सम्बन्धों को लेकर बनता है। शरद ने उन सम्बन्धों के भीतर भावना की उष्णता और आर्द्रता पहुँचाई। समाज के भिन्न पदस्थ लोगों को (पुरुषों को, स्त्रियों को) उसने मानवता के पैमाने से नापा और नापना बताया। समाज में जो ऊँचा है, वह ऊँचा हो सकता है, नहीं भी हो सकता। कौन कहाँ किस जगह को भर रहा है, यह तो बाह्य परिस्थितियों पर अवलम्बित हो सकता है। मुख्य प्रश्न यह है कि वह वहाँ अपने स्वधर्म के मध्य कैसे वर्तन करता है। शरद ने इसी भीतरी दृष्टि से मानव-समाज को देखा और दिखाया। और इस व्यापार में जितने सहानुभूति-पूर्ण और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सहज साम्य के साथ शरद ने कर्तव्य पालन किया, उतना कम देखने में आता है। रवि ठाकुर तक में पक्ष-समर्थन है। प्रेमचन्द में तो वह खूब उभार में है। इधर रूसी विचार से प्रभावित साहित्य में वह बेहद उग्रता से है। शरद की सहानुभूति व्यापक है, यह कथन इस कारण यथेष्ट नहीं है, क्योंकि वह सब कहीं एक-सी गहरी भी है। श्रीमान् की सहानुभूति और भी व्यापक हो सकती है; पर उसमें क्या अनुभूति की गहराई भी होती है? शरद में विस्तार कम है, तो घनता उस कमी को पूरा कर देती है। तात्विक गहनता उतनी नहीं है तब प्रसाद सविशेष है। उनकी रचनाओं में कहना कठिन हो जाता है कि कौन शरद को विशेष प्रिय है, कौन नायक है, कौन प्रतिनायक, कौन खल। जान पड़ता है, जैसे सब वस स्वयं हैं।

पर व्यक्ति की विशेषता ही उसकी मर्यादा भी होती है। शरद समाज-हित की दृष्टि से बेहद प्रभावक और उपादेय हैं (उनकी लोक-प्रियता देखिए!) तब आत्म-हित की दृष्टि उस साहित्य में विशेष नहीं है। शरद में व्यक्ति और समाज सदा परस्पर सम्मुख रहे हैं। व्यक्ति और विराट्, व्यक्ति और समष्टि का साम्मुख्य वहाँ नहीं के तुल्य है। उनकी नायिका वंगनारी-समाज की जैसी सदस्या है, क्या वैसी ही मानव नारी-समाज की भी है? शायद नहीं। उससे आगे बढ़कर क्या कोई ऐसी भी है, जो नर-नारी के भेद से (मानसिक स्तर पर) ऊँची हो जाती है? नहीं, ऐसा तो बिलकुल नहीं कोई पुरुष-पात्र नहीं है, जिसके लिए मध्य बिन्दु कोई सदेह नारी न हो, कुछ और हो। और कोई नारी नहीं है, जिसने देहधारी पुरुष को लाँघ कर इसी भाँति किसी एक संकल्प को समर्पण अथवा वरण किया हो।

जहाँ प्रश्न उस तल तक उठता है, वहाँ भारत में हमारी आँख बर-बस रवीन्द्र की ओर उठ जाती है। समाज के हेतु से नहीं, बल्कि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मानों अपने भीतर से ही रवीन्द्र के पात्र समूची प्रकृति के ही साथ द्वन्द्वग्रस्त हैं। वे जैसे अपनी ही गाँठ को खोलना चाह रहे हैं।

इसी से शरद जब कि हमारे जी को मथ डालते हैं, तब क्या वह हमें विराट् की ओर भी उद्बुद्ध करते हैं? स्तूपाकार महदादर्श-पात्र शरद नहीं खड़े करते। पात्र देते हैं, वह प्रतीक नहीं देते।

लेकिन क्या हम इसे शरद की त्रुटि कहकर छुट्टी पाएँ? मानव और मानव के प्रेम की, उनके सम्बन्धों की, समस्या को शरद ने इतना अपना लिया कि व्यक्ति और विराट् प्रश्न पीछे रह गया। पर क्यों इसके लिए भी हम सामाजिक व्यक्ति की हैसियत से उनके और अधिक कृतज्ञ नहीं हो सकते।

—४—

एक मित्र के साथ की बात-चीत भूलती नहीं है। भूल जाती, अगर मैं मित्र को मामूली मान सकता। विचार और परख के आदमी थे और तबीयत के साफ़। कलकत्ते रहते थे। मैं साधारणतया शरच्चन्द्र के बारे में जिज्ञासा से भरा रहता था। जानकारी जो मिले उसी को संग्रह कर लेना चाहता था।

मैंने कहा—"सुना है, शरद बाबू यहीं यहीं कलकत्ते में किसी जगह हैं। आप जानते हैं?"

बोले—"शरद नावलिस्ट न? हाँ, रहते हैं। जगह बिलकुल ठीक तो नहीं जानता। कुछ काम है?"

मैंने कहा—"काम तो क्या, यों ही पूछा। कभी मिलने को जी हो आता है।"

बोले—"जिससे मिलना चाहते हो, उसे जानते भी हो? मैं तो मिलने की सलाह न दूँगा।"

पूछा—"क्यों?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बोले—"आदमी कुछ—यों ही है। तरीक़े का आदमी नहीं है। संस्कारिता उसमें नहीं दीखती।"

पूछा—"आप उनसे मिले हैं?"

बोले—"मिला नहीं, देखा है। यों इतिहास काफ़ी कुछ जानता हूँ। असल में उस व्यक्ति को सभ्य सोसाइटी मिली भी तो नहीं। और जब मिली तब संस्कार पक चुके होंगे।" सुनकर मैं असमंजस में पड़ गया। जानना चाहा कि ऐसी अभद्रता के सूचक लक्षण उन्होंने क्या क्या पाए हैं। और फिर दीखनेवाली भद्रता क्या संदिग्ध वस्तु भी नहीं हो सकती? कपड़े ढङ्ग के न हों तो क्या मन साफ़ नहीं रह सकता?

मित्र ने बात सुनी अनसुनी कर दी और बताने लगे कि अजी वह शख्स शराब इतनी पीता है कि तौबह!

मैंने पूछा—"तो! इनों-गिनों को छोड़कर यूरोप-अमरीका में सब शराब पीते हैं, तो क्या यह कहना होगा कि सब अशिष्ट हैं! शराब इतनी बड़ी चीज़ है?"

बोले—"और भी ऐब हैं। सभी ऐब हैं।"

मैंने कहा—"सब तो कहाँ से होंगे। क्योंकि सब ऐब शरद में ही हो जावेंगे, तो बाक़ी हम आपके लिए क्या बचेगा? पर सुनते हैं, उन्होंने शादी नहीं की।"

मित्र सुनकर हँस दिए। वह हँसी जी की नहीं, व्यङ्ग की थी। बोले—"शादी बन्धन जो है।"

मुझे यह बात रुची नहीं। चाहा कि बात व्यंग्य से नहीं, सफ़ाई से हो।

बोले—"साफ़ मुझसे न कहलाओ। फिर एक क़िस्सा नहीं है। कहूँ भी तो क्या-क्या? और तुम न सुनो तो अच्छा।"

कुछ रुक कर मैंने पूछा—"आपने उनकी रचनाएँ पढ़ी हैं?"

५

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बोले—"कुछ पढ़ी हैं। लिखता अच्छा है। लेकिन उससे क्या ?"

मैंने कहा कि मुझे नहीं मालूम होता कि लिखकर दूसरे के मन को प्रभावित करना इतना आसान काम है और वह काम बुरे मन और मैली तबियत से हो सकता है।

बोले—"अभी दुनिया और देखो। लिखना लिखना है, इन्सानियत और चीज़ है।"

मैं उन मित्र की शरद के प्रति ऐसी अप्रिय भावनाओं का भेद अब भी नहीं जानता हूँ। शरद से उनका वैर नहीं। फिर उन भावनाओं में ऐसी हीनता, ऐसी परुषता क्यों थी ? प्रतीत होता है कि ऐसे मामलों में स्वरति ही परवैर जितना काम दे जाती है। वह मित्र अपने सम्बन्ध में इतने आश्वस्त थे कि जैसे आत्म-निरीक्षण और आत्म-ग्लानि की उन्हें आवश्यकता ही न हो। इससे जिस आसानी से अपने को सही मानते थे, उसी आसानी से दूसरे को ग़लत मान सकते थे।

उन्होंने जानना चाहा कि आख़िर शरद को जानने की मैं क्यों इतनी उत्कंठा रखता हूँ। कुछ दिलचस्प कहानियाँ लिख दी हैं, इसीलिये ?

मैंने कहा—"हाँ।"

बोले—"कहानी तो मन-गढ़न्त कल्पना होती है। जो अच्छी कहानी लिखता है, वह अच्छा झूठ बोलता है, यही तो मतलब हुआ ?"

मैंने कहा—"यह भी सही। लेकिन क्या इतनी तसल्ली कम है कि बुरा झूठ नहीं बोलता ? और जो अच्छा है, यह सच ही होता है। झूठ भी कभी अच्छा हुआ है ?"

बोले—"चलो, तर्क छोड़ो। लेकिन उस शख्स से आख़िर चाहते क्या हो ?"

कहा—"प्रणाम-निवेदन करना चाहता हूँ। मैं उनका कृतज्ञ हूँ।"

वह मेरी इस भावना को नहीं समझ सके। मैं भी क्या समझा सकता था। निश्चय जाना, यह अन्त में भावनाओं का ही प्रश्न है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'जाकी रही भावना जैसी'। क्योंकि इसके बाद उन्होंने शरद बाबू के सम्बन्ध में जाने क्या-क्या बातें न सुनाईं। उन्हें ज्यों-का-त्यों माना जाय तो शरद इतने काले बनेंगे, जितना कोयला। मैं सब सुनता रहा।

बोले—"अब भी उनके लिए तुम्हारा आदर कायम है?"

मैंने कहा—"सच कहूँ तो विस्मय कुछ बढ़ गया है। और आदर भी बढ़ गया है। जो शरद इतना मैला है और फिर भी इतनी रचनाओं से इतनी सुनहरी और विविध रंग की आभा बिखेर सकता है, तो इससे मेरे मन को यही मालूम होता है कि वह और भी जानने योग्य है, और भी गहन है।"

बोले—"तुम मेरा विश्वास नहीं करते?"

मैंने कहा—"इसीलिए नहीं करता कि मैं शरद को देवता नहीं समझना चाहता। उनकी रचनाओं में जो है, उस रचनाकार को सच मानूँ, और आपकी बातों में जो शरद दीखता है, उसे भी विश्वसनीय मान लूँ, तो शरद मानवोत्तर, लोकोत्तर हो जाते हैं—एकदम विस्मय-पुरुष।"

नहीं जानता कि भिन्न लोगों की भिन्न, यहाँ तक कि प्रतिकूल, धारणाओं का मेल कैसे बैठाया जावे। सच यह है कि सत्य अनन्त है। और झूठ बस अहंकार ही है, जिसका शरद में इतना अत्यन्ताभाव है कि मन होता है कि कहूँ कि शरद धार्मिक पुरुष थे। उनकी रचनाएँ लगभग धर्म-ग्रन्थ ही हैं।

अचरज है कि जिस रचना की सहायता से मेरे मन में प्रीति का आवेश भर उठता है, उसी रचना के कारण दूसरे व्यक्ति को शरद दानव किस भाँति प्रतीत हो आते हैं। देखता हूँ कि मेरी कृतज्ञता और श्रद्धा उनके प्रति जितनी अडिग है, उस ओर की अश्रद्धा भी उतनी ही कट्टर है। पर वह जो हो और व्यक्तियों की मतियाँ जितनी भिन्न हों, यह पक्का निश्चय है कि जो शक्ति विना किसी आयुध के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काग़ज पर छपे शब्दों द्वारा किसी एक के भी जी को हिलाकर उसमें से उच्छ्वास और आँसू निकलवा सकती है, वह शक्ति दानवी नहीं है। नहीं, दानवी वह कभी नहीं है।

—५—

दर्शनशास्त्र के एक बंगाली प्रोफेसर से, जो अब चौथेपन में हैं और अवकाश-प्राप्त हैं, मिलने पर अक्सर कला और धर्म की चर्चा चल निकला करती है। कहने लगे—"कला और पैसा, ये दो हैं। एक दूसरे पर नहीं टिक सकते। कला को व्यवसाय बनाना ग़लत है। लेकिन जीना तो कलाकार को भी पड़ता है न। जीने में पैसा लगता है। और आज दुनिया की यह हालत है कि पैसा पाने के लिये छीन-झपट की वृत्ति चाहिए। राजनीति का बोलबाला है और पैसा मुद्रा-नीति के तावे है। इससे कला का व्यभिचार होता है। व्यभिचार व्यभिचार हो, पर उससे टके जो सीधे होते हैं। इससे टके कि दुनिया में व्यभिचार आर्ट क्यों न हो जाय। इससे आज दिन 'आर्टिस्ट' के आर्ट की ज़रूरत नहीं है, 'आर्टिज़न' वाला आर्ट चाहिए। इससे आर्ट का सत्यानाश हो जायगा, माना, पर रोटी तो मिलेगी........."

बाबा (उनको हम यही कहते हैं) बोलते कम हैं, बोल पड़ते हैं तो रुकना सहज नहीं रहता। और इस आर्ट और व्यवसाय के विरोध के बारे में जैसे उनके भीतर कहीं घाव है। ठेस लगी कि फिर व्यथा ही वहाँ से निकल पड़ती है।

मैंने कहा—"सुनिए। आप शरद को जानते हैं?"

बोले—"बंगाली हूँ, शरद को न जानूँगा? हाँ, तुम समझते क्या हो। शरद पैसे को मिट्टी भी नहीं, मैल समझता था। कुरता-धोती से आगे उसने कपड़ा नहीं जाना। धन आया, पर मन पर क्या उसकी छाया भी आ सकी?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके बाद स्वदेश, विदेश, आदिकाल और आधुनिक-काल के कलाविदों की चर्चा उन्होंने छेड़ी कि—

मैंने कहा—"आप निकट से उन्हें जानते हैं न ?"

बोले—"हमारा एक क्लास-फ़ेलो शरद का बहुत घनिष्ठ मित्र रहा है।"

मैंने कहा—"मित्र ? तो शरद मित्र-हीन नहीं थे, जैसे कि वह पत्नीहीन थे ?"

बोले—"ओः, मित्र से वह बात नहीं। He was a solitary soul that way (उस दृष्टि से वह एकाकी थे)।"

मैंने पूछा—"निकटके रिश्तेदार हैं ?"

बोले—"रिश्तेदार होंगे। शायद हैं। पर मेरा विश्वास है कि शरद के अपने चक्कर में कोई नहीं है। या कहो किसी के चक्कर में वह स्वयं नहीं है।"

मैंने पूछा—"शादी ?"

"एक बरमीज कोई थीं। फिर वह भी नहीं थीं।"

"नहीं रहीं ! यानी—"

"नहीं नहीं। सुना, उन्हें खुद बरमा भेज दिया।"

वह व्यक्ति जिसने पत्नी रूप में नारी को कभी नहीं पाया—प्रतिभा पाई, बासठ वर्ष की वय पाई, स्नेह से लबालब भरी आत्मा पाई, फिर भी नारी को जिसने पत्नी नहीं पाया—ठीक उसी व्यक्ति ने नारी हृदय को जितना स्पन्दनशील और सम्पूर्ण भाव से चित्रित किया, वैसा क्या कोई गृहस्थ कर सका ? नहीं कर सका।

इसी से मैं इस विरागी, फिर भी संसारी प्राणी के प्रति उत्कंठित जिज्ञासा से भर-भर आया।

देवदास पार्वती की अलख जगाए रहा। लेकिन जब वह विवाहित पार्वती रात्रि के एकान्त में सम्पूर्ण-भाव से उसके प्रति अपना आत्मार्पण-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निवेदन कर उठी, तब निविड़ अधमाचार से घिरे देवदास ने क्या किया ? क्या पार्वती को लिया। नहीं, लिया नहीं। मूर्ति की भाँति उसे अपने से दूर ही रक्खा। मूर्ति की भक्ति उसने अपने लिए चाही; मूर्ति पाने की स्पर्द्धा नहीं की।

क्यों ?

मालूम होता है शरद स्वयंउस के जवाब हैं। और नहीं तो नारी-हृदय के प्रभु शरच्चन्द्र के चिर-एकाकी रहने का भेद हो क्या सकता है ? वह है, तो प्रेम की प्रगाढ़ता ही है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय

कलापूर्ण शैली का सबसे बड़ा गुण यह है कि उसमें बुद्धि और हृदय का पूरा मेल हो। इस निबंध की, ऐसी ही 'गुणवती' शैली है। बुद्धि ने पाँच बातें कही हैं। साफ साफ निबंध के पाँच खण्ड हैं। आलोचना समझने में तनिक सा भी भ्रम नहीं होता पर इन सुलझी हुई बातों में आलोचक के हृदय ने एक प्रेम का नाता समझाया है। पाँचों खण्डों में वही एक अखण्ड बात मिलती है कि शरद ने मानव-हृदय को पहचानने का यत्न किया था और पहचान भी लिया था। मानव-हृदय की यही अनुभूति—जीवन की यही ठोस वस्तु—शरद का रहस्य है, उनकी सफलता और लोक-प्रियता का प्रधान कारण है। इसी एक बात को शरद् ने अपनी अनेक कृतियों में समझा है और उनके आलोचक जैनेन्द्र ने उसी को कई ढंग से अपने निबंध में परखने की चेष्टा की है। आलोचक की सबसे पहली चेष्टा होती है अपने हृदय को टटोलना कि उस पर क्या प्रभाव पड़ा है। आलोचना के पहले खण्ड से यह स्पष्ट है कि जैनेन्द्र के हृदय पर शरद का बड़ा प्रभाव है। वे उन्हें असाधारण समझते हैं। सामान्य मानवता की प्रतिमूर्ति। जैनेन्द्र स्वयं हिन्दी के यशस्वी कर्ता हैं, कहानीसाहित्य के मर्मज्ञ हैं, निष्पक्ष आलोचक हैं। क्योंकि न तो वे शरद् के मित्र हैं और न बंगाली होने के नाते स्वसाहित्य के भक्त। ऐसे विदग्ध सहृदय का हृदय अवश्य कसौटी माना जा सकता है।

दूसरे खण्ड में आलोचक ने शरद की कृतियाँ ली हैं। पहले उन्होंने सीधे से अपनी बात कह दी कि शरद बहुत बड़े हैं। फिर उनकी रचनाओं में उन्होंने कारण ढूँढा है। रचनाओं में साधारणीकरण की वह शक्ति है कि सभी भावुकों के मन के निकट वे प्रत्यक्ष अनुभव बन जाती हैं। पर मननशील मनुष्य

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रचनाओं के भीतर पैठकर देखता है कि उनमें आत्मदान का धन है। यही आत्मदान शरद की आत्मा है, स्रष्टा का जीवन है। इससे भी बड़ी बात यह है कि सच्चा दाता दान करता है। जान बूझकर किसी कारण से नहीं, अपने स्वभाव से लाचार होकर। यदि कभी उसी महापुरुष को दान का ज्ञान हो गया तो फिर ज्ञान की गंध आने लगती है चाहे वह 'सु' हो अथवा 'कु'। शरद में यह ज्ञान-विज्ञान तनिक भी नहीं है।

तीसरे खण्ड में आलोचक एक अवदान सुनाता है जिससे भारत के कर्त्ताओं में शरद का स्थान स्थिर हो सकता है। वे सर्वश्रेष्ठ कहानीकार हैं। इसी बीच में यह बात भी कह दी गई है कि जबतक लोगों को अनुभव कम रहता है, प्रत्यक्ष जीवन की समझ पूरी नहीं हो पाती, तबतक वे सहृदय होने पर भी यही कहा करते हैं कि अमुक लेखक को कहीं से गुरुमंत्र मिल गया है, उसी के बल पर चमत्कार करता है। देखो न, बार बार वही प्रेम और प्रणय की कहानी आती है। विस्तार और व्यापकता तो है ही नहीं। आलोचक ने इन सब बातों का बड़ा बढ़िया उत्तर दिया है। यह शरद के लिए ही नहीं, 'प्रसाद' जैसे अन्य साहित्य-कारों के लिए भी सोलह आने ठीक है।

चौथे खण्ड में शरद के घरेलू जीवन के बारे में बड़े पते की बात है। शरद चरित्रहीन थे। वे थे या नहीं पर लोकप्रवाद तो यही कहता है। प्रायः साधारण कोटि के उपदेशक और आलोचक, ऐसे कवियों को देखकर कह बैठते हैं कि इन सबका साहित्यिक जीवन ऊँचा होता है पर असली जीवन बहुत गिरा रहता है। इस क्रूर और भोली निन्दा का उत्तर हमारे निबंध-लेखक ने दो प्रकार से दिया है। यदि हम सदय और सहृदय होकर देखें तो यह भावना की बात है— कवि, अच्छा कवि, कभी पतित और हीन हो नहीं सकता। दूसरी बात बुद्धि की है। कवि यदि चरित्र का काला है, वैसा काला कोयला जैसा वह कहा जाता है, और साथ ही उसकी देन, इतनी उज्ज्वल है कि दूसरों को भी उससे उजेला मिलता है, तो अवश्य ही वह महापुरुष है, लोकोत्तर व्यक्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाँचवें खण्ड में शरद के वीर-एकाकी रहने की बात है। उनके न तो मित्र थे और न संबंधी। उनका घनिष्ठ कोई न था। ऐसे एकाकी (अकेलुआ) ने गृहस्थी को इतनी अच्छी तरह समझा कि गृहस्थ उस पर निछावर हो गए। इसका कारण था उसकी एकान्तसाधना—प्रेमसाधना।

इस निबंध की शैली में एक बड़ा आकर्षण है। वह यह कि यद्यपि पाँच भिन्न बातों की ओट में केवल एक तत्त्व की—शरद के प्रेम तत्त्व की—व्याख्या है तथापि वे पाँचों खण्ड पाँच कहानी जैसे हैं। आपबीती घटनाओं का उल्लेख आलोचना की गंभीरता को भी रोचक बना देता है। इसी कारण आलोचनात्मक निबंध के मुख्य गुणों के साथ ही इसमें साहित्यिक पुट भी है। यह प्राभाविक आलोचना का अच्छा नमूना है। पाठक अपने हृदय की बात सुनाता है कि किस प्रकार उस पर प्रभाव पड़ा पर यह काम वह इतने कौशल से करता है कि उसके श्रोता पर भी प्रभाव पड़े और वह मूल कृति को पढ़ने के लिए उत्सुक हो जाय। इस प्रकार आलोचक अपनी भावानुभूति का अनुभव दूसरे को कराता है अर्थात् वह भी साहित्य रचता है। इसी से सफल प्राभाविक आलोचना स्वयं साहित्य है।

आलोचना की ऐसी साहित्यिक शैली के बारे में कहा जा सकता है कि शैली की पूर्णता है अनेकता में एकता, स्वतन्त्रता में सरलता और स्पष्टता में वह कथन-शक्ति जो औचित्य को सँभालते हुए मानव-हृदय को झंकृत कर दे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वंशज

बात भटनागर परिवार की है। प्रातः सात बजे लेडी डाक्टर न कमरे से बाहर आकर हँसते हुए गृहिणी से कहा—"माताजी, बधाई है, बालगोपाल पधारे हैं।"

गृहिणी का चिन्ताकुल मुख एक बार ही श्वेत हो गया, मानों प्राण ही नहीं रहे देह में। कोनें में बैठी नौकरानी क्षेमा की आँखों से चुपचाप आँसू बरसने लगे। लेडी डाक्टर ने मन ही मन चकित होकर सोचा—"भगवान! यह क्या काण्ड है? बालिका होने पर परिवार को रोते देखा है; पर बालक के शुभागमन पर गंगा-जमुना बहती तो सुनी नहीं!" लेकिन इस गंगा-जमुना बहाने का जो कारण हैं, वह किसी को क्या मालूम? वर्तमान को समझने के लिये पुराने इतिहास के पन्ने उलटने पड़ेंगे।

और यह पहलें की बात है—मेरठ में कृष्णबिहारी बाबू का परिवार बहुत पुराना है। बहुत पुराने के अर्थ हैं औरंगजेब के समय का। कृष्ण-बिहारी बात करते, तो किसी न किसी प्रकार वह पहुँच जाती उनके दो सौ वर्ष पहले के पूर्वज कृष्णचन्द्र तक। उनके जीवन की कौतुकमयी, आश्चर्ययुक्त, ऐश्वर्यपूर्ण घटनाओं का वर्णन करते २ उनका स्वभाव से शान्त चेहरा एक बार ही सुर्ख़ हो जाता, नेत्र चमकने लगते। और नेत्र चमकने की बात भी है। पूरे दो सौ वर्षों से इस परिवार ने अपना मस्तक ऊँचा रक्खा है। उनके वंशज अधिक नहीं हैं। पेड़ का तना बिलकुल सीधा खड़ा है। इधर उधर से शाख नहीं निकली, लेकिन है

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो एक और सीधा। फिर कृष्णबिहारी के नेत्र वंश के वैभव को सोचकर क्यों न गर्व से चमकें। कृष्णबिहारी के लड़के हैं आनन्दबिहारी। बस, एक हैं। इस परिवार में कभी दो लड़के नहीं हुए। यह भी परिवार के ऐश्वर्य और वैभव का शुभ-सूचक है।

जिस दिन आनन्दबिहारी की बहू के चौथी कन्या का जन्म हुआ, पड़ोसिन हेमनलिनी ने दबे हुए स्वर से गृहिणी को बधाई देकर कहा—"लड़की जिये, घर के लिये शुभ हो और भाई को लावे।"

गृहिणी लक्ष्मी ने तुरन्त ही कहा—"हेमनलिनी बहन, तुम लड़के के लिए सोच न करो। हमें लड़के के लिए कभी हाथ पसारना नहीं पड़ा। हमारा वंशज अपने समय पर आ जायगा।"

पास खड़ी हुई अन्नपूर्णा, जो दूर की बुआ लगती है जल्दी से बोली—"हेमनलिनी, हमारे लिए लड़कियाँ भी लड़के के समान हैं। हँसती क्यों नहीं हो जी? क्या मन ठीक नहीं है!"

समय से लक्ष्मी की बात पूरी हुई। बालक श्यामबिहारी ने शुभ समय में जन्म लिया। दादा और दादी की प्रसन्नता का आवेग मानों थमता ही नहीं। कृष्णबिहारी बाबू का आधा समय बीतता है ज्योतिषियों के साथ। सब एक स्वर से कहते हैं, बच्चा बड़ा भाग्यवान है। बड़ी चमत्कारी कुंडली है महाराज! जो भी हो, सारे परिवार में सुख की हँसी बिखर पड़ी। गृहिणी लक्ष्मी नौकर से भी बात करती तो हँसकर। नौकर-चाकर भी मानों प्रसन्नता में रँगे हैं। क्षेमा नौकरानी तो आधी पागल हो रही है। बहूजी, भैया साहब! बस, बात यहीं रह गई, हँसी का फुहारा बरस पड़ा।

गृहिणी कहतीं—"अरी, तू क्या पागल हो जायगी? क्या घर में कोई बात निराली हुई है?"

जो कुछ भी हो; पर धूमधाम तो निराली ही है। दिन भर बाहर शंहनाई बजती है। सदाव्रत खुला है। घर में कोकिल-कंठ से पारस्परिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्त्रियाँ राग अलापती हैं। दिन भर लोगों के आने-जाने की चहल-पहल है। सारे शहर में मशहूर हो गया, भटनागर परिवार का वंशज आ गया।

इसी सुख की गंगा में नहा-नहा कर बालक चन्द्र की नाईं बढ़ने लगा। पहले दादा की गोद में लेटे-लेटे उनकी दाढ़ी के बाल नोचे, फिर कुछ दिन बाद छोटे-छोटे हाथों से हाथ पकड़ कर कहना सीखा—बा-बा-आ। कृष्णबिहारी बच्चे को गोद में लेकर गृहिणी से कहते—'देखती हो पेशानी। बच्चा बड़ा नाम वाला निकलेगा।' और प्यार से बच्चे के हाथ को अपने मुँह पर फेरते। फिर जब बच्चा और बड़ा हुआ, तब वह उनके साथ साथ खाता और उन्हीं के पास सोता। इस तरह से बालक श्यामबिहारी के पाँच वर्ष बीत गये।

एक दिन संध्या को दादा के साथ घूम कर लौटा, तब माँ की गोद में छुपकर कहा—"माँ, मैं पढूँगा।"

बाबा ने कहा—"हाँ, हाँ, भैया बड़ा हुआ, जरूर पढ़ेगा।"

गृहिणी की तरफ देखकर कहा—"सुनती हो जी, भैया का विद्यारंभ करवाना होगा। जल्दी ही, समझीं! पंडितों को कल बुलवाना।"

पर हाय रे भगवान! कल की बात को किसने जाना है? इस रंगीन आवरण के पीछे का भेद किसने पाया है?

सुबह हुई। नित्य की तरह दादा ने बच्चे के माथे पर हाथ फेरा और हाथ मानों वहीं माथे पर ठिठुर गया। यह क्या है ठण्ढा? ठण्ढा क्या है। कृष्णबिहारी चीत्कार करके गिर पड़े। पल भर ही में घर में हाहाकार मच गया। बालक सबका दिल लूट कर चला गया।

पड़ोसिनें आ-आकर सान्त्वना दे-देकर चली गईं। चलते २ हेम-नलिनी ने तारा ठकुरानी से धीरे से कहा—"दुनिया में दुनिया के लोगों की तरह चलना चाहिए, भाई! गर्व करने से देखो तो क्या होता है।" पड़ोसी रो-पीट कर चले गये, पर घर में तो मानों रात आ गई। एक ही बार। और इस रात में नक्षत्र भी तो नहीं है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस तरह बीत गये १८ वर्ष। और अब १८ वर्ष के बाद आज सुबह सुबह यह लेडी डाक्टर खड़ी खड़ी कह रही है कि 'बहूजी' बालगोपाल पधारे हैं।' तो यह गृहिणी क्या कहे, क्या करे ?

अन्दर कमरे में ४५ वर्ष की बहू बच्चे को गोद में लेकर घुमा-फिरा कर देखती है, यह स्वप्न है या सत्य ? बाहर कमरे में कृष्णबिहारी और आनन्दबिहारी बैठे हैं, कह रहे हैं, बालगोपाल आये हैं ! कौन से बालगोपाल ?

लेकिन घर में सन्नाटा है पूरा। अरे किधर हैं २३ वर्ष पहले की शहनाई और राग के सुर ? न आँसू है न हँसी ! केवल क्षेमा चुपचाप बैठे आँसू बहाये जा रही है !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वंशज

'वंशज' सुभद्रा काटजू की सफल कहानी है। देखने में छोटी पर प्रभाव में बड़ी मार्मिक है। करुण रस की कहानी है पर आँसू भीतर ही रह जाते हैं, सिर्फ मीठा सा दर्द मालूम पड़ता है। यही दर्द कथा का प्राण है।

कथावस्तु है बड़ी छोटी पर उसमें तेईस वर्ष की पूरी कहानी है। साकांक्षता आदि से अन्त तक बनी रहती है।

पूर्णता और साकांक्षता के साथ ही कहानी में घटना का वह आकर्षण भी है जिसके कारण साधारण पाठक भी उसे पढ़ता है। उसमें घरेलू कहानी की रमणीयता पूरी मात्रा में है। इसका सबसे बड़ा गुण है इसके संग्रह और सत्य की पहचान। न कोई बात छूटी है और न कोई कही गई है। केवल एक वाक्य ऐसा है जो कथा-वस्तु के नाटकीयत्व और साकांक्षत्व को शिथिल-सा कर देता है। 'पर हाय रे भगवान्।' वाक्य यदि न आता तो कथा का बन्ध और मी दृढ़ रहता।

भाषा और शैली के भी सभी गुण इस कहानी में हैं। सीधी, सरल हिन्दी रसास्वादन में सहायक हुई है। लपेट और कृत्रिमता का नाम भी नहीं है। जिस प्रकार कथावस्तु किसी परिवार की एक 'बात' है उसी प्रकार भाषा भी किसी गृहिणी की बातचीत है। यद्यपि शैली में नाटकीयता है तथापि वह इतनी स्वाभाविक है कि उसका अलंकार उसी में छिपा है। शैली का दूसरा बड़ा गुण है उपक्रम और उप-संहार की एकात्मा। आरंभ और अन्त दोनों ही बालगोपल और आँसू के साथ संवद्ध हैं।

कहानी का ढलन वर्णनप्रधान है। उसमें कथोपकथन की अधिक गुंजाइश नहीं। परन्तु जो वाक्य संवाद में आए हैं वे वक्ताओं के चित्र और चरित्र दोनों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को स्पष्ट अंकित कर देते हैं। इसी प्रकार यद्यपि यह कहानी चरित्रप्रधान नहीं है, रसप्रधान है, तथापि कृष्णबिहारी, गृहिणी, बुआ अन्नपूर्णा, पड़ोसिन, हेमनलिनी आदि के चरित्र पूरे व्यक्त हो गए हैं। पढ़ने में ऐसा लगता है कि हमें भी ऐसे जीव देखने को मिले हैं।

अन्त में यदि कहानी का कोई प्रयोजन पूछा जाय तो यही कहना पड़ेगा 'भली बात सुनाने का भी कोई प्रयोजन हो सकता है?' रोज ही पड़ोसिनें आपस में ऐसी बातें कहा सुना करती हैं। कलाकार ने उन्हीं में से एक को लिख दिया है। यह निष्प्रयोजनता कला की सफलता है।

इस प्रकार कहानी में एक मार्मिक भाव का पूरा चित्रण हुआ है। लोगों की हँसी और आँसू चित्रित करके अनुभव कराया गया है उस हृदय का जिसमें न आँसू हैं न हँसी।

पूरी कहानी पढ़ सकने पर आलोचक संतोष के साथ कहता है कि 'वंशज' नाम सोलहो आने ठीक है। करुण रस को पुष्ट करनेवाली बात वंशज का सहज प्रेम ही है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पत्र-लेखन-कला

सन् १८८७—

२१ वर्ष का एक फ़रांसीसी युवक पेरिस की एक मामूली गली में अपने छोटे-से कमरे में बैठा हुआ है। वह कला और गानविद्या का प्रेमी है। अभी हाल ही में टाल्सटाय की पुस्तक "हमारा कर्तव्य क्या है?" (What is to be done) छपी है। इस पुस्तक में टाल्सटाय ने कला सम्बन्धी प्रचलित विचारों पर काफ़ी ज़ोरदार आक्षेप किये हैं। इस पुस्तक को पढ़कर उस युवक की मानसिक स्थिति डावाँ-डोल हो गई, क्योंकि अब तक वह टाल्सटाय को अपना आदर्श मानता रहा है। उसने मन में सोचा कि चलो, टाल्सटाय को एक चिट्ठी ही लिख दूँ। वह महान लेखक मेरे जैसे मामूली युवक के पत्र का उत्तर तो भला क्यों देने लगा। उसने टाल्सटाय को एक पत्र भेज दिया, जिसमें उसने अपनी शंकाएँ लिखी थीं। और कुछ दिनों तक उत्तर की प्रतीक्षा भी की, फिर इस बात को भूल ही गया। कुछ सप्ताह इसी तरह बीत गये। एक दिन शाम के वक्त वह अपने कमरे पर लौटा, तो क्या देखता है कि फरांसीसी भाषा में एक लम्बी चिट्ठी कहीं से आई है! उसको खोलने पर मालूम हुआ कि यह तो टाल्सटाय का पत्र है! यह पत्र ३८ पृष्ठ का था, या यों कहिये कि एक छोटा सा ट्रेक्ट ही था। उस अपरिचित साधारण युवक को टाल्सटाय ने 'प्रियबन्धु' लिखा था। पत्र के प्रारम्भिक शब्द थे—"तुम्हारी पहिली चिट्ठी मुझे मिली। उससे मेरा हृदय दुःखित हो गया। पढ़ते-पढ़ते आँखों में आँसू आ गये।" इसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाद टाल्सटाय ने अपने कला-सम्बन्धी विचार उस पत्र में प्रकट किये थे—"दुनियाँ में वही चीज़ कीमती है, जो मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध को दृढ़ करे, जो उनमें भ्रातृभाव स्थापित करे, और सच्चा कलाकार वही है, जो अपने सिद्धान्तों तथा विश्वासों के लिये त्याग और बलिदान करने के लिये तैयार हो। सच्चे पेशे की पहिली शर्त कला का प्रेम नहीं, बल्कि मानव-जाति से प्रेम है। जिनके हृदय में मनुष्य-जाति के प्रति प्रेम है, वे ही कभी कलाकार की हैसियत से उपयोगी कार्य करने की आशा कर सकते हैं।" टाल्सटाय के विस्तृत पत्र का सारांश यही था।

इस पत्र ने उस युवक के हृदय पर बड़ा भारी प्रभाव डाला। सबसे महत्वपूर्ण बात उसे यह जँची कि इस विश्व-विख्यात महापुरुष ने मेरे जैसे एक अपरिचित युवक को इतनी लम्बी और सहृदयतापूर्ण चिट्ठी भेजी है। और तब से उस युवक ने यह निश्चित कर लिया कि यदि कोई आदमी अपने संकट के समय में अन्तरात्मा से कोई पत्र भेजेगा, तो मैं अवश्य ही उसका उत्तर दूँगा, क्योंकि संकटग्रस्त मनुष्य की सेवा ही कलाकार का सर्वोत्तम गुण है।

इस घटना को आज ४९ वर्ष होने को आये। इन ४९ वर्षों में उस युवक ने, जो आज रोमाँ रोलाँ के नाम से संसार प्रसिद्ध हो चुका है, हजारों ही चिट्ठियाँ लिखी हैं और सहस्रों ही व्यक्तियों के लिये पथ-प्रदर्शक का काम किया है। टाल्सटाय की उस एक चिट्ठी ने जो बीज बोया था, वह आज वटवृक्ष के रूप में लहलहा रहा है। रोमाँ रोलाँ के लिखे हुए हजारों ही पत्र जो साहित्यिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। संसार के भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के पास सुरक्षित हैं। जिस दिन टाल्सटाय ने उस पत्र के लिखने में अपने समय के कुछ घण्टे व्यय किये थे, उन्होंने स्वप्न में भी यह ख्याल न किया होगा कि आगे चलकर मेरा यह पत्र इतना सफल होगा।

इस घटना से पत्र-लेखन-कला का महत्व प्रकट होता है। क्या ही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अच्छा हो, यदि हम लोग—ख़ास तौर से हिन्दी-लेखक और सम्पादक—इस बात को हृदयङ्गम कर लें। पत्र-लेखन-कला पर अधिक लिखने के पहले एक बात स्पष्ट कर देने की आवश्यकता है, वह यह है कि जो आदमी बज़ात खुद अच्छा नहीं है, वह अच्छा पत्र-लेखक हर्गिज़ नहीं बन सकता। कृत्रिम ढंग से लिखे हुए पत्रों की पोल बड़ी आसानी से खुल जाती है। जिस तरह कोई कुशल व्यापारी रुपये को हाथ में लेते ही खरे और खोटे सिक्के की पहचान कर लेता है। उसी तरह किसी सुसंस्कृत आदमी के लिये स्वाभाविक और बनावटी पत्रों में भेद करना कोई मुश्किल बात नहीं है। इसके सिवा बने हुए पत्र काग़ज़ी नाव की तरह हैं, जो चल नहीं सकते। काठ की हाँ ी की तरह केवल एक बार आप उनसे काम ले सकते हैं। अच्छा पत्र-लेखक बनना अत्यन्त कठिन है। अन्य क्षेत्रों में तो आपको थोड़े से आदमियों का मुकाबिला करना पड़ता हैं; पर यह क्षेत्र तो ऐसा है, जिसमें दुनियाँ आपकी प्रतिद्वन्द्विता के लिये खड़ी है, क्योंकि चिट्ठियाँ तो लाखों-करोड़ों ही आदमी नित्यप्रति लिखा करते हैं।

खेद की बात है कि हिन्दी साहित्यसेवियों ने इस कला के महत्व को अभी तक नहीं समझा। हिन्दी में अभी तक एक भी ऐसी पुस्तक नहीं निकली, जिसमें इस कला पर विस्तारपूर्वक लिखा गया हो, और जिन महानुभावों ने पुस्तकें लिखी हैं, वे खुद इस विषय के विशेषज्ञ नहीं हैं। इन पंक्तियों के लेखक को चिट्ठी लिखने का एक व्यसन-सा रहा है, और पिछले पच्चीस वर्ष में उसने हजारों ही चिट्ठियाँ लिखी होंगी और सैकड़ों ही चिट्ठियों का संग्रह उसके पास है। अतएव वह अपने इस विषय के अनुभवों को 'विशाल भारत' के पाठकों के सम्मुख उपस्थित करता है।

हिन्दी-क्षेत्र के जितने लेखकों कवियों तथा सम्पादकों से पत्र-व्यवहार करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है, उनमें पूज्य पं० महावीरप्रसाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

द्विवेदी, स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा, स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी और स्वर्गीय पं० श्रीधर पाठक मुख्य हैं। नवीन लेखकों के नाम हम यहाँ जान-बूझकर छोड़ रहे हैं। उनका ज़िक्र हम द्वितीय लेख में करेंगे।

यदि पत्र-लेखन-कला के सब गुणों को मिला कर देखा जाय, तो निस्संदेह स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा इस कला के आचार्य सिद्ध होंगे। उनका मुक़ाबला करनेवाला पत्र-लेखक हिन्दी-क्षेत्र में अब तक कोई नहीं हुआ और न निकट भविष्य में इसकी आशा ही की जा सकती है। पत्र-लेखन के लिए जिस फ़ुर्सत की आवश्यकता होती है, वह स्वर्गीय शर्मा जी के पास खूब थी, और साथ ही भाषा पर भी उनका पूर्ण अधिकार था। इनमें सबसे बड़ी बात यह थी कि वे अत्यन्त सहृदय और ज़िन्दादिल आदमी थे। इसलिए वे कलम के रास्ते काग़ज़ पर कलेजे को उड़ेल कर रख सकते थे। उनकी सम्भाषण-शक्ति और स्मरण-शक्ति भी अद्भुत थी। ग़रज यह कि अच्छे पत्र-लेखक में जो गुण होने चाहिये, वे उनमें आश्चर्यजनक मात्रा में विद्यमान थे। स्वर्गीय शर्मा जी की लगभग छै सौ चिट्ठियाँ हमारे पास सुरक्षित हैं और यदि किसी के पत्रों का संग्रह पुस्तकाकार छपाने योग्य है तो वे शर्मा जी के ही हैं।

हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र के बाहर के आदमियों में जिनके पत्रों का छोटा-मोटा संग्रह हमारे पास है, उनमें दीनबन्धु सी० एफ० ऐण्ड्रूज़ और माननीय श्रीनिवास शास्त्री मुख्य हैं। महात्मा गान्धी के भी अनेक पत्र हैं, और दो तीन चिट्ठियाँ कवीन्द्र की भी हैं। पत्र लेखकों में मि० ऐण्ड्रूज़ के मुकाबले के आदमी बहुत कम निकलेंगे। स्वयं कवीन्द्र रवीन्द्र ने 'मोरिया' नामक जहाज़ से अपने १५ जुलाई सन् १९२१ के पत्र में मि० ऐण्ड्रूज़ को लिखा था।

"Abut one thing I can never hope to compete with you. As a letter-writer you are incomparable."

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अर्थात्—"एक बात में मैं आपका मुकाबला करने की आशा भी हर्गिज़ नहीं कर सकता। पत्र-लेखक की हैसियत से आप अद्वितीय हैं।" इसके बाद गुरुदेव ने लिखा था—"आपके पत्र एक के बाद एक इस प्रकार आते हैं, जैसे प्यासी ज़मीन पर वर्षा का जल, और आपके लिए पत्र लिखना उतना ही स्वाभाविक है, जितना शान्ति-निकेतन के शाल-वृक्षों के लिए वसन्त ऋतु में नवीन पत्रों का धारण करना।"

मि० ऐण्ड्रूज़ की जो प्रशंसा कविवर ने की है, उसमें अत्युक्ति नहीं; पर स्वयं कविवर पत्र-लेखकों में शिरोमणि हैं। जो महानुभाव उनके अँगरेज़ी पत्रों को पढ़ना चाहें, वे George Allen के यहाँ छपी हुई उनकी Letters to a Friend (एक मित्र को पत्र) नामक पुस्तक पढ़ सकते हैं। इस संग्रह में अनेक पत्र लाजवाब हैं, और उनका सौंदर्य तो पढ़ने पर ही प्रकट होता है। कवीन्द्र के बँगला पत्र तो उनसे भी अच्छे हैं।

महात्माजी के पत्रों में मतलब की बात रहती है, और ज्यों ज्यों उनका कार्यक्षेत्र बढ़ता जाता है, उनके पत्र छोटे होते जाते हैं। दरअसल महात्माजी ऐसे कार्य्यव्यग्र महापुरुष से लम्बे पत्रों की आशा करना ही व्यर्थ है। उनके बाज़-बाज़ पत्र तो मन्त्र की तरह होते हैं। अपनी जिन्दगी भर के अनुभवों का निचोड़ महात्माजी जिस खूबी के साथ एक दो वाक्यों में रख देते हैं, उसे देखकर आश्चर्य होता है। अभी साल-दो-साल पहले तक महात्माजी प्रायः सभी आवश्यक पत्रों का उत्तर अपने हाथ ही से लिखते थे। दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ के नाम उन्होंने जो पत्र लिखे थे, वे ख़ास तौर से महत्वपूर्ण हैं।

कोई-कोई चिट्ठी तो रात दो बजे उठकर लिखी थी; पर जब तक महात्माजी एक पत्र का उत्तर दे पाते, तब तक मि० ऐण्ड्रूज़ दो चिट्ठियाँ और भेज देते! आख़िर कवीन्द्र की तरह महात्माजी भी उनसे हार मान बैठे। महात्माजी ने एक बार मुस्करा कर कहा था—"ऐण्ड्रूज़ ही एक ऐसा आदमी है जो तार में भी प्रेम भेजा करता है!"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिल्ली में जब महात्माजी ने २१ दिन का उपवास किया था, उस समय मि० ऐण्ड्रूज़ उनके चौकीदार होकर रहे थे। जब उपवास सकुशल समाप्त हो गया, तो मि० ऐण्ड्रूज़ साबरमती आश्रम में चले आये। उस वक्त महात्माजी ने उन्हें दिल्ली से लिखा था—

"I have been mission you every moment ! Oh ! for your love." अर्थात्—मुझे आज तुम्हारी क्षण क्षण पर याद आती रही। तुम्हारा प्रेम भी क्या अद्भुत चीज़ है ! मि० ऐण्ड्रूज को वे My dearest Charlie (मेरे अत्यन्त प्रिय चार्ली) लिखते हैं। यदि महात्माजी अनुमति दे दें तो ये पत्र अनुवाद-सहित छपाये जा सकते हैं।

माननीय श्रीनिवास शास्त्रीजी के पत्र उनकी सुसंस्कृति के प्रबल प्रमाण हैं। उनका एक छोटा-सा पत्र भी पत्र-लेखन-कला का नमूना होता है। उनके हस्ताक्षरों को देखते ही हृदय में उत्कण्ठा हो जाती है कि पत्र खोलकर जल्दी से जल्दी पढ़ा जाय। पढ़ते ही तबियत खुश हो जाती है। संयत भाषा, चुने हुए शब्द, अद्भुत गुणग्राहकता, स्वाभाविक विनम्रता और सहज स्नेह का ऐसा विचित्र सम्मेलन भला और कहाँ मिल सकता है ! माननीय शास्त्रीजी यद्यपि हिन्दी नहीं जानते, पर कविवर रहीम के निम्नलिखित दोहे को उन्होंने अवश्य हृदयङ्गम कर लिया है—

"जो गरीब सों हित करैं, धनि रहीम वे लोग ;
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई जोग।'

"Don't worry dear friend & brother. Up and down, up and down, is the course of any people."—प्रिय मित्र और भाई, फ़िक्र न करो। प्रत्येक जाति के जीवन में उन्नति और अवनति के क्रम आया ही करते हैं। * किसी भी निराश व्यक्ति

* वह अंश शास्त्रीजी के उस पत्र का है, जो उन्होंने केनिया के अन्यायपूर्ण निर्णय के दिनों में लिखा था। —लेखक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को उत्साहित करने के लिये माननीय शास्त्रीजी के पत्र टॉनिक का काम कर सकते हैं। इन पंक्तियों के लेखक की तरह के लाखों ही आदमी शास्त्रीजी को चाहे जब मिल सकते हैं; पर शास्त्रीजी की उदारता भी अद्भुत है।

ग़लतफ़हमी होने की आशङ्का के कारण हम उनके पत्रों के प्रेमपूर्ण अंश उद्धृत नहीं कर रहे हैं। जिन महानुभावों का जीवन इतना कटु बन गया है कि वे सदुद्देश्य से कही हुई प्रत्येक बात के पीछे कोई-न-कोई Motive (भीतरी उद्देश्य) तलाश करते हैं, वे तो हर हालत में अर्थ का अनर्थ करते ही हैं; पर हमारे कितने ही सुसंस्कृत पाठक भी इस मर्ज़ में मुबतला हैं।

शास्त्रीजी के पत्रों की मधुर स्मृति बहुत दिनों तक बनी रहती है, पर इससे विपरीत कोटि के पत्र भी कभी-कभी हमें मिलते रहते हैं, और उनसे किसी भी सहृदय मनुष्य के हृदयाकाश में घटा छा सकती है। प्रशंसा से जो उत्फुल्ल न हों और निन्दा से जो विचलित न हों ऐसे मनुष्य सन्त-समाज में ही पाये जाते हैं।

यदि आपको कोई लिखे—"तुम धूर्त हो, मूर्ख हो, पाखण्डी हो, भाँड़ हो, अहंकारी हो, आडम्बरी हो, पतित हो, बेपेंदी के लोटे हो, तुम्हारा कोई सिद्धांत नहीं, कोई Sincerity नहीं", तो इस विष का पान करने के लिए आपको भगवान शिवशंकर की योग्यता हासिल करनी होगी। हमारे साहित्य-क्षेत्र का यह दुर्भाग्य है कि ऐसे पत्र-लेखक हमारे यहाँ विद्यमान हैं, और वे अपने तथा दूसरों के जीवन में कटुता का प्रवेश प्रायः किया करते हैं। इस प्रकार के अनेक पत्र पाकर हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जिन्हें कब्ज़ रहता है—शारीरिक या मानसिक—अथवा जिन्हें मन्दाग्नि अथवा 'अकल अजीरन रोग' है, वे ही ऐसी चिट्ठियाँ लिख सकते हैं। जिसका पेट साफ नहीं रहता, उसके लिए पेट का साफ होना मुश्किल है। पत्रों में तो नहीं, हाँ, बात-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चीत में ऐसी अक्षम्य भूलें भी हमसे कई बार हो चुकी हैं, और उनका प्रायश्चित कर लेने पर भी हमें आज भी उनके लिए लज्जा अनुभव होती है। पत्रों का पेट से कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, इस बात को हम अच्छी तरह समझ गये हैं। एमर्सन ने एक जगह लिखा है:—A man should make life and nature happier to us, or he had better never been born.—मनुष्य का कर्तव्य है कि वह हमारे लिए जीवन तथा प्रकृति को मधुर कर दे, यदि वह ऐसा नहीं कर सकता तो बेहतर है कि वह पैदा ही न होता।

स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्मा ऐसे व्यक्ति थे, जिनके प्रत्येक पत्र को बड़ी उत्कण्ठा से खोला जाता था, जो अपने दाद देने के अद्‌भुत गुण के कारण चिरकाल तक साहित्य में जीवित रहेंगे। जीवित साहित्य-सेवियों में से पूज्य द्विवेदी जी भी उसी कोटि के हैं। इस लेख को हम स्वर्गीय शर्मा जी के एक पत्र के साथ समाप्त करते हैं। इस लेखमाला के अगले लेखों में हम पत्र-लेखन-कला के अन्य उदाहरण देंगे:—

प्रिय चतुर्वेदी जी नमस्कार।

आज जब आपको रजिस्टर्ड पैकिट रवाना कर चुका; तो ४ बजे के करीब 'विशाल भारत' ने दर्शन दिये, यानी प्रेस की डाक में पधारे। कल इंडियन प्रेस में ठा० श्रीनाथ सिंह जी के पास थोड़ी देर यों ही उलट पलट कर देखा था। ऐनक यहाँ भूल गया था, इसलिए कठिनता से हेडिंग देख सका था। मैं रात को इतमीनान से देखना चाहता था कि यहाँ अचानक एक उपद्रव खड़ा हो गया, यानी गाने बजाने की कन्सर्ट पार्टी आ डटी। एक सज्जन सितार के एक्सपर्ट, दूसरे बेला के प्रवीण बाजीगर, तीसरे तबले के मास्टर, चौथे ताल और दाद देने में पटु और मजा यह कि सब-के-सब ग्रेजुएट और एल. एल. बी। इनमें पहिले हिन्दुस्तानी और बाकी बंगाली ; सब-के-सब ब्राह्मण—एक द्विवेदी, बाकी मुकरजी। मैं 'विशाल भारत' पढ़ना चाहता था, उधर संगीत शुरू

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो गया। मुझे पढ़ने का व्यसन तो है ही ; पर सुनने के लोभ को संवरण नहीं कर सकता। पार्टी में सम्मिलित न होना शिष्टाचार के विरुद्ध समझा। मण्डली के पास बैठ कर सुनना ही पड़ा ; पर हाथ में 'विशाल भारत' लेकर बैठा, एक साहब बोले, इसे रख भी दो, सुनोगे कि पढ़ोगे ? मैंने कहा कि दोनों काम साथ-साथ करूँगा। साहित्य और संगीत के आकर्षण की तुलनात्मक परीक्षा हो जायगी, देखूँगा किसमें अधिक आकर्षण है ? मुझे जब कभी ऐसा मौका मिल जाता है कि कोई अच्छी पुस्तक—वह भी काव्य पढ़ता हूँ और पास ही संगीत हो रहा हो, तो एक अद्भुत आनन्द आता है, काव्य में—जिसे उस समय देख रहा हूँ—नई-नई बातें सूझने लगती हैं। हाँ, हारमोनियम से मुझे क़ुदरती नफ़रत है। अच्छे-अच्छे बजानेवालों को सुना है ; पर मुझे कभी अच्छा नहीं लगा—ख़ासकर सितार, सारंगी या बेला के साथ तो बहुत ही बुरा लगता है। ख़ैर, पहले सितार का गत बजा उधर मैंने आपका सम्पादकीय पढ़ना शुरू किया। बड़े मजे में पढ़ता रहा और आपके ज़ोरे-क़लम की दाद देता रहा। 'सारनाथ में क्या देखा' खूब लिखा है। मार्के की टिप्पणी है। श्री शंकराचार्य पर आक्रमणवाली बात मुझे भी बहुत ही बेतुकी और मूर्खतापूर्ण मालूम हुई। मैं आपके साथ मिस्टर धर्मपाल से मिलने गया होता, तो उन्हें इतना फटकारता कि याद रखते। मैंने पत्रों में जब उनके भाषण की रिपोर्ट पढ़ी थी, तो बहुत बुरी मालूम हुई थी। शंकराचार्य का मुकाबला तो संसार भर के दार्शनिक भी मिलकर नहीं कर सकते। मिस्टर धर्मपाल तो उनकी बातें समझेंगे भी नहीं। ख़ैर, सितार के बाद बेला की बारी आई। बेला सितार से भी अच्छा बजा, बड़ा तैयार हाथ था, उस समय मैं नन्द-दासजीवाला लेख देख रहा था। कान उधर लगे थे और आँखें लेख में मन द्रुतगति से दोनों ओर काम कर रहा था। कई बार दो-चार मिनट के लिए आँखों को भी कान का साथ देना पड़ा। गत इससफाई से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फिर रहा था, हाथ इस तेज़ी से चल रहा था कि न देखना अन्याय था। वेला के साथ मैंने नन्ददासजी को समाप्त कर डाला। नन्ददासजी की कविता मुझे भी बहुत पसन्द है। आपने खूब लिखा है। तबीयत खुश हो गई। 'भारतमित्र प्रेस' की छपी 'रासपंचाध्यायी' की एक प्रति मेरे पास है, जो स्वर्गीय श्री सत्यनारायणजी ने मुझे दी थी। उसपर उनके पेन्सिल से लिखे नोट भी हैं। इसलिए मैंने उसे बड़े प्यार से रख छोड़ा है। सत्यनारायणजी ने उस प्रति से सब 'रासपंचाध्यायी' बड़े ही मधुर स्वर में पढ़कर सुनाई थी। उस पुस्तक को जब देखता हूँ, तो वह दृश्य आँखों में फिर जाता है, हा !

वेला की जब द्वितीयावृत्ति हुई, तब मैं उजड़ी वाटिका देख रहा था, यह कविता मुझे बहुत पसन्द आई। यह 'चकोरी' देवी कौन हैं ? अच्छा लिखती हैं। मैंने पहली बार ही इनकी रचना पढ़ी है। तीसरे छन्द की अन्तिम पंक्ति पढ़ते धचका-सा लगता है। उसमें छन्दो-भंग या ध्वनिभंग है। मात्राएँ तो गिनी नहीं; पर धचका ज़रूर लगता है। ज़रा पढ़ देखिये।

हाँ, रत्नाकर जी के उस कविता का योग्य अन्तिम चरण क्या है ? ज़रा हम भी तो सुनें !

श्री चिन्तामणि जी के सुपुत्र श्री बालकृष्णराव जो अपनी पुस्तक मुझे दे गये हैं। जिस वक्त दोपहर को वह यहाँ पुस्तक देने आये, उस दिन मेरी तबीयत अच्छी न थी। लेट रहा था। वह कुछ देर बैठ कर और रघुनन्दन जी को पुस्तक देकर चले गये। मुझे किसी ने सूचना न दी। फ़िर पं० केशवदेव जी शर्मा के मार्फ़त उनकी इच्छा मालूम हुई कि मैं उसपर सम्मति लिख दूँ। मेरा विचार उसपर एक नोट विशाल भारत में भेजने का है। बहुत अच्छी कविता है। बालकृष्ण राव प्रोत्साहन के पात्र हैं। अस्तु कन्सर्ट पार्टी की एक बात लिखना भूल गया। सितार और वेला के बाद 'हारमोनियम' का नम्बर आया, तो मैंने यह कहा कि अंगूर खिला कर यह निबौलियाँ क्यों खिलाते हो ?—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'जीभ निबौरी क्यो लगै बौरी ! चखि अँगूर ?

सितारा आदि बाजों के लिए यह 'हारमोनियम' भी वैसी ही बला है; जैसी तुलसीदास की रामायण के लिए 'राधेश्याम रामायण' ! भारतीय संगीत-कला को इस 'हारमोनियम' ने बड़ी हानि पहुँचाई है।

आज के पैकट में ठा० गुरुभक्तसिंह जी की दो पुस्तकें मैंने भेजी हैं। उन्हें ज़रा देख जाइये। शायद कोई कविता आपको पसन्द आ जाय। उनकी कविता और चित्र दे दीजिये, सम्मति भी छाप दीजिये।

अब बस करता हूँ, १२ बजने को हैं।

मैं परसों प्रातःकाल की गाड़ी से आगरे जा रहा हूँ। पटे जी से मिलूँगा। उनकी कविता इस अंक में तो नहीं आई, अगले में ज़रूर जाय।

हिन्दी प्रेस, प्रयाग १५-१२-३१ पद्मसिंह शर्मा

पुनश्च—१८-१२-३१ के 'भारत' में तीसरे पेज पर एक लम्बा लेख 'हिन्दी के विकास में बाधा' न पढ़ा हो तो पढ़ लीजिये। आपको 'सम्पादन-कौशल' का सार्टीफिकेट 'भारत' सरकार से मिला है, बधाई है ! बधाई !!!

× × ×

'श्यामसगाई' सचमुच सुन्दर कविता है। मैंने पत्र लिखने के बाद फिर पढ़ी। २७ पद्य की दूसरी पंक्ति ठीक नहीं मालूम होती—'जोरी' से पहले 'ये' का 'यह' हो और 'विधाता' की जगह 'विधना' तो शायद ठीक हो जाय।

वर्माजी ने मुसोलिनी को समाप्त कर डाला ? बड़ी बहादुरी का काम किया। श्री सम्पूर्णानन्द जी के विषय में लिखते हुए उपसंहार में जो-कुछ लिखा है, उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। साहित्य-सेवी का सैनिक बनना उचित नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पत्र-लेखन-कला

शुद्ध साहित्य और ज्ञानसाहित्य के बीच की चीज़ है प्रयुक्त साहित्य। उसमें सौन्दर्य और सत्य दोनों का मिश्रण रहता है। इसकी कला को परखने वाले इसे सच्चे साहित्य की सीमा के भीतर ही रखते हैं। अतिमधुरप्रिय या अरोचकी आलोचक ऐसी खिचड़ी को 'बेस्वाद' या रोगी का पथ्य कहकर कोस सकते हैं पर अनुभव कहता है कि उसमें भी रस है, स्वाद है। प्रस्तुत निबन्ध ऐसा ही है। शीर्षक से झलकता है कि यह 'पत्र-लेखन-कला' का विवेचन है। पर पढ़ने पर भाषा की सुधराई और शैली की साहित्यिकता हमें अपना लेती है। सीधा शिक्षक सीधे सीधे कहता कि 'पत्र का उत्तर अवश्य देना चाहिए, पत्र बनावटी नहीं लिखना चाहिए, पत्र में लेखक के चरित्र की छाया रहती है' इत्यादि। पर यह कोरी सीख होती, पाठशाला की नीरस शिक्षा होती। वही बात जब कान्तासम्मित चतुरता से अथवा सुहृत्सम्मित सहृदयता से कही जाती है तो सीधे हृदय तक पहुँच जाती है, मन में बैठ जाती है। निबन्ध-लेखक ने ऐसी ही शैली को अपनाया है। इसीसे उसके उपदेश से लाभ उठाने के साथ ही हमारा मन उसमें रमता भी है। यही साहित्यिक शैली की शक्ति है। व्यंग्य और विनोद का पुट भी इसमें उचित मात्रा में है। सहज ही में साहित्यानंद के साथ शिक्षक विद्यार्थी और लेखक इस सौम्य और मनोहर शैली से लाभ उठा सकते हैं। यदि पाठशाला और स्कूल के निबन्धों में ऐसी शैली बर्ती जाय तो शुष्क निबन्ध की नीरसता अवश्य मिट जाय। इस निबन्ध का आरम्भ जैसा नाटकीय और कूतूहलजनक है उसी प्रकार उपसंहार साहित्यिक और मनोरम है। बीच में छोटे बड़े पत्र-लेखकों की ऐसी सजीव चर्चा हुई है कि जानकारी के साथ साथ मनोरंजन भी होता है। ये ही तीन गुण विषय-प्रधान निबन्ध की शोभा बढ़ा सकते हैं। इस प्रकार यह निबन्ध अप्रत्यक्ष रूप से निबन्ध-लेखन-कला सिखाता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयशंकरप्रसाद १९४६-१९९५

छायावाद के उत्कृष्ट कवि प्रसाद का जन्म संवत् १९४६ में काशी के प्रसिद्ध घराने में हुआ। बारह वर्ष की अवस्था में ही आपसे पिता की छत्रच्छाया छिन गई; और आपने विश्वविद्यालय में यथाविधि शिक्षा न पाकर घर पर ही संस्कृत, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी का अच्छा अभ्यास किया। बचपन से ही आप भावप्रवण थे। आपकी रचना में काननकुसुम, प्रेमपथिक, महाराणा का महत्व, सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य, छाया, उर्वशी, राज्यश्री, करुणालय, प्रायश्चित्त, अजातशत्रु, जनमेजय का नागयज्ञ, स्कन्दगुप्त, तितली, इन्द्रजाल, आकाशदीप और लहर प्रसिद्ध हैं। आपका कामायनी नामक काव्य महत्वपूर्ण है।

पुस्तकों की सूची से ही आपके व्यापक पांडित्य और निसर्गसिद्ध कवित्व का मान हो जाता है। आमूलचूल प्रेम में पगे रहने पर भी आप अपनी निभृत वेदना को अश्लील नहीं होने देते और सदा लौकिक सौंदर्य के चित्र पट से अलौकिक सौंदर्य की लीला देखते हैं। वृत्ति आपकी सदा उस अव्यक्त की ओर रहती है, जो नाम-रूपों के द्वारा इस संसार में व्यक्त होता है और मूर्त न होने पर भी उषा आदि के नानावर्ण मुकुर में प्रतिबिंबित हुआ भासमान होता है—

प्राची के अरुण मुकुर में,
सुन्दर प्रतिबिंब तुम्हारा।
उस अलस उषा में देखूँ,
अपनी आँखों का तारा॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अव्यक्त की लीला का साक्षात्कार होते ही—

मिल गए प्रियतम हमारे मिल गए,
यह अलस जीवन सफल अब हो गया।
कौन कहता है जगत है दुःखमय,
यह सरस संसार सुख का सिंधु है॥

प्रसाद का नीरस संसार सरस बन जाता है किंतु थोड़ी देर बाद ही "लाल की लाली" छलिया के रूप में आपके सामने आती है और नयनों में बसी हुई भी उसकी रूप-रेखा, चाहने पर भी, आपके हाथ नहीं लगती—

भरा नैनों में मन में रूप,
किसी छलिया का अमल अनूप।
जल, थल, मारुत, व्योम में जो छाया है सब ओर,
खोज खोज कर खो गई मैं पागल प्रेम-विभोर॥

कभी कभी सौंदर्य का यह तत्त्व आपके सामने प्रचंड रूप धारण कर के आता है; तब आपकी मधुर वेदना विधुर चिन्ता में परिणत हो जाती है—

ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली।
ज्वालामुखी-स्फोट के भीषण,
प्रथम कम्प सी मतवाली॥
हे अभाव की चपल बालिके,
री ललाट की खल लेखा।
हरी-भरी सी दौड़-धूप, ओ
जल माया की चल रेखा॥

❀ ❀ ❀

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक मौन वेदना विजन की, झिल्ली की झनकार नहीं,
जगती की यह स्पष्ट उपेक्षा, एक कसक, साकार नहीं।

संसार का प्रत्येक अणु इसी चिन्ता के पट को बुनने में लगा हुआ है; जीवन का प्रत्येक इङ्गित इसी सुरधनु के चित्रण में संलग्न है—

इस आकाशपटी पर जितने चित्र बिगड़ते बनते हैं;
उनमें कितने रंग भरे, जो सुरधनु पट से छनते हैं।
किंतु सकल अणु पल में घुलकर व्यापक नील सून्यता सा;
जगती का आवरण वेदना का धूमिल पट बुनते हैं॥

किन्तु कल्याण मार्ग पर चलनेवाले पथिकों को भी 'तियछबि छाया-ग्राहिनी' अछूता नहीं छोड़ती। वे भी समय समय पर उसके वश में आ जाते हैं, वे भी कभी कभी काली आँखों की मार से चलनी हो जाते हैं—

काली आँखों में कितनी यौवन के मद की लाली,
मानिक मदिरा से भर दी किसने नीलम की प्याली।

किसी रूपराशि शालीन से आपकी नीचे लिखी प्रार्थना अत्यंत कमनीय बन पड़ी है—

हे लाजभरे सौंदर्य बता दो, मौन बने रहते हो क्यों ?

*　　*　　*

मेरी आँखों की पुतली में तू बन कर प्राण समा जा रे।
जिससे कण कण में स्पन्दन हो,
मन में मलयानिल चंदन हो।
करुणा का नव अभिनंदन हो,

×　　×　　×

वह जीवन-गीत सुना जा रे।
खिंच जाय अधर पर वह रेखा॥
जिसमें अंकित हो मधु लेखा,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिसको वह विश्व करे देखा,
वह स्मित का चित्र बना जा रे।
स्नेहालिंगन की लतिकाओं की झुरमुट छा जाने दो।
जीवनधन! इस जले जगत को वृंदावन बन जाने दो॥

रहस्यवाद और शृंगार की अलसमुद्रा में भी प्रसादजी अपने देश को नहीं भूलते—

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरु शिखा मनोहर॥
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुकुंम सारा॥

× × × ×

करुणा-कादंबिनि बरसे
दुख से जली हुई यह धरणी प्रमुदित हो सरसे।
प्रेम प्रचार रहे जगतीतल दयादान दरसे।
मिटे कलह शुभ शांति प्रकट हो अचर और चर से॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जयशंकर प्रसाद

आलोचनात्मक निबंध भी दो प्रकार के होते हैं। एक में स्वतः कला की आलोचना रहती है। दूसरे में कला के उपजीव्य सिद्धांतों की। इस निबंध में काव्यकला की आलोचना है। वह आलोचना भी ऐतिहासिक अथवा तुलनात्मक नहीं है, केवल परिचयात्मक है। है तो यह डा० सूर्यकान्त के "हिन्दी साहित्य की रूपरेखा" नामक इतिहास का एक अंश पर इसमें परिचयात्मक निबंध की स्वतन्त्रता और पूर्णता है। पूरा और निरपेक्ष होने के कारण यह छोटा-सा सफल निबंध है। इसे पढ़कर हम कवि प्रसाद का परिचय पा जाते हैं। ऊपर से साहित्यिक भाषा और चुने उद्धरणों से सजी शैली की कृपा से काव्य का आनन्द मिलता है। सच्ची आलोचना में काव्य के चुने उद्धरण और कवियों की—यथासम्भव आलोच्य कवि की—ही पदावली प्रयुक्त होनी चाहिए। यह बात इस निबन्ध में है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल की बात

समय जाते देर नहीं लगती। पन्द्रह वर्ष बीत चुके, पर जान पड़ता है कि अभी कल की बात है। सन् १९१६ में मैं तीसरी बार इन्ट्रेन्स की परीक्षा देने बैठा था।

दो साल मैं लगातार फेल हो चुका था। और चीज़ों में ज्यों-त्यों पास भी हो जाता, पर गणित का विषय मुझे अन्त में ले डूबता। छोटे दर्जों में भी इसने मेरे रास्ते में रोड़े अटकाये, परीक्षाओं में इसने मेरे साथ सदा अड़ङ्गानीति से काम लिया, पर मैं किसी न किसी करवट से दर्जा बराबर चढ़ता ही गया। इन्ट्रेन्स में पहुँचना था कि यह मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गया।

लोगों का ऐसा ख़याल था और अब भी है—कि प्रतिभा नाम की चीज़ मेरे बाँटें कभी पड़ी ही नहीं, पर मैं इसे मानने के लिये तैयार नहीं हूँ। ऐसा सोचना भी मेरे-ऐसे व्यक्ति के प्रति घोर अन्याय करना है जिसने सातवीं कक्षा में 'पेट' पर निबन्ध लिख लाने की आज्ञा पाकर यह दोहा लिखा हो—

नित रितवत नित के भरत, जिमि चुअना कंडाल।
इति न होति अति अजब गति, पेट गजब चंडाल॥

हाँ, इतना मैं स्वयं कहूँगा, कि मेरी प्रतिभा सर्वतोमुखी नहीं थी। गणित की ओर से वह रूठी हुई दुलहिन-सी मुँह फेर लेती।

खैर, गणित की कृपा से दो साल फेल होकर तीसरे साल मैं फिर इन्ट्रेन्स की परीक्षा देने बैठा। गणित के ज्ञान से अब भी बिल्कुल कोरा था; पर परीक्षा देने चला गया। एक आदत-सी पड़ गई थी, जो परीक्षा-भवन तक मुझे खींच ही ले गई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गणित का पर्चा मेरे सामने रख दिया गया। पर्चा पढ़ने के पहले मैंने त्रिकुटी में ध्यान लगाकर ईश्वर से प्रार्थना की कि 'हे प्रभो आनन्द-दाता ज्ञान मुझको दीजिए' कि मैं दो एक सवाल तो ठीक कर सकूँ—और नहीं तो 'शीघ्र सारे गार्डों को दूर मुझसे कीजिए' कि मैं आसानी से नकल ही कर सकूँ।

इसके बाद मैं पर्चे को एक बार पढ़ गया। पढ़ते ही ऐसी इच्छा हुई कि अपना सर खुजलाऊँ, फिर मैंने सोचा कि पर्चे को दुबारा पढ़ लूँ; तब निश्चिन्त होकर सर खुजलाना शुरू करूँ। मैंने यही किया, दुबारा पढ़ गया। दुबारा पढ़ डालना महज़ एक रस्म की बात थी, अगर मैं सौ बार भी पढ़ता, तो इसी नतीजे पर पहुँचता कि इस कम्बख्त पर्चे का एक सवाल भी मेरे लिये नहीं बनाया गया है।

मैंने क़लम को कान पर चढ़ा लिया और हाथ पर हाथ रखकर बैठ रहा। मन में उस परमात्मा का गुण-गान करने लगा जिसने गणित, गोजर और गण्डमाला ऐसी चीजें संसार को दीं। निराशा और निस्सहायता के भाव मेरे मन-मुकुर को धूमिल करने लगे।

और परीक्षार्थियों की कलमों ने घुड़दौड़-सी मचा रक्खी थी, पर मेरी क़लम अभी तक टस से मस भी न हुई। कान पर से उतार कर मैं उसे कापी के सामने ले आया, पर उसने आगे बढ़ने से क़तई इनकार कर दिया। मैं हिम्मत न हारा और क़लम सम्हाले बैठा ही रहा। मुझे इस तरह बैठा देखकर एक गार्ड ने कहा—'क्यों व्यर्थ कापी को क़लम से धमका रहे हो?'

मैं चुप रहा। कहाँ तो मेरे गले में फाँसी पड़ी है और कहाँ इन्हें हाँसी सूझ रही है। अपना वक्त सब कुछ कराता है, न मैं ऐसा होता, न ये मेरे ऊपर अपनी ज़बान माँजते!

मैं कभी पर्चे की ओर देखता था, कभी कापी की ओर, और कभी क़लम की ओर, पर तीनों ढाक के तीन पात की तरह अलग ही नजर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आते ! इन तीनों का अस्तित्व एक दूसरे का विरोधी जान पड़ता था। मैंने कापी से कई बार अपनी लेखनी का साक्षात् कराया, पर कुछ काम न निकला।

मैंने देवता, पित्तर, भुइयाँ, भवानी—सबको मनाया, पर किसी ने स्थिति को सुलझाने की कोशिश न की। मैंने आध घंटे के अन्दर क़लम में चार नई निबें लगाई, कि शायद इसी तरह उसकी अकर्मण्यता दूर हो, पर सब उपचार व्यर्थ गये। मैंने सोचा कि लाओ पर्चे को कापी पर नकल कर दूँ, और घर का रास्ता लूँ, पर "जब तक साँस तब तक आस" ने ऐसा न करने दिया। मेरी इस समय ऐसी दशा थी कि परीक्षक महोदय यदि मेरे सामने आ खड़े होते, तो मैं उन्हें मामा पुकार बैठता, सुना है कि साँप को भी मामा पुकारे, तो उसे दया आ जाती है।

जब मनुष्य निरुपाय हो जाता है, तब मूर्खता पर कमर कसता है। संकटापन्न अवस्था में अच्छे अच्छे विद्वानों की बुद्धि भी मोच खा जाती है, तो मेरी क्या बिसात, मैं तो अपने को किसी बुद्धिमान का इज़ारबंद होने योग्य भी नहीं समझता !

मैंने जब अच्छी तरह देख लिया कि और कोई चारा नहीं है तब यही निश्चय किया कि परीक्षक के नाम कापी में एक पत्र लिख दूँ और लिखकर घर का मार्ग पकड़ूँ।

ज्यों-ज्यों मैं ग़ौर करता था, मुझे यही कार्यक्रम समयोचित और उपयुक्त जँचता था। इस कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि इससे हानि कुछ भी नहीं थी, क्योंकि परीक्षक यदि मेरी धृष्टता से चिढ़ जाता, तो अधिक से अधिक मुझे फ़ेल कर देता, पर यह कौन-सी नई बात हो जाती। फ़ेल होना तो यों भी मेरा 'परीक्षा-सिद्ध' अधिकार था। इसके विपरीत यदि मेरा पत्र पढ़कर दया से द्रवीभूत होकर कुछ नम्बर दे निकलता, तब तो परीक्षा-फल निकलने पर मैं ही मैं दिखाई पड़ता। यह कोई असम्भव बात नहीं थी, परीक्षक बड़ा आदमी होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है, और सुना है बड़े लोगों के 'दिल दरियाव' में अक्सर अनायास दया की मौज उठने लगती है।

मैं इस पत्र में परीक्षक के बाल बच्चों की खैर मनाता और लिखता कि मेरी नौका मँझधार में है और आप ही उसके खेवैया हैं। इन बातों के अतिरिक्त मैं एक बात बड़े मार्के की लिखनेवाला था। वह यह कि इस साल मेरी शादी होनेवाली है, अगर फेल हो जाऊंगा, तो फिर न-जाने कितने दिन के लिए शादी टल जायगी, इसलिए यदि दया करके आप मुझे पास कर देंगे, तो अप्रत्यक्ष रूप से आपको कन्यादान का भी फल होगा।

मैं सोच ही रहा था कि इस पत्र को लिखना शुरू करूँ, कि किसी ने धीरे से मेरे कन्धे पर हाथ रक्खा। मैंने पीछे घूमकर देखा तो एक गार्ड महाशय को खड़ा पाया। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि वे और गार्डों की तरह हृदय-हीन नहीं जान पड़ते थे। उनकी दृष्टि में दया और स्पर्श में समवेदना थी।

वे चले गये पर मेरे हृदय में आशा का संचार कर गये। मुझे निश्चय हो गया कि वे मेरे लिए कुछ करेंगे। यही हुआ भी। वे थोड़ी देर में टहलते हुए मेरे पास आए और बड़ी सफाई से एक सोखते का टुकड़ा मेरे पास-फेंक कर चल दिये।

मैंने उस सोखते के टुकड़े को बड़ी सावधानी से उलट कर देखा। उस पर पर्चे के दो सबसे कठिन प्रश्नों के उत्तर उनकी संक्षिप्त विधि के हित पेंसिल के बहुत हलके हाथ से लिखे हुए थे।

अब क्या था! दो सवाल तो मैंने मार लिए बाकी बच गए चार, कुल छः करने थे। इनसे कैसे निपटा जाय। अब आगे की सुधि लेनी थी। मेरे ऊपर अकारण कृपा करनेवाले गार्ड महोदय भी कहीं खिसक गये थे।

ठीक इसी समय एक ऐसी घटना हुई, जिसने मुझे सच पूछिए तो कतरे से दरिया कर दिया। मुझसे कुछ दूर पर मेरे ही स्कूल का एक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लड़का बैठा हुआ था। वह यकायक खड़ा हो गया और बड़े उत्तेजित स्वर में अपने पासवाले गार्ड से बोला—"मास्टर साहब! मास्टर साहब!! यह चौथा सवाल ग़लत छपा है।" गार्ड ने उसे डाँट कर बैठा दिया। और सभी लोग उसकी बात पर अविश्वास की हँसी हँस पड़े। पर मैंने इस मौके पर बड़ी समझदारी से काम लिया। मैं उस लड़के को बख़ूबी जानता था। गणित के ग्रन्थों की सैकड़ों उदाहरणमालाएँ उत्तरों सहित उसके कण्ठस्थ थीं। ऐसा लड़का बिना कारण किसी प्रश्न को ग़लत नहीं बता सकता। मुझे विश्वास हो गया कि जब वह कहता है, तब प्रश्न अवश्य ग़लत होगा। बस, मैंने पन्ना उलट लिया और मार्जिन में प्रश्न नं० ४ दर्ज करके उसके सामने लिख दिया—'इस प्रश्न को कई बार करने पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह ग़लत छपा है, इसलिए इसका उत्तर निकालने की आवश्यकता नहीं है।'

बाद को साबित हुआ कि उस लड़के ने ठीक कहा था। प्रश्न वास्तव में ग़लत छप गया था। सारी यूनिवर्सिटी में दस ही पाँच लड़के इस भेद को जान पाये थे; और उन लड़कों से परीक्षक बहुत प्रसन्न हुआ था। कहना न होगा कि उन्हीं दस-पाँच में मैं भी एक था।

कहाँ एक सवाल भी पहाड़ हो रहा था, कहाँ चुटकी बजाते मैंने तीन कर लिये। छः में तीन, पास होने के लिए काफ़ी थे, इसलिए चिन्ता जाती रही, और उत्साह बढ़ गया। मैंने सोचा कि जब किस्मत ने चर्राना शुरू किया है, तब उसे चर्राने का काफ़ी मौका देना चाहिए। सम्भव है किसी सूरत से, किसी ज्ञानेन्द्रिय द्वारा, किसी ओर से, किसी रूप में, किसी प्रश्न पर, किसी समय, कुछ भी प्रकाश पड़ जाय, कोई इशारा मिल जाय, तो कुछ नम्बर और बटोर लूँ।

मैं शेष प्रश्नों को बार-बार पढ़ने लगा। सिर्फ पढ़ना भर हाथ लगता था, पर तब भी मैं बार-बार पढ़ने से बाज़ न आया। एक प्रश्न दशमलव का था, जिसे मैंने दूर ही से प्रणाम करके छोड़ दिया। मेरा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्वास है कि भगवान् रामचन्द्र ने बजाय दशानन के दशमलव का संहार किया होता, तो अगणित स्कूली छात्रों के धन्यवाद-भाजन बने होते। दूसरा प्रश्न ब्याज का था, जिसे मैं तुरन्त समझ गया कि इस जन्म में न कर पाऊँगा। तीसरा सवाल इस प्रकार था—

'एक घड़ी तीन बजे चलाई जाती है और ठीक सात बजे वह बन्द हो जाती है। बताओ कि इतनी देर में घड़ी की दोनों सूइयाँ एक दूसरे को किस-किस समय में पार करेंगी ?'

ऐसे सवालों को करने के लिए अङ्कगणित में एक ख़ास तरीक़ा है, जिसे एक बार सीखने की कोशिश करने पर मुझे सौ बार तोबा करना पड़ा था। और किसी वक्त मैं इस प्रश्न की ओर फूटी आँख भी न देखता, पर इस वक्त स्वयं परमात्मा मेरी पीठ पर था और मुझे तद-बीरों की फुरहरी सुँघा रहा था। जो प्रश्न मेरे लिए भरतपुर के किले से भी बढ़कर था, उसे मैंने आज यों सर किया।

मेरे जेब में घड़ी थी। उसे मैंने निकाला। उसमें बारह बजे थे। मैंने उसमें तीन बजा दिये और फिर धीरे धीरे सुई घुमाने लगा और देखने लगा कि दोनों सुइयाँ सात बजने तक कहाँ कहाँ पर मिलती हैं।

यों मैंने छ में चार सवाल कर लिये। मूँछें तो उस समय थी नहीं, पर जहाँ होनी चाहिए वहाँ का चमड़ा ऐंठता हुआ मैं उस दिन मकान आया।

दो महीने में परीक्षा का फल प्रकाशित हुआ। दुनियाँ ने देखा कि मैं पास हूँ। लोग आश्चर्य में डूबे, उतराये और उभचुभ हुए। किसी ने अन्धे के हाथ बटेर की कहानी याद की। किसी ने पत्थर पर दूब जमना स्वीकार किया। कई नास्तिकों ने ईश्वर को मान लिया। मैंने अपनी पीठ ठोंकी और कहा जीते रहो। जैसा मेरा राजपाट लौटा, वैसा ईश्वर करे सबका लौटे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कल की बात

यह व्यंग और विनोद से पूर्ण निबंध है। इसमें परिहास की पूरी सामग्री है; उससे भी बड़ी बात है छिपी हुई विदग्धता जो विदग्ध हृदयों को रह रहकर गुदगुदा देती है। उपसंहार के दो-तीन वाक्य उदाहरण के लिए काफी हैं। घड़ी वाली घटना साहित्यिक प्रहास का अच्छा नमूना है। इस प्रकार विदग्धता और परिहास, प्रहास आदि हास के कई रूप इसमें आ गए हैं। भाषा भी मुहाविरेदार और रसानुरूप है। नये रूपकों की उद्भावना खूब ही फबी है। शैली आत्मकथा की है जो प्रहसन और विनोद में खूब जमी है।

इसमें आलम्बन का नैतिक पतन किसी आलोचक की रुचि को खल सकता है पर जो हास्य के मूल तत्त्व तथा कल्पना की लीला से परिचित है वह कभी कला और नीति के ऐसे विरोध-वाद में नहीं पड़ता। शुद्ध साहित्य उसी के लिए है जो नीति के परे कला को परख सकता है। दूसरों के लिए प्रयुक्त साहित्य ही ठीक है। प्रयुक्त साहित्य की वस्तु सदा पथ्य और अनुकरणीय होती है पर शुद्ध साहित्य में ऐसी बातें भी आती हैं जो केवल आस्वाद्य हों। यह प्रहसन ऐसा ही आस्वाद्य साहित्य है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्मसिंह शर्मा

दिल्ली की सन्ध्या थी। भारत की राजधानी अपने गौरवपूर्ण अतीत की स्मृतियों को खँड़हरों के रूप में रखकर ही पुलकित हो रही थी। कभी 'जन्तर-मन्तर' और कभी पुराने किले को वह सगर्व आँखों से देख लेती थी। दिल्ली की संध्या क्षितिज पर उतर रही थी और मैं 'कुतुबमीनार' के निकट खड़ा था। मन न जाने क्यों उदास हो रहा था। 'कुतुबमीनार' संध्या के प्रकाश में उदासीन समाधिस्थ योगी की तरह चुपचाप खड़ी थी, और उसकी लम्बी छाया 'मान-दण्ड' की तरह धरित्री की छाती पर दूर तक फैली हुई थी। परमात्मा ही जानते हैं, इसने कितनी बार दिल्ली के सुहाग सिन्दूर को धुलते देखा होगा, कितनी बार इसने इस द्रौपदी को अपने सौभाग्य-गर्व में इठलाते देखा होगा। इस 'मीनार' को घेर कर दिल्ली का अतीत आज भी मूर्छित पड़ा है। यह अतीत का साक्षी है।

संध्या की स्वर्ण-विभा ने मटमैला रूप धारण किया। नीड़ों की ओर जानेवाले पक्षियों के कलरव से आकाश—महाशून्य आकाश—सजीव-सा हो गया। ताँगेवाला खड़ा-खड़ा अधीर हो रहा था। उसने कहा—"बाबूजी और ठहरना होगा?" मेरा ध्यान भंग हुआ। इसी समय एक दूसरा ताँगा आया। दो सज्जन उतरे। एक थे कोट पहने प्रौढ़, तथा दूसरे थे युवक। प्रौढ़ ने युवक से कहा—"विलम्ब हो गया। स्वामी श्रद्धानन्दजी से बातें करता रह गया। समय का ज्ञान ही न रहा।" युवक ने कहा—"पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा हमारी प्रतीक्षा में बैठे-बैठे निश्चय ही ऊब रहे होंगे।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेरा माथा ठनका। यह ईश्वरीप्रसादजी तो हमारे प्रान्त के गर्व और कलकतिया 'पंच' के ख्यातनामा सम्पादक हैं, और स्वामीजी तो दिल्ली के गौरव ही ठहरे। और ये सज्जन!

माघ की सुनहली संध्या ने गोधूल का रूप धारण किया। इन खँड़हरों की बस्ती में उदास संध्या विधवा की ललाट की तरह स्फुर्तिहीन जान पड़ती थी। आकाश की लालिमा धूमिलता में परिणत होने लगी। मैं फिर अपने विचारों के शतदल में बन्दी हो गया—ये कौन हैं? प्रौढ़ सज्जन की प्रतिभासम्पन्न मुखश्री उपेक्षा के योग्य नहीं है। मनोवेधक सादगी और शान्त मनोवृत्ति के परिचायक अचंचल नेत्र! न जाने क्यों हृदय उनकी ओर आकर्षित हो गया। मन में सोचा कि इनका परिचय प्राप्त करूँ पर अजनबी आदमी से एकाएक कुछ प्रश्न कर बैठने में संकोच भी हुआ। बड़ी दुविधा में था।

आखिर मैंने संकोच को धता बताते हुए, प्रौढ़ सज्जन से पूछा—"क्या आप पहली बार दिल्ली आए हैं?" प्रश्न तो अव्यवस्थित सा था। मैंने स्वयं अनुभव किया कि मेरा यह प्रश्न सभ्यतानुमोदित नहीं है। मैं संकोचवश, अपने भीतर ही, सिकुड़-सा गया। प्रौढ़ सज्जन मुस्करा कर बोले—"जी नहीं, कई बार आ चुका हूँ। मुझे इन खँड़हरों से विशेष प्रेम है। मैं इन्हें बार-बार देखकर भी नहीं थकता।"

मैंने सोचा, ये या तो कवि हैं, या भावुक। हाँ, इतिहासज्ञ भी हो सकते हैं। हिन्दी के विख्यात इतिहासज्ञ पं० नन्दकुमार देव शर्मा भी कुछ इसी तरह के थे। मैंने उन्हें वृन्दावन के करील कुंजों में इधर-उधर घूमते देखा है। मस्त जीव थे। अपने आप में भूले रहते थे। अन्तर्मुखी दृष्टि इसी का नाम है। इस बार मेरा साहस बढ़ा। बड़े अदब से मैंने पूछा—"आपका निवास-स्थान?" नवयुवक सज्जन बोल उठे—"आपका निवास-स्थान जानकर क्या कीजियेगा? यदि आप हिन्दी-प्रेमी हैं तो नाम सुन लेना ही पर्याप्त होगा। आपका नाम है पं० पद्मसिंह शर्मा।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्या 'बिहारी-सतसई' के महान् ज्ञाता, समालोचक-प्रवर, असंख्य हिन्दी-संस्कृत-फारसी पुस्तकों के पुस्तकालय पं० पद्मसिंह शर्मा के सम्मुख मैं खड़ा हूँ ! कितने महान् हैं ये ! मै क्षणभर तक किंकर्तव्यविमूढ़वत् खड़ा रहा। मुझे इस प्रकार निर्वाक् देखकर शर्माजी को शायद दया आई। उन्होंने मुझसे पूछा—"आप कहाँ रहते हैं ?"

इस प्रश्न के उत्तर देने के पहले मैंने शर्माजी के चरण छू लेना उचित समझा, और मुझे अपनी इस समझदारी पर नाज़ है। इस औचित्य का पालन किया। बच्चों की-सी सरलता से मुसकराते हुए शर्माजी ने अपने उस प्रश्न को दोहराया। मैंने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—"मैं गया रहता हूँ।" शर्माजी क्षणभर के लिए मानो चिन्ता में लीन हो गये। आप फिर बोले—"गया ! हाँ, गया में मोहनलाल जी महतो भी रहते हैं। क्या आप उन्हें जानते हैं ? उनकी दो पुस्तकें मेरे पास हैं—'निर्माल्य' और 'एकतारा'। वे व्यंग चित्रकार भी हैं।"

मैंने सोचा, समालोचकप्रवर के श्रीमुख से ही सुन लूँ कि इस पुस्तक के सम्बन्ध में उनका क्या मत है। मैं बोला—"जी, नहीं, उनसे विशेष परिचय तो नहीं है। उनकी पुस्तकें कैसी हैं ? क्या आपको पसन्द आईं ?

शर्माजी ने उच्छ्वसित कंठ से उत्तर दिया—"वाह ! क्यों नहीं, मैं तो प्रवास में सदा उन्हें पढ़ा करता हूँ। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि महतो जी सफल कवि हैं। अब मैं अपने आपको नहीं रोक सका—क्षण-भर भी अपने को छिपाना कठिन हो गया। हाथ जोड़ कर बोला—"इसी सेवक का नाम मोहनलाल है।"

संध्या ने गोधूलि का रूप धारण किया। मीनार के निकट ही दो ताँगे खड़े हैं। इस झुटपुट के वक्त की स्मृति आज भी हृदय को चुटकियों से मसल देती है। दिल्ली के खँड़हरों की संध्या उदास छाया डालकर गगनांगण में विलीन हो गई। जिस सड़क पर हमारे दोनों ताँगे शहर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की ओर जा रहे हैं, उस सड़क पर न जाने कितनी बार मुगल-पठानों की विजयिनी सेना के घोड़ों की टापों से क्षुब्ध होकर धूलि उड़ी होगी। शाही सवारियों की कितनी स्मृतियाँ आज भी उस सड़क के अणु-परमाणु में लिपटी पड़ी होंगी। इसका इतिहास नेपथ्य के उस पार चला गया है।

चैत का महीना था। पतझड़ के दिन थे। मुझे कलकत्ता जाना पड़ा। वसन्त और कलकत्ते से क्या सम्बन्ध है, यह बतलाना वातुलता का लक्षण है। मैं ज़करिया स्ट्रीट में ठहराया गया। मेरे कमरे की खिड़की के बाहर एक छोटा-सा पीपल सीमेंट और चूने के हृदय को फाड़कर पैदा हो गया था। तीन-चार इंच के इस महीरुह में कठिनता से दो-तीन पत्ते होंगे। आश्चर्य तो यह है कि इस पर भी वसंत का राज्य था। इसके पुराने पत्ते झड़ गये थे, और लाल-लाल दो-तीन कोपलें हवा के हिलोरों से खेल रही थीं। मैंने आँखें भर कर इस दृश्य को देखा। कलकत्ते भर में मुझे इतना ही 'पद्य' जान पड़ा, नहीं तो जो कुछ देखा, वह केवल गद्य-ही-गद्य था।

संध्या समय पं० ईश्वरीप्रसाद जी पधारे। आते ही आप मुझ पर बरस पड़े—"बड़े अहमक हो, पंच-आफिस में क्या स्थान की कमी थी? रामलाल जी (स्वर्गीय बाबू रामलाल जी वर्मा) को तुम्हारे इस आचरण से बड़ा कष्ट हुआ। लड़कमत नहीं छूटी। चलो।"

एक साँस में इतना बोलकर उत्तर की प्रतीक्षा करना घोर आवश्यक समझते हुए आप मेरे स्ट्रेचर पर बैठ गये। एक मिनट ठहर कर आपने मेरे नौकरों को आदेश प्रदान किया—"हाँ जी, खड़े मुँह क्या देखते हो? बिस्तर वगैरह ठीक करो। बाहर मोटर खड़ी है।"

अनेक तर्क-वितर्क के बाद यह समझौता हुआ कि 'मैं भोजन तो 'पंच-आफिस' में कर लिया करूँगा, पर रहना यहीं होगा।'

बड़ी कठिनता से शर्माजी मान गये, पर आज्ञा हुई कि कपड़े पहन कर इसी क्षण मेरे साथ चलो। मैंने इस आज्ञा का पालन किया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अनेक अट्टालिकाओं की कतारों के बीच से सरसराती हुई मोटर 'पंच' के द्वार पर खड़ी हुई। शर्माजी के साथ मैंने भीतर प्रवेश किया। वर्माजी की सौम्य मूर्ति मेरे सामने आई। 'अंकवार' का दृश्य अनोखा था। बैठक-खाने की ओर मुझे ले जाया गया। वहाँ का दृश्य देखकर मैं सहसा चौंक उठा। देखता हूँ कि साहित्याचार्य्य पं० पद्मसिंह शर्मा विराजमान हैं। पंडितजी के सम्मुख अर्धचन्द्राकार में कोई दो दर्जन सज्जन बैठे हैं। दरबार-सा लगा हुआ है। "आइये" "आइये" की स्वागत-ध्वनि के बीच में प्रवेश करके मैंने शर्माजी के चरण स्पर्श किये। आपने उठकर मुझे हृदय से लगा लिया। आवश्यक प्रश्नोत्तर के बाद शर्माजी ने कहा—"वियोगी! मैंने कल सुना कि कल तुम आनेवाले हो। बड़ी उत्सुकता से इन्तज़ार करता रहा। तुम नहीं आये। सोचा कि भाई, तुम (व्यंगपूर्वक) बड़े आदमी हो। आये होगे तो किसी होटल में ही ठहरे होगे। गरीबों की झोपड़ियों की क़दर करना आप लोगों के लिये लोहे के चने चबाना है।"

इस तरह कोई बीस-पचीस मिनटों तक मुझे मीठे-मीठे शब्दों की सहायता से बनाते रहे। फिर मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए बोले—"आज कल लिखना बन्द कर दिया? क्या बूढ़े हो गये? विलायत के लेखक तो मरते दम तक कलम नहीं रखते। अस्सी और नव्वे साल की उम्र तक लगातार लिखते रहते हैं, पर हमारे हिन्दी के नवयुवक तो 'मुफ़लिस के चिराग़' की तरह संध्या से ही टिमटिमाया करते हैं।"

इसी समय ईश्वरीप्रसाद जी ने प्रवेश किया। कोई बारह बजे रात तक आनन्द-स्रोत प्रवाहित होता रहा। घड़ी की सुइयाँ हिरन की तरह भाग रही थीं, पर मन तो "मधु की मक्खियाँ" हो रहा था, जिसकी "पखियाँ" बूड़ गई थीं। वे अपनी छाप मेरे हृदय पर अमिट कर गये!

× × × ×

गर्मी के दिन थे। शायद वैशाख का राज्य था। लू के मारे भूतमात्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यग्र थे। आकाश धूलिमण्डित हो रहा था। रात को भी लू चलती थी। इसी समय पटने से मुझे एक तार मिला। पं० पद्मसिंह शर्मा ने तार दिया था—"शीघ्र चले आओ।"

बात यह थी कि सम्मेलन का सालाना अधिवेशन उस वर्ष मुज़फ्फ़र-पुर में होने जा रहा था, और शर्मा जी सभापति-पद को गौरवान्वित करने जा रहे थे। पटना पहुँच कर आपने मुझे खोजा। बस, एक तार मेरे नाम धमक दिया गया। मुझ अकिंचन को वे भूल न सके। उनका महत्त्व इसी में छिपा हुआ है। आज मेरे सामने उनकी कई चिट्ठियाँ इस बात के प्रमाण-स्वरूप पड़ी हैं। वे पुराने काव्य साहित्य के प्रेमी थे; पर 'निर्माल्य' की सम्मति में उन्होंने जो कुछ लिख दिया था, उसे पढ़कर मैं एक बार काँप उठता हूँ। 'एकतारा' की सम्मति क्या है, एक छोटी-सी पुस्तिका है। प्रशंसा की सीमा को अनन्त बनाकर ही शर्मा जी ने दम लिया है।

वे महान् थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनके रिक्त स्थान की पूर्ति करते समय विधाता को भी कुछ विशेष शक्ति का परिचय देना होगा।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पद्मसिंह शर्मा

'संस्मरण' भी एक प्रकार के निबंध ही हैं। इनमें सफल साहित्यिक निबंध के सभी गुण रहते हैं और सफल आलोचना की छाया भी। क्योंकि वही बातें स्मृतिशेष रहती हैं जिनमें आन्तरिक मन्थन के बाद भी टिक रहने की क्षमता होती है। अच्छे संस्मरण में एक विशेषता और भी होती है कि आलोचक और आलोच्य दोनों के ही दर्शन हो जाते हैं। प्रस्तुत संस्मरण में ये सभी बातें हैं। इसमें पद्मसिंह का सजीव चित्र तो है ही, लेखकप्रवर मोहनलाल महतो का स्वभाव भी स्पष्ट अंकित हो गया है। कुशल लेखक संस्मरण में उन्हीं घटनाओं को चुनता है जिनमें कुछ मर्म हो और जिनमें स्वयं उसके हृदय की अनुभूति छिपी हो। इस संस्मरण में ऐसी दो घटनाएँ चुनी गई हैं। वर्णनशैली ऐसी नाटकीय और निपुण है कि दृश्य सामने खिंच जाता है; भाषा की सौम्यता और प्रसंगगर्भिता सोने में सुहागे का काम करती है। 'मानदण्ड' 'मधु की मक्खियाँ' 'पँखियाँ' 'जन्तर मन्तर' 'नेपथ्य के उस पार' आदि के समान शब्दों में साहित्यिकों के भावसागर भरे हुए हैं। विदग्ध उन्हें देखते ही सिहर उठता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पगली का पत्र

सुना है कि तुम मुझे पगली कहते हो। हाँ, मैं पगली हूँ। तुम्हारे सुन्दर मुखड़े की पगली हूँ, तुम्हारे घुँघराले अलकों की पगली हूँ; तुम्हारी साँवली सूरत की पगली हूँ; तुम्हारी जादूभरी आँखों की पगली हूँ, तुम्हारी सुधाभरी मुस्कान की पगली हूँ, तुम्हारी उस मुरलिया की पगली हूँ, जो संसार को पागल बना देती है; और पगली हूँ उस पत्थर की मूर्ति की जो वास्तव में अनिर्वचनीय है; आज दिन जो हमारा जीवन-सर्वस्व है, जो पत्थर होकर भी मुझपर पसीजती है, जो अकरुण होकर भी मुझ पर उस करुण रस की वृष्टि करती है, जिसका स्वाद वही जान सकता है जिसने उस रस को चखा है।

तुम कहोगे कि छिः इतनी स्वार्थ-परायणता ! पर प्यारे यह स्वार्थ-परायणता नहीं है, यह सच्चे हृदय का उद्गार है, फफोलों से भरे हृदय का आश्वासन है, व्यथित हृदय की शान्ति है, आकुलता भरे प्राणों का आह्वान है, संसार-वञ्चिता की करुण-कथा है, मरुभूमि की मंदाकिनी है, और है सर्वस्वत्यक्ता की चिर-तृप्ति। 'मैं उन पागलों की बात नहीं कहना चाहती, जो बड़े बड़े विवाद करेंगे, तर्कों की झड़ी लगा देंगे, ग्रंथ पर ग्रंथ लिख जावेंगे; किन्तु तत्त्व की बात आने पर कहेंगे, तुम बतलाए ही नहीं जा सकते, तुम्हारे विषय में कुछ कहा ही नहीं जा सकता। मैं तो प्यारे ! तुमको सब जगह पाती हूँ, तुमसे हँसती-बोलती हूँ; तुमसे अपना दुखड़ा कहती हूँ ; तुम रीझते हो तो रिझाती हूँ, रूठते हो तो मनाती हूँ। आज तुम्हें पत्र लिखने बैठी हूँ। तुम कहोगे यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पागलपन ही है। तो क्या हुआ, पागलपन हो सही, पगली तो मैं हुई हूँ, अपना जी कैसे हलका करूँ, कोई बहाना चाहिए—

भरे हैं उसमें जितने भाव !
मलीन है या वे हैं अभिराम !
फूल-सम हैं या कुलिश-समान !
बताऊँ क्या मैं तुमको श्याम !
हृदय मेरा है तेरा धाम !!

एक दिन सखियों ने जाकर कहा—आज राणा महलों में आयेंगे, बहुत दिन बाद यह सुधा कानों में पड़ी, मैं उछल पड़ी, फूली न समाई। महल में पहुँची, फूलों से सेज सजाई, तरह-तरह के सामान किए। कहीं गुलाब छिड़का, कहीं फूलों के गुच्छे लटकाए, कहीं पाँवड़े डाले, कहीं पानदान रखा, कहीं इत्रदान। सखियों ने कहा—यह क्या करती हो, हम सब किसलिए हैं। मैंने कहा—'तुम सब हमारे लिए हो, राणा के लिए नहीं। राणा के लिए मैं हूँ, ऐसा भाग्य कहाँ कि मैं उनकी कुछ टहल कर सकूँ। एक दिन राणा के पाँव में कङ्कड़ी गड़ गई, उस दिन जी में हुआ था कि मैंने अपना कलेजा वहाँ क्यों नहीं बिछा दिया, आज मैं ऐसा अवसर न आने दूँगी। धीरे धीरे समय बीतने लगा, बहुत देर हो गई, राणा न आए। मैं घबड़ाई, उठ-उठ कर राह देखने लगी। जब बहुत उकताई, वीणा लेकर बजाने लगी ; फिर गाया—

गए तुम मुझको कैसे भूल !
किसलिए लूँ न कलेजा थाम ?
न बिछुड़ो तुम जीवन-सर्वस्व !
चाहिए मुझे नहीं धन-धाम !
तुम्हीं मेरे हो लोक ललाम !!

गाना समाप्त होते ही राणा आए। मेरा राम आया, जो मेरे रोम रोम में समाया है, वह आया ! उनको देख, मैं अपने को भूल गई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस समय मैंने क्या किया क्या नहीं, कुछ याद नहीं। वे बोले—'मीरा' मैंने कहा—'नाथ!' उन्होंने कहा—'आजकल तुमको क्या हो गया है? मैंने कहा—'क्या हो गया है?' उन्होंने कहा—'तुम पगली हो गई हो, लोकलाज धो बहाई हो; कभी गाती हो, कभी नाचती हो, कभी साधुओं के सङ्ग फिरती हो, कभी ऐसा काम करती हो जो राजमर्यादा के अनुकूल नहीं। मीरा! सँभलो, हमारा मुँह देखो।' इस समय मैं उन्हीं का मुँह देख रही थी, सोच रही थी—यही तो मेरे गिरधर गोपाल हैं, यही तो मेरे वंशीवाले हैं। उनके कंठ में मुरली-सी माधुरी पाकर मुझको उन्माद हो रहा था, उनके स्वरूप में प्यारे मुरली-मनोहर का सौंदर्य देख कर मैं आनन्द-समुद्र में निमग्न हो रही थी, उनकी बात समाप्त होते ही मैंने कहा—'मैं आपका ही मुँह तो देख रही हूँ! क्या आपका गुणानुवाद गाने का मेरा अधिकार नहीं? आपका गुण गाते-गाते जब मेरा मन नाच उठता है, तब मैं नाचने लगती हूँ, इसमें मेरा अपराध? लोकलाज किसे कहते हैं, मैं नहीं ज़ानती। जो कार्य आपके प्रेम में बाधा डाले, उससे मैं नाता नहीं रखना चाहती। साधु-सन्त आपके ही रूप तो हैं, उनमें भी तो आप बसते हैं, उनकी सेवा-शुश्रूषा करना, आप ही को तो रिझाना है, फिर मैं आपको क्यों न रिझाऊँ? मेरे राजा महाराजा आप ही तो हैं—आपकी मर्यादा करनी ही तो राज मर्यादा है। मैं जो कुछ कर रही हूँ, अपनी मर्यादा का महत्त्व समझ कर ही कर रही हूँ, फिर वह अनुकूल क्यों नहीं?' यह कहते-कहते मैं प्रियतम के मुख-चन्द्र की चकोरी बन गई, उनके ध्यान में मग्न हो गई। जब आँखें खुलीं तो उस समय महल में राणा नहीं थे। हृत्तन्त्री में यह ध्वनि हुई—

रँग सका मुझे एक ही रंग!
दूसरों से क्या मुझको काम?
भली या बुरी मुझे लो मान!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भले ही लोग करें बदनाम !
रमा है रोम-रोम में राम !!

कुछ दिन बीत गये। एक दिन कुछ सखियाँ आईं। उनका मुख सूखा हुआ था, आँखों में जल था, बात मुँह से सीधे निकलती न थी, उनके कलेजे पर पत्थर रक्खा हुआ था। उनके हाथ में एक सोने का कटोरा था, उसमें कुछ था। मैंने पूछा—क्या है ? वे बोल न सकीं, उनकी घिग्घी बँध गई, शरीर काँपने लगा। मैंने कहा—'डर की बात क्या है, लाओ कटोरा मुझको दो। क्या इसे राणा ने भेजा है ?' एक ने कहा—'हाँ !' मैंने कहा—इसमें सुधा है, मेरे लिए मेरे मनमोहन ने जो भेजा है वह दूसरी वस्तु हो नहीं सकती। यदि दूसरी वस्तु होगी, तो भी वह जीवन-धन के करकमलों का स्पर्श करके सञ्जीवनी बन गई होगी। मैंने उसको उनके हाथों से लेकर पान किया। उसमें अलौकिक स्वाद था। सुधा मैंने आज तक पी नहीं थी, उसकी माधुरी का वर्णन सुना था। उसे पीकर मुझे ज्ञान हुआ कि सुधा कैसी अलौकिक वस्तु है। मैं उसे जितना ही पीती थी, मेरा हृदय उतना ही उत्फुल्ल हो रहा था। मैं सब पी गई, फिर भी चाह बनी रह गई कि और होती तो पीती। इस सुधा-पान करने के बाद ज्ञान हुआ कि वह मद कौन-सा है जिसको पान कर आत्मा कुछ और से और हो जाती है। जिस दिन मैंने उसे पान किया, उसी दिन से तुम मेरी आँखों में अधिक समा गए, यह मिट्टी का संसार सोने का बन गया और मेरा जीवन सार्थक हो गया। उसी दिन से मैं वास्तव में पगली हुई, और प्रायः मेरे कंठ से यह गान होता रहता है :—

गरल होवेगा सुधा-समान !
सुशीतल प्रबल-अनल की दाह !
बनेगी सुमन-सजाई सेज !
विपुल-कण्टक-परिपूरित रात !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संसार बुरी जगह है, बहुत कुछ निर्लेप रहने पर भी उसके पचड़े कुछ सता ही देते है। एक दिन कुछ कारणों से मैं खिन्न हो गई, बड़ी आत्म-ग्लानि हुई, भाव-परिवर्तन के लिए गृहोद्यान में आई। सन्ध्या-समय था, हरे-भरे वृक्ष लहरा रहे थे, फूल फूले हुए थे, चिड़ियाँ गा रही थीं, तितलियाँ नाच रही थीं और भौंरे गूँज रहे थे। वायु मंद-मंद चलकर तरुदलों से खेल रहा था, कुसुमों को चूम रहा था, तितलियों को प्यार कर रहा था और लताओं को गोद में लेकर खेल रहा था। वृक्षों का हरा-भरा और आनन्दित भाव देखकर मुझको बड़ा हर्ष हुआ। वे पृथिवी में गड़े हुए थे। फिर भी प्रसन्नवदन थे। जो दल चाहता उसे दल देते, जो फल चाहता उसे फल देते, जो उनकी छाया में जा बैठता, उसे आराम देते। नाना पक्षी उनकी गोद में बैठे हुए चहक रहे थे। वे उनको सहारा दे रहे थे, उनके खोतों की रक्षा कर रहे थे। कोई ढेला मार जाता तो भी उससे कुछ न बोलते। सम्भव होता तो एकाध सुन्दर फल उसको भी दे देते। मैंने जी ही जी में कहा—धन्य है इनका जीवन! क्या मनुष्य में इतनी सहिष्णुता और उदारता भी नहीं? फूलों की ओर दृष्टि गई तो देखा, वे काँटों में रहकर भी विकसित थे। जो रस की कामना करके उसके पास जाता, वे उसी को थोड़ा बहुत रस दे देते, फिर भी निष्काम रहते। हवा पास होकर निकलती तो उसको सुरभित कर देते। सब ओर इस प्रकार आनन्द का प्रवाह और औदार्य का विकास देखकर मैं कुछ और से और हो गई। मन ही मन कुछ लज्जित भी हुई। इतने में चन्द्रदेव निकले, धीरे धीरे ऊपर आये। उनकी चाँदनी से रात्रि का मुख उज्ज्वल हो गया, वसुधा धुल गई और उस पर बड़ी सुन्दर सफेद चादर बिछ गई। चन्द्रदेव हँस रहे थे और सब ओर सुधा की वर्षा कर रहे थे। उनके इस औदार्य की सीमा नहीं थी। सब ओर निराली ज्योति जग रही थी। सब उनके सुधावर्षण से तृप्त थे। चन्द्रदेव सबको

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक आँख से देख रहे थे। उनके लिए फूल-काँटे, जल-स्थल, तृण-तरु, पशु-पक्षी, कीट-पतंग समान थे। वे तुम्हारे ही अंग तो हैं, तुम्हारी ही एक आँख तो हैं, दो आँख से किसी को कैसे देखते ? मैं देर तक इन दृश्यों को देखती रही। जितना ही उनको देखती, जितना ही उनके विषय में विचार करती, उतना ही विमुग्ध होती, उतना ही अपने को भूलती, उतनी ही पगली बनती। जिधर मैं आँखें उठाती हूँ, उधर ही नाना विभूतियों के रूप में तुमको देखकर मुख से यही निकलता है—"इन आँखिन प्यारे, तिहारे बिना जग दूसरो कोऊ दिखातो नहीं।" मैं पगली कही गई हूँ, तो पगली ही रहूँगी और यही कहती फिरूँगी :—

बताता है खग-वृन्द-कलोल !
सरस—तरु पुञ्ज प्रसून—मरन्द !
वायु—सञ्चार प्रफुल्ल—मयंक !
हमारा व्रज-जीवन—नभ—चन्द !
सत्य है, चित् है, है आनन्द !!

तुम्हारी,
पगली मीरा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पगली का पत्र

हरिऔध जी का गद्य सदा मुहाविरेदार और काव्यरस से भरा हुआ रहा करता है। उनका यह गद्य तो पत्रशैली में लिखा हुआ गद्यकाव्य है। इसमें केवल भाषा का बाह्य सौन्दर्य ही नहीं, भाव की आभ्यन्तर रमणीयता भी है। यों साहित्य के दोनों गुण हैं।

संस्कृत आलोचकों के शब्दों में यह चम्पूकाव्य का एक छोटा-सा नमूना है। चम्पू की भाषा मिश्र होती है। उसमें गद्य और पद्य दोनों रहते हैं। उसमें वर्णन और भावोन्मेष का भी मिश्रण रहता है। साथ ही उसमें आधुनिक गद्यकाव्य के गुण भी रहते हैं।

गद्यकाव्य में एक, केवल एक भाव की अभिव्यक्ति रहती है। हरिऔधजी के इस पत्र में भी केवल अनन्य प्रेम के एक भाव की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

गद्यकाव्य के लिये शैली और रूप का कोई बन्धन नहीं रहता। वह संवाद, पत्र, उद्गार, आत्मकथा आदि की किसी शैली में बन पड़ता है। आकार प्रकार अवश्य उसका बड़ा होना चाहिए। सबसे बड़ी बात तो है गद्यकाव्य की कर्तृ-प्रधानता। गद्यकाव्य भी गीतकाव्य के समान आत्मप्रधान होता है। उसमें विषय की योजना तो निमित्तमात्र रहती है।

गद्यकाव्य का एक गुण यह भी माना जाता है कि उसमें बनाव चुनाव सँवार सिंगार की कला भी झलकती हो। यह गुण भी प्रस्तुत नमूने में है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू

गत ६ फरवरी को, दिन के ११ बजे, लखनऊ के कालाकांकर हाउस से एक शव निकला। शव को कंधे पर उठाये हुए एक ओर संसार का सर्वश्रेष्ठ पुरुष गांधी था, दूसरी ओर भारत का राष्ट्रपति—जवाहरलाल नेहरू—और पीछे की ओर दो प्रसिद्ध डाक्टर। बाहर हजारों स्त्री-पुरुष-बच्चे, हिंदू-मुसलमान, ईसाई, सिख, जैन, पारसी सभी चुपचाप आँख में आँसू भरे टकटकी लगाये खड़े देख रहे थे। ऐसा सन्नाटा छाया था कि सुई गिरने की भी आवाज़ सुनाई देती थी। जब लाश बाहर निकली, तो लोगों के धैर्य का बाँध टूट गया। करुण-क्रन्दन का एक ऐसा हाहाकार उठा, जो काश्मीर से कन्या कुमारी तक गूँज उठा। भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक शोक का समुद्र उमड़ पड़ा।

यह लाश स्वतन्त्रता के महान् सेनानी की थी, यह मुल्क की आज़ादी के दीवाने का जनाज़ा था, यह राष्ट्र के उस भीष्म का शरीर था, जिसने अपने जीवन की अन्तिम श्वास तक देश और जाति की लड़ाई लड़ने में खर्च की थी, यह उस पुरुषसिंह की पार्थिव देह थी, जिसे उसके जीवन में कोई भी शक्ति वश में नहीं कर सकी थी। स्वतन्त्रता के पुजारी और स्वराज्य-संग्राम के सेनापति के कफ़न लिये देश के झंडे से बढ़कर क्या हो सकता है? इसीलिए पंडित मोतीलाल नेहरू का शव स्वतन्त्र भारतवर्ष के एक बड़े तिरंगे झण्डे में लपटा हुआ था।

लाश मोटर पर रखकर प्रयाग ले जाई गई। लखनऊ से लेकर प्रयाग तक सड़क के दोनों ओर भारत की मूक जनता अपने महान् नेता को श्रद्धा की अन्तिम पुष्पांजलि देने के लिए खड़ी थी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अब से पन्द्रह वर्ष पहले प्रयाग का 'आनन्दभवन' आनन्द का निकेतन, विलासिता का केन्द्र और वैभव का क्रीड़ा-क्षेत्र था; परन्तु आजकल वही आनन्दभवन, राजनैतिक ऋषियों की तपोभूमि है, देश के स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनापति का शिविर है और सार्वजनिक शक्ति का केन्द्र है।

६ फरवरी को 'आनन्दभवन' में मृत्यु की भयानक गंभीरता छाई हुई थी। सहस्रों स्त्री-पुरुष 'आनन्दभवन' के स्वर्गीय स्वामी के दर्शन के लिए एकत्रित थे। तीसरे पहर एक मोटर आई, जिससे तीन धूलि-धूसरित रोती हुई मूर्तियाँ निकलीं। ये थीं कुमारी इन्दु, कुमारी कृष्णा नेहरू और श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित। थोड़ी देर बाद फूलों से ढँका हुआ पंडितजी का शव आ पहुँचा। शाम को छः बजे भारतीय कांग्रेस के हेड क्वार्टर से पंडितजी का पार्थिव शरीर महाप्रस्थान के लिए निकाला गया।

इस समय स्वतन्त्रता का संग्राम उग्र रूप से चल रहा है। हम ऐसे स्थान पर पहुँच चुके हैं जहाँ से हमें विजय अपने सामने दीख पड़ रही है। देश का भाग्य तराजू के पलड़े में रखा हुआ, राजनैतिक स्थिति बड़ी नाजुक और संकटपूर्ण हो रही है। देश को इस वक्त आवश्यकता है महान् बुद्धिमत्तापूर्ण नेताओं की, जो उसे ठीक रास्ते पर चला सकें। देश में इस प्रकार का मेधावी नेता अगर कोई था, तो वे पं० मोतीलाल थे। देश को उनकी इस समय जितनी जरूरत है उतनी कभी नहीं थी। ऐसी जरूरत के वक्त 'आनन्दभवन' से उनका शव निकलते देखकर बरबस यही कहना पड़ता है—

'जनाजा हिन्द का दर से तेरे निकलता है'
सुहाग कौम का तेरी चिता में जलता है!'

× × × ×

पंडित मोतीलाल नेहरू का जीवन एक प्रतिभापूर्ण जीवन है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसमें जितनी बातें मिलती हैं, वे चरम सीमा की। एक ओर चरम सीमा का ऐश्वर्य-वैभव और भोग-विलास है, तो दूसरी ओर चरम सीमा का त्याग और तप। इस समय देश में पंडितजी के समान शक्तिशाली व्यक्तित्ववाला कोई भी पुरुष नहीं है। उनमें लोगों के पेशवा बनने की अद्भुत शक्ति थी। उनका व्यवहार ऐसा शिष्ट और अच्छा था, जिससे वे किसी भी समाज में बड़ी आसानी से लोकप्रिय हो जाते थे। नौकरशाही के घोर विरोधी होते हुए भी सरकारी अफसरों की प्राइवेट दावतों तथा अन्य सामाजिक अवसरों पर वे उनसे ऐसी अच्छी तरह मिल-जुल सकते थे, जिससे उन लोगों को किसी प्रकार की असुविधा बोध नहीं होती थी। उनमें ऐसी अदम्य शक्ति थी; जिसे देखकर सैकड़ों युवकों को लज्जित हो जाना पड़ता था। वे ऐसे व्यक्ति थे, जिनके शत्रु भी उनके शत्रु होने में अपना सम्मान समझते थे।

एक जर्मन लेखक सी० ज़ेड० क्लोज़ेल ने 'बेर्लिनेर तागेब्लात' नामक पत्र में लिखा था—

"जब पंडित मोतीलाल नेहरू अपना सोने का चश्मा उतार कर अपने सिर से खद्दर की गांधी टोपी उतारते हैं तब वे प्राचीन काल के रोमनों से बहुत अधिक मिलते-जुलते मालूम पड़ते हैं। वे हाथ के बुने भारतीय खद्दर का लम्बा कपड़ा इस ढंग से पहनते हैं मानों वह चोंगा हो। मोतीलाला नेहरू जब अपना सुडौल गढ़ा हुआ दाहिना हाथ सलाम के लिए ऊपर को उठाते हैं तब ऐसा मालूम पड़ता है मानों वे मुसोलिनी को इस बात का सबक़ सिखा सकते हैं कि ठीक ढंग से रोमन-सलाम कैसे करना चाहिए। इसके पूर्व कि आप यह जान सकें कि मोतीलाल नेहरू किस ढंग के आदमी हैं, वे अपनी उपस्थिति और व्यबहार से आपका हृदय हर लेते हैं।" मोतीलाल जी ऐसे ही शान-बान के आदमी थे।

पंडितजी काश्मीर के एक सारस्वत ब्राह्मण-कुल के रत्न थे। उनका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जन्म सन् १८६१ ई० में हुआ था। उनके पिता दिल्ली के कोतवाल थे; मगर पंडितजी के जन्म के तीन मास पूर्व ही उनका देहान्त हो गया था। अतः उनके लालन-पालन का भार उनके बड़े भाई पंडित नंदलाल नेहरू पर था।

बालक मोतीलाल की आरम्भिक शिक्षा तत्कालीन प्रचलित प्रथा के अनुसार मुसलमानी मक़तब में हुई थी। १२ वर्ष की अवस्था में उन्हें अरबी फारसी का अच्छा ज्ञान हो गया था। बाद में वे कानपुर-गवर्नमेंट हाईस्कूल में भर्ती हुए और वहाँ से उन्होंने प्रथम श्रेणी में एन्ट्रेंस की परीक्षा पास की। कालेज की शिक्षा प्राप्त करने के लिए वे प्रयाग के म्योर सेन्ट्रल कालेज में दाखिल हुए। वहाँ स्व० डा० सर सुन्दरलाल और महामना पं० मदनमोहन मालवीय उनके सहपाठी छात्रों में थे। मोतीलालजी बी० ए० की परीक्षा में सम्मिलित न हो सके। उन्होंने उसी समय अपनी भावी जीविका के लिए वकालत का पेशा निर्धारित किया, और केवल तीन मास के अल्प समय में कानून का अध्ययन करके उन्होंने उसमें इतनी दक्षता प्राप्त कर ली कि हाईकोर्ट की वकालत की परीक्षा में वे सर्वप्रथम हुए।

सन् १८८३ में युवक मोतीलाल ने कानपुर में वकालत करना आरंभ किया। केवल तीन वर्ष में ही उन्होंने अपनी प्रतिभा से वहाँ के वकीलों में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया। उस समय वहाँ के वकीलों के अग्रणी स्वर्गीय पं० पृथ्वीनाथ थे। वे नवयुवक मोतीलाल की प्रतिभा और उच्च आकांक्षाओं से बहुत प्रसन्न हुए, और उन्होंने इनको यह सलाह दी कि वे प्रयाग जाकर हाईकोर्ट में वकालत करें। कानपुर में छोटी अदालत होने के कारण वहाँ का कार्यक्षेत्र बहुत परिमित था और उसमें मोतीलालजी की पूरी प्रतिभा का विकास होना सम्भव न था। मोतीलाल को यह बात पसंद आई और उन्होंने प्रयाग जाकर ९ नं० एलगिन रोड में अपना डेरा जमाकर हाईकोर्ट में वकालत प्रारम्भ की।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाँच-छः वर्ष में ही उन्होंने हाईकोर्ट के वकीलों में एक विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया। उस समय से लेकर असहयोग के जमाने में वकालत छोड़ने तक मोतीलालजी उत्तर भारत के सबसे अच्छे वकीलों से गिने जाते थे।

उस समय देश में 'साहबीपन' की धूम थी। लोग साहब बनने में बड़ा फ़ख़्र समझते थे। कोई-कोई तो अपनी गर्भिणी पत्नियों को केवल इसीलिए विलायत भेजा करते थे, कि जिससे उनके बच्चे विलायत में उत्पन्न हों। पं० मोतीलाल भी ज़माने के इसी रंग में रँग गए। वे अपनी प्रतिभा के बल पर लाखों रुपये उपार्जित करते और ठाट-बाट, ऐश्वर्य-विभव और विलासितापूर्ण जीवन में बड़ी दरियादिली से खर्च करते थे। उनका मकान 'आनन्दभवन' सब प्रकार के सांसारिक भोग-विलास के साज-सामानों से भरा-पूरा सचमुच में आनन्द-भवन था। वे संयुक्तप्रान्त की फ़ैशनेबुल सोसाइटी के नेता थे। उनके बच्चों को खिलाने के लिए यूरोपियन नर्सें नौकर थीं। उनकी कमीजें[१] धुलने के लिए पेरिस जाया करती थीं, परन्तु उस चरम विलासिता के वातावरण में भी मोतीलालजी की 'स्पिरिट' सदा स्वतन्त्र रही, उसमें कभी दासता की कालिमा नहीं आने पाई। उन्होंने सरकारी ओहदों अथवा उपाधियों की कभी तिलमात्र भी परवाह नहीं की। उस समय यदि वे चाहते, तो हाईकोर्ट का जज हो जाना और 'सर' का ख़िताब पा जाना, उनके लिए बड़ी आसान बात थी; मगर उनकी स्वतन्त्र आत्मा ने ऐसी बातों को कभी गवारा नहीं किया।

पंडितजी बहुत दिनों से राजनैतिक कार्यों से दिलचस्पी रखते थे, परन्तु अन्य वकील राजनीतिज्ञों की अपेक्षा उन्हें राजनैतिक क्षेत्र का

---

१ पं० जवाहरलाल जी ने अपनी आत्मकथा में इसका खण्डन किया है।—सं०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पेशवा होने में कुछ देर लगी। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। क्योंकि मोतीलालजी कभी किसी विषय पर जल्द राय क़ायम नहीं करते थे। किसी भी बात का निर्णय करने में उन्हें समय लगा करता था, क्योंकि वे उस बात के प्रत्येक सम्भव और असम्भव पहलू पर अच्छी तरह विचार कर उसकी तह तक पहुँचकर ही अपना विचार निर्धारित करते थे; परन्तु जब वे एक बार किसी बात को अच्छी तरह सोच-समझकर उस पर अपनी राय क़ायम कर लेते थे, तब उन्हें उससे डिगाना असम्भव था। रोज़मर्रा का यह साधारण स्वभाव उनके राजनैतिक जीवन पर लागू होता है। उनमें राष्ट्रीयता की उग्र भावना देर में उत्पन्न हुई; मगर जब एक बार वह भावना उत्पन्न हो गई, तब उन्होंने उस पर अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। उनके हृदय में जो राष्ट्रीयता उदय हुई वह ऐसी दृढ़, ऐसी शक्तिशाली थी, जिसे संसार की कोई भी शक्ति विचलित नहीं कर सकती थी और जिसके लिए उन्होंने अपने जीवन की अन्तिम साँस तक, एक बहादुर सिपाही की भाँति युद्ध किया।

सन् १९०७ की सूरत-कांग्रेस के अवसर पर जब स्वागताध्यक्ष ने स्वर्गीय रासबिहारी घोष को सभापति बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया, तब नेहरूजी ने उस प्रस्ताव का समर्थन किया था। कांग्रेस का इतिहास जाननेवाले सभी लोग जानते हैं कि सूरत-कांग्रेस का झगड़ा ही एक प्रकार से भारत की सच्ची राष्ट्रीयता का जनक कहा जा सकता है। उसी कांग्रेस में उग्र राष्ट्रीय विचार वाले—जैसे लोकमान्य तिलक का दल और श्री अरविन्द घोष के साथी-संगी—कांग्रेस से अलग हो गए थे, परन्तु उस समय मोतीलालजी उस उग्र दल के विरोधी दल में थे। सन् १९०७ में वे संयुक्तप्रान्त की प्रथम राजनैतिक कानफरेन्स के सभापति चुने गए थे। उसके दो वर्ष बाद उन्होंने संयुक्तप्रान्त की व्यवस्थापिका-सभा में प्रवेश किया। इलाहाबाद की न्यूज़पेपर्स लिमिटेड, कम्पनी के

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पहले सभापति भी पंडित मोतीलालजी ही थे। इसी कंपनी से प्रयाग के सुप्रसिद्ध पत्र 'लीडर' का प्रकाशन होता है।

सन् १९१५-१६ के होमरूल-आन्दोलन में भी उन्होंने गहरा भाग लिया। इसी आंदोलन में उनकी संगठन-शक्ति का पूर्वाभास मिला, जिसका परिचय बाद में उन्होंने स्वराज्य-पार्टी के संगठन में दिया। इस अवसर पर पं० जवाहरलाल नेहरू ने, होमरूल आंदोलन में भाग लेकर अपने सार्वजनिक जीवन में क़दम रखा।

मांटेगू-चेम्सफोर्ड-रिफार्म के बाद जब कांग्रेस ने उसे असंतोषजनक बताया, तो कांग्रेस के बहुत से पुराने नेताओं ने, जो आजकल लिबरल या माडरेट कहलाते हैं, कांग्रेस से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया। बस, इसी समय से मोतीलालजी का अपने पुराने साथियों से साथ छूट गया। अब वे कांग्रेस-अनुयायी और पक्के राष्ट्रवादी बन गये; मगर उनकी राष्ट्रीयता में इस बात की विशेषता थी कि वे प्रत्येक बात को व्यावहारिक दृष्टि से देखते थे।

सन् १९१९ की घटनाओं ने भारत में ऐसी क्रांति कर दी, जिसका नरम-दलवालों और भारत की मित्रता का दम भरनेवाले विलायतियों को अनुमान ही नहीं था। कांग्रेस का उद्देश्य, उसका आदर्श और उसकी कार्य-प्रणाली आदि सभी बातों का काया-पलट हो गया। रौलेट एक्ट का आविर्भाव, कांग्रेस में महात्माजी का उदय, जलियानवाला-बाग़ आदि घटनाएँ समाचार-पत्रों के पाठकों को भली-भाँति विदित हैं। इन सब बातों ने भारतीय राष्ट्रीयता का दृष्टि-कोण ही बदल दिया। इस समय पं० मोतीलाल जी ने पंजाब के 'मज़लूमों' को सहायता पहुँचाने में बड़ा भारी भाग लिया। उस समय उन्होंने जो मुस्तैदी, उदारता और त्याग दिखलाया था, उसे आज भी पंजाबवाले कृतज्ञता से स्मरण करते हैं। अमृतसर की कांग्रेस के सभापति के आसन को भी उन्होंने सुशोभित किया था। इसी अवसर पर पं० मोतीलाल नेहरू और महात्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गान्धी में वह घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हुआ, जिसका सुफल भारत की राष्ट्रीयता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों से लिखा जायगा।

सन् १९२० में असहयोग आंदोलन शुरू हुआ। पं० मोतीलाल जी उसमें निःसंकोच भाव से सपरिवार कूद पड़े। हजार रुपये प्रतिदिन कमानेवाले वकील ने राष्ट्रीयता के आगे वकालत को ठुकरा दिया। आनन्दभवन धीरे-धीरे त्याग-भवन में परिणत होने लगा। बहुमूल्य विलायती, रेशमी और सूती वस्त्र तथा अन्य साज-सामान अग्नि की पतित-पावनी लपटों की भेंट हो गए। पेरिस के धुले बहुमूल्य कपड़े पहिननेवाले का शरीर हाथ के बुने खद्दर से विभूषित होकर एक अलौकिक छटा दिखाने लगा। विलासिता की गोद में पले हुए वृद्ध मोतीलालजी तपस्वी का कठोर जीवन बितानेवाले त्यागवीर मोतीलाल नेहरू हो गये। संसार असहयोग आंदोलन को चाहे भारतीयों की दृष्टि से देखे या अंग्रेजों की दृष्टि से, उसे अच्छा कहे या बुरा, उसे उच्च राजनीतिज्ञता करार दे या मूर्खता-पूर्ण पागलपन; मगर किसी भी दृष्टि से देखने से मोतीलाल नेहरू के महान् त्याग का महत्त्व नहीं घट सकता। नेहरू और देशबन्धु दास सरीखे व्यक्तियों के त्याग ने भारत की राष्ट्रीयता को जो नैतिक शक्ति प्रदान की है, उसका प्रभाव कम नहीं कहा जा सकता।

असहयोग-आन्दोलन के सम्बन्ध में मोतीलालजी को युक्त-प्रदेश के अन्यान्य नेताओं के साथ सजा हो गई। आनन्द-भवन के विलासी स्वामी ने देश के लिए भारतीय जेल की रोटियाँ खुशी से खाईं। चौरा-चौरी कांड के बाद महात्मा गांधी ने असहयोग के लिए सहसा 'हाल्ट' की आज्ञा दे दी। देश-भर में आन्दोलन रुक गया। महात्माजी पकड़े गए और उन्हें लंबी सजा दी गई।

गया-कांग्रेस के पहले देश की तत्कालीन परिस्थिति पर विचार करने के लिए कमेटी बनाई गई थी। कमेटी ने जाँच करके जो रिपोर्ट दी, वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सर्वसम्मत नहीं थी। परिणाम-स्वरूप गया-कांग्रेस में कांग्रेसवालों में आपस में गहरा मतभेद हो गया। देशबंधु चित्तरंजन दास ने इस बात पर ज़ोर दिया कि कौन्सिलों, अदालतों और स्कूलों का बायकाट उठा लिया जाय। गया-कांग्रेस ने दास महोदय के विरुद्ध राय दी। फल यह हुआ कि श्रीयुत दास और पंडित मोतीलाल नेहरू ने मिलकर एक नवीन संगठन को जन्म दिया जो स्वराज्य-पार्टी के नाम से प्रसिद्ध है। उस समय के बाद से गत सात वर्षों का भारतवर्ष का इतिहास वस्तुतः स्वराज्य-पार्टी का ही इतिहास है। स्वराज्य-पार्टी ने देश में और संसार में जो प्रभाव डाला है, उसकी महत्ता कम नहीं कही जा सकती। एक प्रकार से स्वराज्य-पार्टी की कारवाइयों का ही यह फल था कि गत लाहौर-कांग्रेस ने पूर्ण-स्वाधीनता की माँग उपस्थित की। देशबंधु दास की मृत्यु के पश्चात् पंडित मोतीलाल नेहरू ही स्वराज्य-दल के प्रमुख नेता हुए। नेहरू जी ने दल को सुसंगठित बनाने में जिस योग्यता और संगठन-शक्ति का परिचय दिया, उसे देखकर उनके विरोधियों को भी उनका लोहा मानना पड़ा। कौंसिलों और विशेष कर एसेम्बली में स्वराज्य-दल वालों के आतंक के मारे सरकारी पक्ष के सदस्यों को नींद-भूख हराम थी। जिस दिन से पं० मोतीलाल ने एसेम्बली में राष्ट्रीय माँग का प्रस्ताव पेश किया था, उस दिन से लेकर एसेम्बली छोड़ने के दिन तक एसेम्बली में उन्हीं की तूती बोलती रही। गोलमेज कॉन्फ़रेन्स का विचार भी पं० मोतीलाल नेहरू ही के मस्तिष्क की उपज है। काश कि ब्रिटिश सरकार ने उस समय पं० नेहरू की बात मान ली होती, तो आज यह दुर्दिन देखने को नसीब न होते।

मोतीलाल जी का एसेम्बली में जाने का उद्देश्य केवल छोटी-मोटी सुविधाएँ प्राप्त करना ही नहीं था; बल्कि उनका लक्ष्य स्वराज्य प्राप्त करना था। सन् १९२५ में उन्होंने सुप्रसिद्ध 'राष्ट्रीय माँगें' एसेम्बली के सामने उपस्थित कीं और उन्हें दो बार सन् १९२५ और १९२९ में पास करवाया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नौकरशाही के पिट्ठू कहा करते थे कि जब तक हिन्दू-मुसलमानों का समझौता न होगा, तब तक स्वराज्य नहीं हो सकता। इसके उत्तर में नेहरू जी ने सर्वदल सम्मेलन का संगठन करके संपूर्ण भारतवर्ष के लिए राष्ट्रीय विधान की योजना की, जो 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से सुप्रसिद्ध है।

सन् १९२८ के अन्त में कलकत्ता-कांग्रेस के अध्यक्ष का आसन मोतीलालजी ने ही सुशोभित किया था। इसी कांग्रेस में भारत ने ब्रिटेन को इस बात का चैलेंज दिया था कि यदि ब्रिटेन एक वर्ष के अन्दर भारतवर्ष को पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य न दे देगा, तो कांग्रेस पूर्ण-स्वतन्त्रता की घोषणा करके उसके लिए संग्राम छेड़ देगी। यह प्रायः सभी जानते हैं कि सरकार ने औपनिवेशिक स्वराज्य देने की बात नहीं मानी, और फलतः लाहौर-कांग्रेस ने पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा करके सत्याग्रह-संग्राम छेड़ दिया।

गत वर्ष ११ अप्रैल को पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपना आनन्द-भवन देश को समर्पित कर दिया। आनन्द-भवन का नया नाम 'स्वराज्य-भवन' हो गया। आजकल वही भारत की राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस का हेड-क्वार्टर है। १४ अप्रैल सन् १९३० को राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू को ६ मास के कारावास का दंड मिला। १८ अप्रैल को भारतवर्ष के डिक्टेटर महात्मा गांधी ने मोतीलालजी को कांग्रेस का अस्थायी सभापति मनोनीत किया। ३० जून को सरकार ने कांग्रेस की वर्किंग कमेटी को गैरकानूनी करार देकर उसके सभापति पं० मोतीलाल नेहरू को गिरफ्तार करके ६ मास की सजा दी। जेल में मि० जयकर और सर सप्रू ने कांग्रेस-नेताओं और सरकार में समझौता कराने की चेष्टा की; मगर कुछ फल न निकला। पं० मोतीलालजी का स्वास्थ्य पहले ही से खराब था। वे आबहवा बदलने के लिए यूरोप जाने का विचार कर रहे थे। इधर उनके ऊपर कांग्रेस के काम का भार रहा और उस पर से जेल की तकलीफ़ें। वृद्ध शरीर एकदम जर्जरित हो गया। जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सरकार ने देखा कि पंडित जी को जेल में रखने से उनकी जान जोखिम में है, तब मजबूर होकर उन्हें ८ सितम्बर को छोड़ दिया।

मगर चारों ओर दमन का दौर-दौरा चल रहा थी। पंडितजी के पुत्र, पुत्र वधू और जामाता जेल में थे, अतः आंदोलन से अलग निश्चिन्त होकर रहना उनके लिए असंभव था। वे उस बीमारी की दशा में भी आंदोलन के सम्पर्क में बने रहे। बीमारी और भी गहरी होती गई और अंत में गत ६ फरवरी को भारतीय स्वतंत्रता का सच्चा नायक भारत को शोक में डुबाकर चल बसा!

× × × ×

पंडितजी ने राष्ट्र के लिए बहुत कुछ दिया है। उन्होंने अपने शारीरिक सुख-चैन, अपना अमूल्य समय, अपनी अलौकिक मेधा की शक्तियाँ, अपना धन, अपना मकान और अपना परिवार तक देश को अर्पण कर दिया, मगर देश के लिए उनका सबसे महान् दान—जैसा आज तक संसार के शायद ही किसी महान् पुरुष ने किया हो—है पं० जवाहरलाल नेहरू।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मोतीलाल नेहरू

पद्मसिंह शर्मा और व्रजमोहन वर्मा संस्मरण लिखने में सिद्धहस्त थे। शब्द-चित्र खींचने और महाविरेदार भाषा लिखने में दोनों ही आचार्य थे। वर्मा जी के एक संस्मरण का यह नमूना सामने है। इसमें निबंध के गुण तो हैं ही, संस्मरणवाली मिठास भी है।

श्री राजकीय संस्कृत महाविद्यालय पुस्तकालय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दों का अर्थ

एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना बहुत कठिन काम है, और सच पूछिए तो ज़रा भी गहरी बातों का ठीक-ठीक अनुवाद हो ही नहीं सकता। किसी भाषा का क्या काम है? वह हमको सोचने में मदद करती है। भाषा तो एक तरह से जमे हुए विचार हैं। उसके द्वारा हवाई खयालात एक मूर्ति बन जाते हैं। उसका दूसरा काम यह है कि उसके ज़रिये हम अपने विचारों का इज़हार कर सकें और उनको औरों तक पहुँचा सकें; दो या अधिक आदमियों में खयालात की आमदरफ़्त हो। भाषा और भी कई तरह से कामों में आती है लेकिन इसमें बिलफ़ेल हमें जाने की आवश्यकता नहीं है। एक शब्द या फ़िकर हमारे दिमाग़ में किसी-न-किसी मूर्ति की शक्ल में आता है। मामूली सीधे-साधे शब्दों से, जैसे मेज़, कुर्सी, घोड़ा, हाथी आदि से, आसान और साफ़ मूर्तियाँ बनती हैं, और जब हम उनको कहते हैं, तब सुननेवाले के दिमाग़ में भी अकसर करीब करीब वैसी ही मूर्तियाँ बन जाती हैं। इससे हम कह सकते हैं कि वे हमारे मानी समझ गये।

लेकिन जहाँ हम इन सीधे और आसान शब्दों से आगे बढ़े, वहाँ फ़ौरन पेचीदगी पैदा हो जाती है। एक मामूली फ़िकरा भी दिमाग़ में कई तसवीरें पैदा करता है, और यह सम्भव है कि सुननेवाले के दिमाग़ में कुछ और ही तसवीरें पैदा हों। बहुत कुछ दोनों की मानसिक शक्ति पर निर्भर है—उनकी पढ़ाई पर, उनके तजरुबे पर, उनके इल्म पर, उनकी प्रेरणाओं पर और उनके जज़बात पर। अब एक क़दम और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आगे बढ़िये और ऐसे शब्द लीजिये जो Abstract (अमूर्त) और पेचीदा हैं, जैसे सत्य, सौन्दर्य, अहिंसा, धर्म, मज़हब इत्यादि। हम रोज़ सैकड़ों दफ़े इन शब्दों का प्रयोग करते हैं लेकिन अगर हमको उनके मानी पूरी तौर से समझाने पड़ें, तो हमें काफ़ी कठिनाई हो। हम यह देख सकते हैं कि ऐसे शब्द दो आदमियों के दिमाग़ में कभी एक-सी मूर्तियाँ या तसवीरें पैदा नहीं करेंगे। इसके मानी यह है कि हम अपने मानी दूसरे को नहीं समझा सके, हालाँ कि हम दोनों बात एक ही कहते हैं पर दोनों का अर्थ अलग-अलग है। यह दिक़्क़तें बढ़ती जायँगी, जितने अधिक पेचीदा और Abstract विचार हम पेश करेंगे, और यह भी हो सकता है (और हुआ है) कि हम इसी ग़लतफ़हमी की वजह से आपस में लड़ें और एक दूसरे का सिर फोड़ें।

यह सब कठिनाइयाँ दो ऐसे आदमियों में भी, जो एक ही भाषा के बोलनेवाले हैं, सभ्य और पढ़े हुए हैं और एक ही संस्कृति के पले हुए हैं, पैदा हो सकती हैं। अगर एक पढ़ा और दूसरा अनपढ़ और जाहिल हुआ, तब उनके बीच में बड़ा भारी फ़ासला हो जाता है— और उनका एक दूसरे को पूरी तौर से समझना असम्भव हो जाता है— वे दो दुनियाओं में रहते हैं।

लेकिन यह सब कठिनाइयाँ छोटी मालूम होती हैं, जब हम इनका मुक़ाबला करते हैं ऐसे दो आदमियों से, जो अलग-अलग भाषायें बोलते हैं और एक दूसरे की संस्कृति को अच्छी तरह से नहीं जानते। उनके मानसिक विचारों में, दिमागी तसवीरों में तो ज़मीन-आसमान का फ़रक है। वे एक दूसरे को बहुत कम समझते हैं। फिर आश्चर्य क्या, जब वे एक दूसरे पर भरोसा न करें, एक दूसरे से डरें या आपस में लड़ें?

एक भाषातत्त्वज्ञ (philologist) प्रोफ़ेसर जे० एस० मेंकनज़ी ने, जिन्होंने भाषाओं पर और उनके सम्बन्ध पर बहुत ग़ौर किया है, लिखा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"An English man, a French man, a German and an Italian cannot by any means bring themselves to think quite alike, at least on subjects which involve any depth of sentiment; they have not the verbal means."

यह याद रखने की बात है कि एक अंगरेज, एक फरांसीसी, एक जर्मन और एक इटालियन एक ही संस्कृति की औलाद हैं और उनकी भाषाओं में बहुत क़रीब का सम्बन्ध है। फिर भी यह कहा जाता है कि वे किसी तरह से किसी गहरे विषय पर एक-सा नहीं सोच सकते, क्योंकि उनकी भाषाओं में अन्तर है। अगर यह हाल उनका है, तो एक हिन्दुस्तानी और एक अंगरेज़ का या उनकी भाषाओं का क्या कहा जाय? धोती-कुर्ता पहनने से एक अंगरेज़ हिन्दुस्तानी की तरह नहीं सोचने लगता और न कोट-पतलून पहनने और छुरी-काँटे से खाने से एक हिन्दुस्तानी यूरोप की सभ्यता को ही समझ जाता है।

जब एक दूसरे को समझने में यह कठिनाइयाँ हैं, तब बेचारा अनुवादक क्या करे? कैसे इन मुसीबतों को हल करे? पहली बात तो यह है कि वह इनको महसूस करे और यह जान ले कि अनुवाद करना सिर्फ़ कोष को देखकर लफ्ज़ी मानी देना नहीं है। उसको दोनों भाषाओं को अच्छी तरह समझना है, और उनके पीछे जो संस्कृति है, उसको भी जानना है। उसको कोशिश करनी चाहिए कि वह अपने को भूल जाय और मूल लेखक की विचार-धाराओं में गोते खाकर फिर उन विचारों को अपने शब्दों में दूसरी भाषा में लिखे।

मेरा ख़याल है कि हमारे अनुवादक लोग इस गहराई में जाने की कोशिश कम करते हैं, और ज्यादातर अख़बारी तौर पर अनुवाद करते हैं। अकसर ऐसे शब्द और फ़िक़रे मुझे हिन्दी में मिलते हैं, जिनको देख कर मुझे आश्चर्य होता है। 'ट्रेड यूनियन' (Trade union) का अनुवाद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैंने 'व्यापार-संघ' पढ़ा। यह शब्दों के हिसाब से बिल्कुल सही है। लेकिन जो इस चीज़ को नहीं जानता, वह कभी नहीं समझ सकता कि व्यापार-संघ व्यापारियों का नहीं, बल्कि मज़दूरों का है। ट्रेड यूनियन शब्द के पीछे सौ बरस से अधिक का इतिहास है। जो उसको कुछ जानता है, वह समझेगा कि कैसे यह नाम पड़ा। फ्रांस में यह नाम नहीं है, न इसका अनुवाद है। वहाँ इसको syndicate कहते हैं। अगर फ्रेंच से हिन्दी में अनुवाद हो तो क्या हम उसे 'सिंडिकेट' कहेंगे या कुछ और? यह तो बिल्कुल सीधा-सा उदाहरण है। असल कठिनाई तो ज्यादा पेचीदा बातों में आती है।

दूसरी बात यह है कि अनुवादक लोग जहाँ तक हो सके, छोटे और आसान शब्दों का प्रयोग करें, जिनके कई मानी न हों, जो कि धोखा दे सकें। फ़िक़रे लम्बे-चौड़े न हों। दुनिया की अनेक भाषाओं में जो प्रसिद्ध साहित्य की पुस्तकें हैं उनका अनुवाद प्रायः बहुत भाषाओं में हो गया है, और बहुत अच्छी तरह से हुआ है। कोई वजह नहीं मालूम होती कि हिन्दी में भी ऐसे ही अच्छे अनुवाद क्यों न हों। मुझे तो पूरी आशा है कि जब हमारे साहित्यकार इधर ध्यान देंगे, तो यह आवश्यक कार्य भी सफल होगा। बड़ी कठिनाई तो यह है कि हमारे विश्वविद्यालयों के बी० ए० और एम० ए० अंग्रेज़ी बहुत कम जानते हैं, और अन्य विदेशी भाषाएँ तो जानते ही नहीं।

साहित्य की मामूली किताबें अनुवादित हो सकती हैं, लेकिन धर्म और दर्शन-शास्त्र की तथा ऐसे ही Abstract विषयों की किताबों का ठीक अनुवाद करना तो असम्भव मालूम होता है। उनमें ऐसे शब्द आते हैं, जिनके बहुत से जुदा-जुदा मानी होते हैं—एक पोशाक दर्जनों आदमी पहनते हैं, उनको पहचानें कैसे? वे एक शब्द होने पर भी एक शब्द नहीं हैं और तरह तरह की तसवीरें दिमाग में पैदा करते हैं—जैसे सौन्दर्य, सत्य, धर्म, मज़हब वगैरह। सौन्दर्य को ही लीजिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

औरत का, प्रकृति का, किसी विचार का, किसी कला का, सत्य का, फ़िक़रे का, चाल-चलन का, उपन्यास का—ऐसे ही अगणित प्रकार के सौन्दर्य कहे जा सकते हैं। इन सब बातों में एकता क्या है। अगर यह कहा जाय कि जो चीज़ लोगों को पसन्द हो और उनको प्रसन्न करे, उसी में सौन्दर्य है, तो यह तो एक बिल्कुल गोल बात हो गई, फिर लोगों की राय एक-सी नहीं होती।

हर भाषा में बहुत से शब्द ऐसे गोल हैं, जिनके कई मानी हो सकते हैं। कुछ ऐसे हैं जो कि बिल्कुल ख़राब हो गये हैं, और जिनके ख़ास मानी रहे ही नहीं। कुछ भिखमंगे शब्द हैं जिनकी निस्बत मैथ्यू आर्नल्ड ने कहा था—"Terms thrown out, so to speak, at a not fully grasped object of the speaker's consciousness." कुछ शब्द ख़ानाबदेश (Nomads) होते हैं, जो इधर-उधर फिरते हैं, जिनके कोई ख़ास मानी नहीं हैं।

ऐसे शब्द हर भाषा में होते हैं, और जिन लोगों के विचार साफ़ नहीं होते, वे खास तौर से इनका प्रयोग करते हैं। वे अपने दिमाग़ की कमज़ोरी को लम्बे और गोल और किसी क़दर बेमानी शब्दों में छिपाते हैं। जिस भाषा में ऐसे शब्दों का अधिक प्रयोग हो (मेरा मतलब इस समय सौन्दर्य, सत्य आदि से नहीं है), उसकी शक्ति कम हो जाती है। उसके साहित्य में तलवार की तेज़ी नहीं होती, और न वह तीर की तरह से कमान को छोड़कर अपना मतलब हल करता है।

हम कोशिश कर सकते हैं कि इन घिसे हुए, भिखमंगे और आवारा शब्दों को हम अपने बोलने और लिखने में जहाँ तक हो सके, पनाह न दें। अपराध बेचारे शब्दों का क्या है, वे तो कम-सीखे हुए और अनुशासन-रहित दिमाग़ों के बच्चे हैं। बोलने और लिखनेवाले भाषा को बनाते हैं; लेकिन फिर उतना ही असर उस भाषा का उन नये आदमियों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पर होता है, जो उसका प्रयोग करते हैं। पुरानी भाषाओं में—संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि में—शब्दों की या विचारों की ढील बहुत कम मिलती है. उनमें एक चुस्ती और हथियार की सी तेज़ी पाई जाती है, और बेकार शब्द बहुत कम मिलते हैं। इससे उनमें शान और Dignity (बड़प्पन) आ जाती है, जो कि खास असर पैदा करती है। आजकल की भाषाओं में शायद फ्रेंच सबसे अधिक साफ-सुथरी है, और फ्रेंच लोग प्रसिद्ध हैं अपने मानसिक अनुशासन (Discipline) और अपने विचारों को बहुत शुद्धता से प्रकट करने के लिए।

जो किसी क़दर निकम्मे शब्द हैं, उनका सामना तो हम इस तरह से करें, लेकिन जो हमारे ऊँचे दर्जे के abstract शब्द हैं, उनका क्या किया जाय ? वे हमें प्रिय हैं, वे हमारे लिए ज़रूरी हैं, और अकसर हमें उभारने में वे सहायता देते हैं। लेकिन फिर भी वे गोल हैं और कभी-कभी इतने मानी रखते हैं कि बे-मानी हो जाते हैं। ईश्वर ही के ख़याल को लीजिए। हर मज़हब में और हर भाषा में उसकी तारीफ़ में हजारों शब्द कहे गये हैं। मालूम होता है कि इन्सान का दिमाग़ इस ख़याल को समझ नहीं सका और अपनी कमजोरी छिपाने को कोष खोलकर जितने बड़े और ज़ोरदार शब्द मिले वे सब ईश्वर के मत्थे डाल दिए गये। उन सब शब्दों का अर्थ समझना मानसिक शक्ति के बाहर था; लेकिन बहुत-कुछ कह और लिख देने से एक तरह का संतोष हुआ कि हमने अपना फ़र्ज़ अदा कर दिया और कम से कम ईश्वर को अब हमसे कोई शिकायत नहीं करनी चाहिए। अल्लाह के हज़ार नाम हैं, गोया कि नाम बढ़ाने से असलियत ज्यादा साफ हो जाती है। God को अंग्रेजी में absolute, omnipotent, omniscient, omni present, perfect, unlimited, immutable, eternal इत्यादि कहते हैं। यह सब सुनकर किसी क़दर दिल सहम अवश्य जाता है; लेकिन अगर इन शब्दों पर कोई ग़ौर करने की धृष्टता करे, तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उसकी समझ में बहुत कुछ नहीं आता। मनोविज्ञान के प्रसिद्ध अमेरिकन पंडित विलियम जोन्ज़ ने लिखा है—

"The ensemble of the metaphysical attributes imagined by the theologian is but a shuffling and matching of pedantic dictionary adjectives. One feels that in the theologian's hands they are only a set of titles obtained by a mechanical manipulation of synonyms; verbality has stepped into the place of vision, professionalism into that of life."

इसी तरह से इटालियन दार्शनिक क्रोस ने परेशान होकर sublime शब्द के मानी यह बतलाये हैं—"The sublime is every thing that is or will be so called by those who have employed or shall employ the name." इसके बाद कुछ ज्यादा कहने की गुंजाइश नहीं रह जाती, और हर एक को इतमिनान हो जाना चाहिए।

हर सूरत से यह ऊँचे दर्जे की हवाई Sublime बातें मामूली आदमी की पहुँच के बाहर हैं। बड़े पंडित और आचार्य तय करें कि Abstract शब्दों का कब प्रयोग हो और उसका कैसे अनुवाद हो। लेकिन फिर भी हम मामूली आदमियों को यह नहीं भूलना चाहिए कि शब्द ख़तरनाक वस्तु है, और जितना ही वह Abstract है, उतना ही वह हमको धोखा दे सकता है। और शायद सब से अधिक ख़तरनाक शब्द धर्म या मज़हब है। हर एक आदमी अपने दिल में अलग ही उनके मानी निकालता है। हर एक के मन में नई तसवीरें रहा करती हैं। किसी का ध्यान मन्दिर, मसजिद या गिरजे पर जावेगा, किसी का चन्द पुस्तकों पर या पूजा-पाठ पर, या मूर्ति पर, या दर्शनशास्त्र पर, या रिवाज पर, या आपस की लड़ाई पर, इस तरह से एक शब्द लोगों के दिमाग़ों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में सैकड़ों अलग-अलग तसवीरें पैदा करेगा और उनसे तरह-तरह के विचार निकलेंगे। यह तो भाषा की कमज़ोरी मालूम होती है कि एक ही शब्द ऐसा असर पैदा करे। होना तो यह चाहिए कि एक शब्द का संबंध एक ही मानसिक तसवीर से हो। इसके मानी यह है कि धर्म या मज़हब के सौ टुकड़े हों और हर एक टुकड़े के लिए अलग शब्द हो। सुनने में आया है कि अमेरिका की पुरानी भाषा में प्रेम करने के लिए दो सौ से अधिक शब्द थे। उन सब शब्दों का हम अब कैसे ठीक अनुवाद कर सकते हैं !

शब्दों के प्रयोग के बारे में किसी तरह महात्मा गांधी भी गुनहगार हैं, यों तो जो कुछ वे कहते हैं या लिखते हैं, वह साफ-सुथरा और बाअसर होता है। उसमें फ़िजूल शब्द नहीं होते और न कोई कोशिश होती है सजावट देने की। इसी सफाई में उसकी शक्ति है। लेकिन जब वे ईश्वर या सत्य या अहिंसा की चर्चा करते हैं—और वे अकसर करते हैं,—तब उस मानसिक सफाई में कमी हो जाती है। God is truth, truth is God, non-violence is truth, truth is non-violence,—ईश्वर सत्य है, सत्य ईश्वर है, अहिंसा सत्य है, सत्य अहिंसा है,—यह सब उन्होंने कहा है। इस सबके कुछ-न-कुछ मानी अवश्य होंगे; लेकिन वे साफ बिल्कुल नहीं हैं। मुझको तो इस तरह के शब्दों का प्रयोग करना उनके साथ कुछ अन्याय करना मालूम होता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शब्दों का अर्थ

यह विचारप्रधान निबन्ध है। इसकी गणना प्रयुक्त साहित्य में होती है। प्रयुक्त साहित्य की रोचकता और उपयोगिता का गुण रहने पर भी एक दोष खटकता है; वह है इस लेख की सामयिकता। इसमें स्थायी प्रभाव वाला तत्त्व नहीं है। तो भी इस लेख में आकर्षण है, ज्ञान है और है तथ्यप्रियता, भाषा की स्वाभाविकता, प्रतिपादन-शैली की सौम्यता और लेखक की सचाई हमें बरबस खींचती है। ऐसे सामयिक साहित्य का भी एक स्थान है। उसे पढ़ने से कुछ लोगों को अवश्य ही सुख और संतोष मिलता है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप

मेरे रायबहादुर मामा ३८ वर्ष की उम्र में दूसरी शादी करके लाए थे। अपनी नई मामी से कुछ दूर पर बैठा हुआ मैं एकटक दृष्टि से उन्हें देख रहा था। उनकी बड़ी बड़ी आँखों में तरल हँसी छलछला रही थी; गुलाब जैसे भरे हुए चेहरे से यौवन और सौन्दर्य महक महक कर फूट रहा था। ख़ूब याद है, उन आँखों में कोई उनींदापन नहीं था, जिसे हम मादकता कहते हैं, और न चेहरे का कटाव ही किसी ऐसी कोमल रेखा-भंगी पर हुआ था, जो रूप में कला की मात्रा निर्धारित करती है। एक निखरा हुआ सौन्दर्य, एक प्रबल आकर्षण केवल वहाँ था, जो आँखों को कुछ समय के लिए मानों पकड़ कर बैठ जाता था।

यह उस समय की बात है, जब मैं चौदह वर्ष का था। यौवन अपनी उमंगों के लिए भूमि तैयार कर रहा था, पर हृदय ने शैशव के कुतूहल का दामन अभी नहीं छोड़ा था। मैं मामी को देख रहा था—विस्मय से, आनन्द से। कहीं कोई टीस भी चल रही हो, तो याद नहीं; पर इतना अब भी कह सकता हूँ कि उस समय कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था, जैसे दो आदमियों ने मुझे कसकर पकड़ लिया हो और तीसरा गुदगुदी चला रहा हो।

विवाह ख़तम हो जाने के बाद अपने पिताजी के साथ मैं घर चला आया और चन्द दिन बाद मामी भी अपने नैहर को बिदा हो गई होंगी। लेकिन इन थोड़े से दिनों में ही उनके अत्यन्त रूपवती होने की बात सारे शहर में फैल गई थी। जब तक वह ससुराल में रहीं, मुँह-दिखाई की रस्म के लिये आई हुई औरतों का वहाँ ताँता बँधा रहा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मामाजी का रसूक शहर में यों ही काफी बढ़ा-चढ़ा था, फिर कितनी ही औरतें तो केवल अपना कुतूहल शान्त करने के लिए ही वहाँ आतीं और मुँह भर भर कर तारीफ़ करती हुई लौटतीं।

(२)

इस प्रशंसा का कितना अंश सच्चे हृदय से निकला था और कितना स्त्रीजाति की सहज ईर्ष्या से सम्बन्ध रखता था, यह उस वक्त मैं नहीं जान सका। लेकिन बाद में वहीं देख लिया कि स्त्री स्त्री से उसी तरह मिलती है, जैसे दो नंगी तलवारें। दो साल बाद मामाजी के यहाँ फिर मेरा ऐसे ही किसी मौके पर जाना हुआ। उस वक्त भी औरतों का वहाँ ख़ासा जमघट था। मामीज़ी उनकी आवभगत में अपने आपको भूली हुई थीं। किसी को वह खिला-पिला रही थीं, किसी का स्वागत कर रही थीं, किसी से बिदा ले रही थीं और किसी के दुख-सुख की सुन रही थीं। लेकिन मैंने देखा, इन सबके बीच उनकी निन्दा का एक राग अविच्छिन्न रूप से उस छोटे से समाज में छिड़ा हुआ था—कहीं कानों-कानों में, कहीं स्पष्ट शब्दों में और कहीं केवल इशारों और भ्रू-नर्तन में। मामी के प्रत्येक शब्द से लेकर उनकी चाल-ढाल और हरकत तक ईर्ष्या की निहाई पर आलोचना के कड़े हथौड़े से ठोक-ठोक कर परखे जा रहे थे। सम्भव है, उनमें से किसी एक विषय पर उनकी रायें कुछ दूर के लिए दो हो गई हों, पर उनके रूप के सम्बन्ध में सबकी यही एक धारणा थी कि चन्द रोज बाद वह पाउडर की सफ़ेदी की तरह फीका पड़ जायगा।

मामीजी को इस सबकी ख़बर थी या नहीं, कुछ नहीं मालूम, लेकिन अब देखता हूँ, वह जैसे इन सब आक्षेपों का जवाब अपनी किसी हल्की सी मुसकान में, किसी कोमल सम्बोधन में, या एक मधुर दृष्टिपात में ही चलते चलते दे जाती थीं और वह जवाब उनके प्रतिपक्षी के हृदय में गहरा पैठ कर उसे निःशस्त्र कर देता था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने सौन्दर्य की शक्ति का उन्हें पूरा ज्ञान था—शायद सभी स्त्रियों को सहज रूप से थोड़ा-बहुत होता है; पर औरों को केवल उसका ज्ञान होता है, मामीजी को उसपर पूरा-पूरा नियंत्रण भी था—उसके प्रत्येक उतार-चढ़ाव पर, उसकी हलकी सी हलकी शेड पर। चित्रकार जैसे केवल एक रेखा खींच कर अपनी व्यंजना को हलकी या गहरी कर देता है, और कभी कभी चित्र के प्रभाव को बदल ही देता है, उसी प्रकार मामीजी भी एक सुरमई साड़ी पहन कर अपने रूप की टोन को कस कर एकदम ऊँचा कर सकती थीं, कभी छापे की एक सफेद धोती में ढँककर उसे मधुर मुलायम कर देती थीं और कभी किसी ख़ास आभूषण की झलक से ही उसके प्रभाव में रंग भर सकती थीं।

यही एक रहस्य था, जिसके बल पर सौन्दर्य की उस दुनियाँ में वह प्रतिमा होकर पूजती थीं। मैं अब उनके यहाँ अक्सर जाता-आता रहता था। बड़े हो जाने के कारण मेरे ऊपर से वह सब प्रतिबन्ध हट गये थे, जो पहले थे। आप सोचते होंगे, मैं मामी के लिए ही ननिहाल जाता था। हाँ, ऐसी ही बात थी। मैं उनके रूप का पुजारी नहीं था—विद्यार्थी था। उसकी प्रत्येक रेखा का मैं अध्ययन करता था। मेरा विश्वास था कि समय की कोई काली छाया सौन्दर्य की उन किरणों को धुँधला नहीं कर सकती। तीन चार साल बाद जब उनको लड़का हुआ, तो उनके घर में आनन्द और उत्सव की बाढ़-सी आ गई थी, पर मैं जब उन सब में शामिल होने के लिए घर से चला, तो दिल पर पत्थर-सा रख गया था। डर रहा था, समय को जहाँ पहुँचते बरसों लगते, गृहस्थ की एक साधारण सी घटना वहाँ छलाँग में ही तो नहीं पहुँच गई।

मामीजी मुझे पहचानती थीं, मेरी आँखों में अपने आपको वह जैसे पढ़ा करती थीं। उस दिन प्रसूति-गृह की देहली पर खड़े होकर जब मैंने उनकी पानी पर तैरते हुए बुलबुलों जैसी आँखों से आँखें चार करके कहा—"मामीजी, बधाई है", तो वह थोड़ा सा मुस्कराईं और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मामाजी का रसूक शहर में यों ही काफी बढ़ा-चढ़ा था, फिर कितनी ही औरतें तो केवल अपना कुतूहल शान्त करने के लिए ही वहाँ आतीं और मुँह भर भर कर तारीफ़ करती हुई लौटतीं।

(२)

. इस प्रशंसा का कितना अंश सच्चे हृदय से निकला था और कितना स्त्रीजाति की सहज ईर्ष्या से सम्बन्ध रखता था, यह उस वक्त मैं नहीं जान सका। लेकिन बाद में वहीं देख लिया कि स्त्री स्त्री से उसी तरह मिलती है, जैसे दो नंगी तलवारें। दो साल बाद मामाजी के यहाँ फिर मेरा ऐसे ही किसी मौके पर जाना हुआ। उस वक्त भी औरतों का वहाँ ख़ासा जमघट था। मामीज़ी उनकी आवभगत में अपने आपको भूली हुई थीं। किसी को वह खिला-पिला रही थीं, किसी का स्वागत कर रही थीं, किसी से बिदा ले रही थीं और किसी के दुख-सुख की सुन रही थीं। लेकिन मैंने देखा, इन सबके बीच उनकी निन्दा का एक राग अविच्छिन्न रूप से उस छोटे से समाज में छिड़ा हुआ था—कहीं कानों-कानों में, कहीं स्पष्ट शब्दों में और कहीं केवल इशारों और भ्रू-नर्तन में। मामी के प्रत्येक शब्द से लेकर उनकी चाल-ढाल और हरकत तक ईर्ष्या की निहाई पर आलोचना के कड़े हथौड़े से ठोक-ठोक कर परखे जा रहे थे। सम्भव है, उनमें से किसी एक विषय पर उनकी रायें कुछ दूर के लिए दो हो गई हों, पर उनके रूप के सम्बन्ध में सबकी यही एक धारणा थी कि चन्द रोज बाद वह पाउडर की सफ़ेदी की तरह फीका पड़ जायगा।

मामीजी को इस सबकी ख़बर थी या नहीं, कुछ नहीं मालूम, लेकिन अब देखता हूँ, वह जैसे इन सब आक्षेपों का जवाब अपनी किसी हल्की सी मुसकान में, किसी कोमल सम्बोधन में, या एक मधुर दृष्टिपात में ही चलते चलते दे जाती थीं और वह जवाब उनके प्रतिपक्षी के हृदय में गहरा पैठ कर उसे निःशस्त्र कर देता था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अपने सौन्दर्य की शक्ति का उन्हें पूरा ज्ञान था—शायद सभी स्त्रियों को सहज रूप से थोड़ा-बहुत होता है; पर औरों को केवल उसका ज्ञान होता है, मामीजी को उसपर पूरा-पूरा नियंत्रण भी था—उसके प्रत्येक उतार-चढ़ाव पर, उसकी हलकी सी हलकी शेड पर। चित्रकार जैसे केवल एक रेखा खींच कर अपनी व्यंजना को हलकी या गहरी कर देता है, और कभी कभी चित्र के प्रभाव को बदल ही देता है, उसी प्रकार मामीजी भी एक सुरमई साड़ी पहन कर अपने रूप की टोन को कस कर एकदम ऊँचा कर सकती थीं, कभी छापे की एक सफेद धोती में ढँककर उसे मधुर मुलायम कर देती थीं और कभी किसी ख़ास आभूषण की झलक से ही उसके प्रभाव में रंग भर सकती थीं।

यही एक रहस्य था, जिसके बल पर सौन्दर्य की उस दुनियाँ में वह प्रतिमा होकर पूजती थीं। मैं अब उनके यहाँ अक्सर जाता-आता रहता था। बड़े हो जाने के कारण मेरे ऊपर से वह सब प्रतिबन्ध हट गये थे, जो पहले थे। आप सोचते होंगे, मैं मामी के लिए ही ननिहाल जाता था। हाँ, ऐसी ही बात थी। मैं उनके रूप का पुजारी नहीं था—विद्यार्थी था। उसकी प्रत्येक रेखा का मैं अध्ययन करता था। मेरा विश्वास था कि समय की कोई काली छाया सौन्दर्य की उन किरणों को धुँधला नहीं कर सकती। तीन चार साल बाद जब उनको लड़का हुआ, तो उनके घर में आनन्द और उत्सव की बाढ़-सी आ गई थी, पर मैं जब उन सब में शामिल होने के लिए घर से चला, तो दिल पर पत्थर-सा रख गया था। डर रहा था, समय को जहाँ पहुँचते बरसों लगते, गृहस्थ की एक साधारण सी घटना वहाँ छलाँग में ही तो नहीं पहुँच गई।

मामीजी मुझे पहचानती थीं, मेरी आँखों में अपने आपको वह जैसे पढ़ा करती थीं। उस दिन प्रसूति-गृह की देहली पर खड़े होकर जब मैंने उनकी पानी पर तैरते हुए बुलबुलों जैसी आँखों से आँखें चार करके कहा—"मामीजी, बधाई है", तो वह थोड़ा सा मुस्कराईं और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फिर झेंप गईं। समझ गईं, यह बधाइयाँ उन्हें केवल पुत्र-जन्म के उपलक्ष में नहीं दी जा रही हैं। इनका मतलब और भी गहरा है।

रूप की दौड़ में उन्हें परास्त करने के लिए उस शहर के बड़े बड़े घरों की औरतों में उस समय तक एक जबर्दस्त गुट बन कर तैयार हो गया था। साड़ियों के नए-नए डिज़ाइन मँगवा कर, शरीर पर हीरा मोती के आभूषणों की चमक बढ़ा कर, पालिश से दमकती हुई घोड़ा गाड़ियों की खिड़कियों में से कभी बिजली की तरह झाँक कर और कभी विशाल मोटरकारों के आतंक से बाज़ार की भीड़ को चीर कर लोगों पर अपनी धाक जमाने के इन लोगों के प्रयत्न बराबर जारी रहते थे। मामी भी इन प्रदर्शनों में कभी कभी शामिल होती थीं, लेकिन इस तरह, जैसे उनका कोई प्रतिद्वन्दी ही न हो, मानो वह खुद किसी लायक ही न हों। एक करोड़पति जिस प्रकार मामूली कपड़े पहन कर लोगों के इशारों के नीचे बाज़ार में पैदल निकल जाता है, ऐसी ही कुछ उनकी सादगी थी।

एक आँखों देखी घटना मुझे इस समय याद हो आई है। एक दिन शाम को बाहर से आकर मैंने देखा कि दरवाज़े पर लैंण्डो खड़ी है। समझ गया, मामी नुमाइश देखने जा रही हैं। ऊपर पहुँचा तो क्या देखा कि एक कोच पर दस-एक साड़ियाँ बराबर बराबर रखी हैं और उनके सामने खड़ी हुई मामी उनकी तरफ ध्यान से देख रही हैं। पहले सोचा, जो बात हमेशा अनजाने ही तय हो जाया करती थी, आज उसी के लिए इतनी उधेड़बुन क्यों? और फिर पूछ उठा—"आज ऐसी क्या ख़ास बात है, मामी?"

मामी—"कल मैं कुँवर साहब के यहाँ सगाई में गई थी, मालूम है न? वहीं यह तय हो गया कि आज नुमाइश देखने चला जाय और अपनी अच्छी से अच्छी साड़ी में।"

मैं—"अच्छी से मतलब क्या कीमती का है?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मामी—"कीमत, डिज़ाइन रंग सभी कुछ आ गया। ये बातें कहने की नहीं हुआ करतीं। कल साड़ी का किसी ने नाम तक नहीं लिया था; लेकिन किसी-न-किसी प्रकार वहाँ के वायुमंडल में यह चैलेंज गूँज गया, और सबने इसे स्वीकार कर लिया।"

मैं—"सब के स्वीकार करने से क्या मतलब? चैलेंज तो एक को ही असल में दिया गया होगा।"

मामी मुस्कराकर साड़ियों को पलटने लगीं, और मैं नीचे चला आया।

(३)

नुमाइश पहुँच कर दूर एक कोने में खड़े होकर देखा, एक मनिहार की दूकान के सामने दिवाली-सी जगमगा रही है। संख्या में वे आठ-दस के करीब होंगी। सबकी आँखों में नुमाइश का चाव था, चेहरों पर एक मधुर उद्दीप्ति। एक के बाद दूसरी दूकान को ठहर-ठहर कर पार करती हुई वे एक दूसरे से ऐसी सरलता से हँस-बोल रही थीं, जैसे सब एक ही क्यारी के तरह-तरह के फूल हों। आपस में मिलने के इस दुर्लभ संयोग पर सब प्रसन्न दिखाई देती थीं। घर-द्वार की चिन्ताएँ मानों पीछे छूट गई थीं, और संसार का कोई भी विकार उनके हृदय को छू तक नहीं गया था। कौन कहता है कि उन्हें भी कोई उलझन सता रही है, या उनकी वह हँसी ज़हर के झागों की तरह उमड़ कर बाहर नहीं आ रही है। बचकर निकली हुई कोई नज़र, होठों की कोई वक्ररेखा, कभी कभी इस बात का पता भले ही दे देती हो, पर वह भी सिर्फ उन्हीं को। मेरा विश्वास है, घर से दर्पण को साक्षी करके उनमें से हर एक अपना अनिन्द्य रूप लेकर चली थी, जो यहाँ प्रकाश की तरह फीका हो गया। हर एक को मानो एक दूसरे की नज़र चाट गई। उन सबको मालूम हो गया कि कहीं कोई त्रुटि रह गई है; जो इस जीवन में पूर्ण नहीं होगी। और जब नुमाइश खतम कर चलने का वक्त आया, तब तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उनकी साड़ियों की चमक भी कच्चे रंगों की तरह उड़ गई। इन सब में आदि से अन्त तक जो कुछ एक जैसा बना रहा, वह भी मामी की खद्दर की एक मामूली साड़ी और उसमें ढँका हुआ उनका सौन्दर्य। मुझे नहीं मालूम, ऐसी सादगी से ऐसी पेचीदा लड़ाई अब तक किसी ने जीती हो।

(४)

मामी के बारे में अब तक मैंने जो कुछ कहा है, वह ज़रा भी बढ़ा कर नहीं कहा,—उसमें कुछ छूट भले ही गया हो। और जब इतना कहा है, तो उस लंका-कांड को भी क्यों न कह दूँ, जिसके बिना यह रामायण पूरी न होगी। दस बारह वर्ष और बाद की बात कह रहा हूँ यह। मामी उस वक्त तीस के आसपास थीं। उनके एक लड़का था, दो लड़कियाँ। दिन आए और वर्ष बनकर बीत गए। बीसों स्त्रियों पर उनके सामने यौवन आया और ढल गया, रूप आया और देखते देखते उतर गया। मामी भी बदल गईं लेकिन प्रत्येक परिवर्तन अवस्था के अनुसार उनमें एक नई मोहिनी पैदा कर गया। इस बीच में कितने गुट उनके ख़िलाफ़ बन-कर टूटे, टूट-टूट कर बने; किस प्रकार ईर्ष्या और असूया की आग धधक धधक कर अपने मकानों को ही ख़ाक कर गई, इसकी कहानी लम्बी है। इन आँखों से सब कुछ देखा है—यौवन की आग में तपकर कुन्दन की तरह तमतमाते हुए मामी को देखा है। रूप के जल में ठंढा होकर निखरते हुए उन्हें देखा है और देखा है कि तीस वर्ष की अवस्था में भी वह अपनी दुनियाँ की एकछत्र रानी बनी बैठी हैं। परन्तु जिसने यह सब कुछ देखा है, उसे एक दिन यह भी देखना बदा था कि वह निर्जीव की तरह पलंग पर पड़ी हुई हैं और उनकी तरफ़ आँखें उठाकर भी नहीं देखा जाता।

उन्हें देखते डर लगता था। चेचक के बड़े बड़े फफोले उनके रूप को पी पीकर जोंक की तरह फूल रहे थे। उनकी आँखें बन्द थीं। गले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से बोल नहीं निकलता था। देखते ही मेरे आँसू फूट निकले। मैंने कहा—"हे ईश्वर, या तो मुझे ही उठा लो या तो मामी को ही।"

मैं कैसे मरता ? ऐसे तो आज तक कोई नहीं मरा। और मामी··· जब तक साँस है, तब तक आस भले ही टूट जाय, पर मोह नहीं छूटता। सब कुछ भुलाकर दिन-रात उनकी सेवा में मैंने एक कर दिया। जो रूप कभी आँखों में समाता नहीं था, उसी की लाश को हाथों की इन अँगुलियों से मैंने झाड़ झाड़ कर फेंक दिया। कल-की-सी याद है जिस दिन मामी ने अपनी घायल पलक उठाकर मेरी ओर देखा था, उस समय बहुत कोशिश करने पर भी मैं अपने आँसुओं को न रोक सका। जी में आता था, मामी की चारपाई से सिर पटक कर प्राण दे दूँ।

मामा रोते थे अपनी स्त्री के लिए, भुवन—उनका चौदह वर्ष का लड़का—रोता था अपनी माँ के लिए—माँ के प्यार के लिए। इन दोनों के लिए मामी जैसी भी उठ पड़तीं उसी से वे निहाल हो जाते। लेकिन मैं···? मैं अपने आपसे पूछता तेरा आधार इतना भंगुर क्यों है ? क्या तेरा सम्बन्ध ऐसा ही निर्लिप्त नहीं हो सकता ? ठीक है। पर दो दिन पहले की मामी को मैं कैसे भुला देता ! कैसे तोड़ देता मस्तिष्क के उन तन्तुओं को, जो उनकी स्मृति से टकरा कर एकदम चीख़ उठते थे।

दस पाँच स्त्रियाँ रोज उन्हें देखने आती थीं। दो चार घोड़ा-गाड़ियाँ दरवाजे पर खड़ी ही दिखाई देती थीं! बड़े आदमियों का यह भी एक प्रोग्राम था, जो कि उसी तरह पूरा किया जाता था, जैसे शादी और ज्योनार का। बहुत अच्छी पोशाक में वे आती थीं, मानो उनके साधारण रहन-सहन का स्टैन्डर्ड ही इतना ऊँचा हो। उनकी समवेदना का अभिनय भी बहुत ही ठोस और कलापूर्ण होता था। पुरानी चाल की औरतों की तरह वे आँसू नहीं बहाती थीं और न फैशन की नई पुतलियों की तरह उपेक्षा के भावों को ही बाहर निकलने देती थी। मामी के पलंग के पास कुर्सी खींच कर जब वे उनकी दयनीय दशा को निर्वाक् और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निस्पन्द होकर देखतीं, तो उनकी आँखों में से संज्ञा को जैसे कोई छीन लेता था। असीम दुख, बर्फ की पर्त्त की तरह जमकर उनमें बैठ जाता था।

बड़े घरों की इन बातों में कमाल हासिल होता है, यह तो मैं उस वक्त भी जानता था; लेकिन अब समझ रहा हूँ कि शिष्टाचार के अभिनय की उस सफलता को प्राणदान कहाँ से मिलता था, आत्मसन्तोष का वह ठोस भाव मामी की असहाय दशा से ही पैदा होता था। बहुत दिनों के बाद उनके लिए आज मैदान खाली हुआ था। उनमें से बहुतेरी तो वर्षों से पले हुए ईर्ष्या और डाह को समवेदना की गहरी आहों के साथ ही हृदय में से बाहर निकाल कर वहीं की वहीं हलकी हो लेती थीं।

× × × ×

मामी अच्छी हो गईं। उनका कंकाल पलंग से उतर कर घर में घूमने लगा। वह बदल गई थीं, इसलिए उन्होंने अपने चारों तरफ़ की दुनियाँ भी धीरे धीरे बदल डाली। उनके कमरे में घुसते ही सामने आलमारी में एक आदमक़द शीशा जड़ा हुआ था। अब वह नदारद था। उसकी जगह पर काठ का एक सादा किवाड़ लगा दिया गया था। इस आलमारी में उनकी शृंगार-सामग्री रखी रहती थी, अब वहाँ भुवन की किताबें तरकीब से लगी हुई थीं। कमरे की दीवारों पर एक भी तसवीर नहीं थी। एक बौद्ध क्षपणक की भाँति कमरा उस घर में मूक, निस्तब्ध खड़ा होकर तपस्या-सी कर रहा था—विरूप नहीं, विकार-हीन।

मामी से दो बातें कीं, तो मालूम हुआ कि वह अब कहीं नहीं आती जाती हैं। जो कुछ हो गया उसका उन्हें अफसोस ज़रूर था; पर मलाल रत्तीभर नहीं। घर के काम-काज में वह अब अधिक व्यस्त रहती थीं। नौकर चाकर सब जहाँ के तहाँ बने थे, पर उनका भार अब बहुत हलका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हो गया था। गृहस्थी की सारी ज़िम्मेवारियाँ मामी ने अपने ही सिर पर ले ली थीं।

लेकिन चैन तो तब मिले, जब दुनियाँ लेने दे। थोड़े दिन बाद शहर के स्पेशल मैजिस्ट्रेट दयाल बाबू के लड़के का विवाह बड़ी धूम-धाम के साथ आ पहुँचा। मामा जी के वह पुराने और अनन्य मित्र थे, इसलिए मामी के शामिल होने के लिए तक़ाज़ा भी बड़ा जबर्दस्त था। शुरुआत के कुछ दिन तो मामी ने स्वास्थ्य की दुहाई देकर निकाल दिये, पर ज्योनार के दिन उनकी एक न सुनी गई। उस दिन दयाल बाबू की स्त्री खुद आईं और उन्हें अपने साथ ले गईं।

मैं वहाँ पहले ही से मौजूद था। मामा जी ने अपनी मुस्तैदी का परिचय देने के लिए मुझे वहाँ पहले ही से हाथ बटाने के लिए भेज दिया था। इन्तज़ाम वहाँ क्या मैं ख़ाक करता, जहाँ सब कुछ पहले ही से ज़रूरत से ज़्यादा सुव्यवस्थित था। पर दयाल बाबू ने फिर भी मुझे जनाने महकमे का निरीक्षक बना दिया और बरायनाम उसकी सारी ज़िम्मेवारी मुझे सौंप दी।

मुझे स्वप्न में भी यह आशा न थी कि मामी यहाँ आयँगी। पहले पहल जब मैंने उन्हें देखा तो मैं पसीना-पसीना हो गया। दूर एक कोने में वह बैठी थीं, शायद इस ग़रज से कि कम से कम औरतों को उनका पता लग सके, लेकिन उनके आने के थोड़ी देर बाद ही एक ख़ासी भीड़ उनके चारों तरफ जमा हो गई। बातें करने के लिए एक नया विषय उस समाज के हाथ लगा, और एक कोने से दूसरे कोने तक मामी के सम्बन्ध की तरह तरह की बातें आ-आकर मेरे कानों में टकराने लगीं।

झुँझला कर मैंने चारों तरफ देखा, जैसे अब तक कुछ देखा ही न था। रूप, आभूषण और नख़रों का बाज़ार वहाँ खुला पड़ा था। जिसके पास रूप था, वह आभूषणों की कमी द्वारा उसे प्रकाश में लाना चाहती थी; जिसके पास आभूषण थे, वह रूप के साथ उन्हें तोल-तोल कर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिखला रही थी, और जिनके पास इन दोनों में से कुछ भी न था, उनके नखरे लाजवाब थे। मगर इनमें से दर्द प्रायः सबके सिर में हो रहा था। बहुतेरी इनमें बारहों महीने अस्वस्थ रहती थीं। उन्हें कोई ख़ास शिकायत नहीं थी। एक असाधारण सुकुमारता से यह हमेशा परेशान रहती थीं।

मैं खड़ा-खड़ा देख रहा था, मामी कैसे विश्रब्ध रूप में बैठी हैं, किस प्रकार निःशङ्क भाव से बातचीत कर रही हैं, मानो उनके जीवन का वह युगान्तकारी परिवर्तन उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सका हो। लेकिन ऐसा करने में अपनी दुर्बल आत्मा को उन्हें कितना कसना पड़ा होगा; यह किसे मालूम। वही स्त्रियाँ थीं, वही जगह, वही परिचित दुनियाँ जिसे कभी वह मछली की तरह चीरती चली जाती थीं। आज उसी में पैर जमाना कितना कठिन हो गया था। उनकी आँखों की उस आहार्य प्रसन्नता के पीछे से न जाने कितने आवेग फूट पड़ना चाहते थे, स्वर का उस समय का हलकापन हृदय पर के कितने जबर्दस्त बोझ के नीचे से निकलकर बाहर आ रहा था। मैंने कहा, मामी, इस तरह तुम कब तक रह सकोगी ! क्यों तुम अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित इस विरोधी दल में इस तरह निहत्थी आकर खड़ी हो गई ? ऐसा न हो मामी, आत्म-नियन्त्रण के किसी कड़े झटके से तुम्हारे शरीर के सब स्नायु-तन्तु तुम्हारी मुट्ठी में से निकल कर फैल जायँ।

वही हुआ।

पहले इधर उधर की बातें होती रहीं—शहर की, व्याह-शादी की, मेले तमाशों की; लेकिन धीरे धीरे सिलसिला वहाँ आकर उतर आया, जो मामी के लिये एक बहुत ही नाजुक प्वाइन्ट था। शिष्टता का थोड़ा बहुत ख़याल तो सबको था। सब जानती थीं, इस मर्म को स्पर्श करना निर्दयता होगी; लेकिन इतने ज़बर्दस्त प्रतिबन्ध के नीचे भी कुतूहल कब तक दबा पड़ा रह सकता था ? स्त्रियाँ शिष्ट हो सकती हैं, क्षमा कर सकती हैं और दया भी दिखला सकती हैं—पर स्त्रीत्व

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को साथ लेकर ही। अनादि युग से जिन भावनाओं और संस्कारों ने उनकी रग-रग में रमकर इस तत्त्व की सृष्टि की है, उन्हें वे कहाँ रख आतीं ?

एक अधेड़ उम्र की स्त्री ने उस सारे समाज का ध्यान अपनी और केन्द्रित करते हुए कहा—"ऐसा मालूम होता है। मानो बरसों में निकली हो। कितने दिन बीमार रहीं बहू ?"

मामी की निगाह एक बार सामने की ओर उठी और फिर पलकों में जा छिपी। धीमे-से स्वर में जवाब दिया—"लगभग डेढ़ महीने।"

कुछ स्त्रियों की छाती में से एक गहरी साँस उठी और धीरे से उतर कर वहाँ फैल गई। किसी ने पीछे से कहा—"कैसा गुलाब-सा रूप था, देखते आखों की भूख भागती थी, ईश्वर ने न जाने कब का बदला निकालने के लिए रख छोड़ा था।"

मामी के मुख के गहरे गड्ढों में पसीने की बूँदें झलकने लगीं। उन्हें इतनी हिम्मत नहीं हुई कि प्रतारणा के इन कड़े आघातों से बच कर एक बार रूमाल से उन्हें पोछ लें। सिर नीचा किये वह चुपचाप बैठी रहीं।

इसके बाद शुरू हो गई उनके रूप की तारीफ, जैसे मरने के बाद दुश्मन की होती है। याद नहीं किसने क्या कहा। मैं तो वहाँ से जान बूझकर हट गया था। थोड़ी देर में जब उस स्थल पर फिर पहुँचा, तो पीछे की तरफ़ से एक बुढ़िया जोर-जोर से कह रही थी—"सच बात तो यह है कि स्त्रियों की है बड़ी फजीहत। दुनियाँ उनका मोल करती है तोल देखकर। इसीलिये रूप और यौवन का नाज़ तो सब उठाते हैं; पर उनके बुरे दिनों का कोई भी साथी नहीं होता। वे लोग भी नहीं होते जिन्हें हम अपना समझती हैं।"

तीर को लक्ष्य तक पहुँचने में देर लगती है; लेकिन इस व्यंग को मामी के हृदय तक पहुँचने में जरा भी देर न लगी। वह सिहर उठी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जैसे किसी ने भरपूर चुटकी भर ली हो। वह उठना ही चाहती थीं कि उनसे सटकर बैठी हुई एक नवोढ़ा ने पूछा—"जीजी, पहले दिनों का कोई फोटो भी तुम्हारे पास है?"

'फोटो!' दाँत पीस कर मैंने मन ही मन दुहराया। निर्जीव फोटो क्या झरने की बूँदों की तरह उमड़ते हुए उस रूप के प्रति न्याय कर सकता था? ओफ! आज जाना, दुनियाँ का प्रवाह कितने निम्न तल पर बहा करता है।

ऐसा मालूम हुआ, जैसे मामी उठना चाहती हैं। अपनी चादर उन्होंने सम्भाली और सामने के जमघट पर, उत्सव की उस चहल पहल पर, एक शून्यदृष्टि डालकर तत्त्वण उसे समेट लिया। मालूम होता था, उन आँखों में एक यान्त्रिक चेतना के सिवा और कुछ नहीं था। विषाद, ग्लानि, क्षोभ जैसे विकार उसमें एक बार उतर कर ऊपर उठ नहीं सकते थे, ऐसी गहराई थी उस शून्यता में।

वह उठ दीं, घोर अपमान और लांछना की गठरी-सी बाँध कर। जिसके रूप के प्रकाश में स्त्रियों का वह क्षुद्र समाज दीपक की भाँति लाल होकर टिमटिमाने लगता था, वही मामी आज परास्त होकर जा रही थीं। वह अपने सब पैंतरे भूल गई थीं। वार करना तो दूर, वार बचाना तक भूल गई थीं।

दस-पाँच सेकंड तक वह जहाँ की तहाँ खड़ी रहीं, मानो इस प्रतीक्षा में कि अगर ज़मीन फट जाय, तो उसमें धँस जायँ; लेकिन ऐसा नहीं हुआ। पीठ मोड़कर जाने के लिए वह घूम लेना ही चाहती थीं कि किसी ने बगल में से उनका हाथ पकड़ कर पुकारा—"अम्मा, चलो, गाड़ी आ गई है!"

मामी ने ज़रा तिरछे होकर देखा, तो वहाँ भुवन खड़ा था। उसे देखते ही उनका सारा विषाद, सारी संचित आत्मा-ग्लानि न जाने किधर उड़ गई। खतम होकर बुझती हुई दिए की बत्ती जिस प्रकार पास की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक दूसरी बत्ती को पाकर एकाएक जल उठती है, इसी प्रकार उनका मुँह खिल उठा और उसमें से निकल पड़ा—'अरे भुवन, तुम यहाँ कब आ गये ?'

भुवन को मैंने सौ-पचास दफा भी नहीं देखा है क्या, लेकिन उन आँखों से नहीं जो इस समय अचानक खुल गई थीं ! मामी से बिल्कुल सट कर ख[illegible]ा हुआ वह उनके कन्धे तक लगता था। गोरा, भरा हुआ बदन था, जिसके रोम-रोम से मामी की झाँई मार रही थी। माथे पर के सुनहले बाल माँग को लाँघ कर सामने गुच्छा बनकर लहरा रहे थे। जल जैसे निर्मल कपोलों में, संकोच और लज्जा वश कभी एक भँवर-सी पड़ जाती थी; कभी संध्या के बादलों की-सी लाल आभा परछाहीं की तरह दौड़ती हुई निकल जाती थी। आज से बीस इक्कीस वर्ष पहले मामी को भी इसी तरह पहले-पहल देखा था। यही बड़ी-बड़ी तरल गम्भीर आखें थीं; यही सरलता, ऐसा प्रबल आकर्षण, जो देखनेवालों की आँखों को मानो पकड़ कर बैठ जाता था।

बड़ी देर तक मामी अपलक नेत्रों से भुवन की तरफ देखती रहीं, जैसे कभी दर्पण के सामने खड़े होकर अपने को देखा करती थीं, और फिर बोलीं—"तुमने किसी से नमस्ते नहीं किया, भुवन ! वह देखो, तुम्हारी बुआ बैठी हैं, वह रहीं चाची।"

भुवन के दोनों होथ जोड़कर अपने शर्मीले पलक उठाए और फिर गिरा लिए। सारी स्त्रियाँ मन्त्र-मुग्ध की तरह उसे देख रही थीं, जैसे उनकी कोई भयानक भूल मूर्तिमान् होकर उनके सामने आकर खड़ी हो गई हो।

किसी ने पूछा—"कितने वर्ष का है यह ?"

मामी ने कहा—"चौदह का।"

—"पढ़ता है न ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

—"हाँ, आठवीं में पढ़ता है।"

फिर सन्नाटा छा गया। उसे तोड़ते हुए मामी ने कहा—"आप सब आशीर्वाद दीजिए, यह पढ़-लिख कर सुपात्र बने।"

किसी बुढ़िया ने इसके उत्तर में धीमें से कहा—"ईश्वर करे, इसकी हजार वर्ष की आयु हो।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रूप

सुघर अङ्गों के सुषम संस्थान को सौन्दर्य कहते हैं, और उसीके आँखों से पी जाने लायक 'पानिप' को रूप। रूप का परम विकास इसीमें है कि उसके आरम्भ उपादान अपनी-अपनी विभक्त रुचिरता रखते हुए भी समष्टिसौष्ठव की दीप्ति में इस प्रकार छिप जायँ कि पृथक् पृथक् दृष्टि को न अटका सकें। प्रवाह है बिन्दुओं का समुदाय ही, पर प्रवाह की मोहक एकात्मता अपने किसी बिन्दु पर दृष्टि को नहीं जमने देती।

'रूप' के लेखक को इस तत्त्व का यथार्थ ज्ञान है। पहले ही प्रघट्टक में उसने इसकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की है।

एक तो मानव स्वभावतः मानवीय रूप की ओर आकृष्ट होता है, दूसरे मामी भानजे का नाता पवित्र होकर भी सरस होता है। अतः 'मैं' के उमङ्ग और कौतूहल ने विस्मय और आनन्द के साथ मामी के रूप और उसके प्रभाव का जो अध्ययन और वर्णन किया है वह कलाकार की 'संविधानक'-सृष्टि का उत्कृष्ट नमूना है।

संपत्ति गर्व और ईर्ष्या का विषय होती है। रूप की संपत्ति एक बड़ी संपत्ति है। फिर भी ऐसे रूप की संपत्ति का क्या कहना, जिसके विषय में पारखी कवियों की—

क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।
किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम्॥

A thing of beauty is a joy for ever

—ये उक्तियाँ सवा सोलह आने चरितार्थ हो रही हैं। इस कहानी में लेखक ने मानो स्थान-स्थान पर इन उक्तियों के नगीने जड़ दिये हैं। ऐसे रूप पर गर्व ईर्ष्या न होना अस्वाभाविक है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक ने अपनी कहानी के लिए रूप को अध्ययन का विषय माना है, उपभोग का नहीं। उपभोग में वासना की तृप्ति का प्राधान्य होता है, उपभोग्य वस्तु का प्राधान्य नहीं। पर अध्ययन अध्येतव्य विषय के रोम रोम का परिज्ञान चाहता है। ऐसा परिज्ञान विषय की रमणीयता के साथ-साथ अध्येता के संयम और अनासक्ति पर बहुत कुछ अवलम्बित रहता है। इस प्रकार रूप की कोई लटक, कोई छाया, न छूटनी चाहिए। 'रूप' के विदग्ध-कर्ता ने मेरे जान कुछ नहीं छोड़ा है। उसकी स्त्री-स्वभाव की अभिज्ञता और प्रासङ्गिक शब्दों से उसकी व्यञ्जना दोनों ही बारीक हैं।

कहानी का अन्त अद्भुत है। पूर्व संभावना से बिलकुल विलक्षण और पुनीत परिणति के कारण बिलकुल उदात्त। रमणी का संचित रूप अस्थिर और परिणाम-विरस हो सकता है पर जननी का अर्पित रूप स्थिर है, शाश्वत है। इसीलिए सदा आनन्ददायक है।

उपचार-लाञ्छित शृंगार का ऐसे सरल ढंग से वात्सल्य बन जाना साधारण घटना है। लेखक की इस कला का हम मान करते हैं।

भाषा भाव के इशारे पर चली है। उससे 'आहार्य' भी है, और Point Shade भी चित्रकला के कुछ अपने शब्दों की लक्षणा बड़ी ही मार्मिक हुई है। रूप की ऐसी मधुर कहानी कभी नहीं सुनी गई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी की उत्पत्ति

हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा है, यह तो एक स्वतःसिद्ध बात है। हर काम में, अपने प्रतिदिन के जीवन में हम ऐसा ही देखते हैं। हिमालय के तुषारमंडित गिरिराजस्थित सरल, पीलू और चीर-वृक्ष की अरण्यावली से दक्षिण-समुद्र के पास कन्याकुमारी और सेतुबंध-रामेश्वर के नारिकेल-कुञ्जों तक, आसाम और वर्मा के अतिवृष्टिसिक्त 'सेगुन' वन और हरिद्वर्ण धान्य क्षेत्रों से अफ़गानिस्तान और बलुचिस्तान के दुर्गम वारिहीन मरु पर्वत तक, उत्तर से दक्षिण और पूरब से पश्चिम आसमुद्र हिमाचल समग्र भारतवर्ष की तमाम देशी भाषाओं में एक हिंदी ही भारतीय जाति की विभिन्न शाखाओं के मनुष्यों में एक दृढ़ और उपयोगी मिलन श्रृंखला बनी है। यदि इसका कारण पूछा जाय, तो एक ही बात में हम इसका उत्तर दे सकते हैं। भारतीय सभ्यता का उत्पत्तिस्थान तथा केन्द्र गंगा और यमुना का तीरवर्ती देश आर्यावर्त्त ही है। आर्यावर्त के श्रेष्ठ अंश मध्यदेश की भाषा हिंदी है। हिंदी के प्रसार का पहला मुख्य कारण यही है कि हिंदी भारत के हृदय देश की भाषा है। दूसरा कारण है हिंदी भाषियों की उद्यमशीलता। हिंदी जितने लोगों की स्वाभाविक मातृभाषा या घरेलू भाषा है, उससे दूने चौगुने लोगों की शिक्षा, साहित्य और सामाजिक जीवन की भाषा बनी है। सहज जन्मगत अधिकार से पूर्व पंजाब, मध्यभारत और पछाँह के जो लोग हिन्दी बोलते हैं—चाहे यह हिंदी अपने विशुद्ध भारतीय रूप में हो, चाहे अपने मिश्रित मुसलमानी रूप उर्दू में, और पंजाब, राजस्थान, मध्यप्रदेश और बिहार प्रान्त के जो लोग साहित्यिक और सामाजिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाषा के रूप में हिन्दी को स्वीकार कर उसे सब कामों में व्यवहार करते हैं, इन दोनों प्रकार के मनुष्य अपनी अपनी जीविका की फिक्र में समग्र भारतवर्ष में फैले हुए हैं, और दूसरे प्रान्तों के सामाजिक तथा आध्यात्मिक जीवन को आर्यावर्त के प्रभाव से इतना प्रभावान्वित कर रहे हैं कि साथ-साथ आर्यावर्त की भाषा बिना प्रयत्न किये हुए भी सुप्रतिष्ठित हो गई है। हिन्दी को यह उच्च स्थान स्वाभाविक कारणों से प्राप्त हुआ है, इसलिये जब तक आर्यावर्त भारत की संस्कृति का मूल स्थान रहेगा, तब तक हिंदी का यह आसन नहीं मिटने का।

ऐतिहासिक और भाषातत्व की भी दृष्टि से अगर देखा जाय, तो हिन्दी की व्यापकता और भारत की राष्ट्रभाषा होने के लिये एक हिंदी ही की योग्यता सब लोगों को माननी पड़ेगी।

अन्य-तिमिराच्छादित प्राग् ऐतिहासिक युग के अवसान के साथ जिस समय वैदिक युग के अरुणिमा-मंडित ज्योतिर्मय उषःकाल में भारतीय संस्कृति के सूर्य का उदय हुआ, उस समय हमारी हिन्दी, बंगला आदि आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की आदि जननी वैदिक भाषा भारत में श्रेष्ठ भाषा थी। भारतीय अनार्य लोगों की अपनी-अपनी पृथक् बोलियाँ थीं, पर वैदिक भाषा के सामने इनमें से किसी को कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं मिली। वैदिकोत्तर अर्थात् संहितोत्तर काल में ब्राह्मण ग्रंथों का युग आया। पंजाब और मध्यदेश के दक्षिण और पूर्व में आर्यभाषा का फैलाव हुआ। स्वाभाविक परिवर्तन-धर्म के अनुसार, तथा हजारों और लाखों अनार्य भाषियों के आर्य-भाषा को ग्रहण करने के कारण वैदिक तथा ब्राह्मण युग की आर्य भाषा भी विशुद्ध नहीं रही, प्राकृतों का उद्भव होने लगा। भगवान् बुद्ध के आविर्भाव के पूर्व ही आदिम या प्राचीन आर्यभाषा प्राकृत या मध्यकालीन अवस्था में पहुँच गई। इसी समय आर्यों के गुरुकुलों में लौकिक साहित्यभाषा संस्कृत की प्रारंभिक प्रतिष्ठा हुई। पाणिनि आदि बड़े-बड़े व्याकरणकार ऋषियों ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका व्याकरण लिखकर इसे चिरकाल के लिए परिमार्जित किया। प्राकृतों के उद्भव होने के समय से ही, लौकिक संस्कृत प्राचीन भारत के जनगण को—विशेषतः ब्राह्मण शासित समाज की—भाषा हुई। मुहाविरे में विभिन्न प्रान्तों की आदि आर्य भाषाओं की प्रगति पृथक् पृथक् रीति से होने लगी। इसी से पृथक् पृथक् प्रान्तीय प्राकृतों की उत्पत्ति हुई। जिस संस्कृत भाषा को सारे हिन्दू संसार ने अपनी धार्मिक और संस्कृति सम्बन्धी भाषा मान लिया उसका आधार उदीच्य अर्थात् पंजाब और मध्यदेश की लौकिक बोली ही थी। भगवान् बुद्धदेव के पहले, ब्राह्मण ग्रंथों के युग में, ब्राह्मण सभ्यता का केन्द्र मध्यदेश अर्थात् कुरुपंचाल देश और उदीच्य अर्थात् मद्र, केकय, गांधार आदि देश थे। उन प्रान्तों में तथा अंतर्वेद की ब्राह्मणादिशिष्ट जातियों में व्यवहृत भाषा यह संस्कृत थी। अस्तु, संस्कृत आर्य सभ्यता का वाहन या मध्यम स्वरूप होकर इस सभ्यता के साथ तमाम भारतवर्ष में फैली, और भारतवर्ष के बाहर बृहत्तर भारत में—बर्मा, श्याम, कम्बोज, चंपा, मलयद्वीप, यवद्वीप, बलिद्वीप आदि में भी—इसका प्रसार पहुँचा। भारतवर्ष के इतिहास के प्रारम्भ में आर्यावर्त—मध्यप्रदेश अर्थात् हिन्दुस्तान के पछाँह की बोली संस्कृत के रूप में सारे भारतवर्ष में गृहीत हो गई। जहाँ तक पता चलता है, संस्कृत का मौखिक रूप सिर्फ पंजाब और अंतर्वेद में ही प्रचलित था।

कुछ दिनों बाद अन्यान्य प्रान्तों में जब आर्य भाषा फैली, तब इसकी अवस्था बदल गई थी। संस्कृत प्राकृत हो गई थी।

सारे उत्तर भारत में जिस समय प्राकृत या प्रादेशिक बोलियाँ प्रचलित हुईं, तब प्रान्तीय प्राकृतों में अन्तर्वेद विशेषतया ब्रह्मर्षिदेश या कुरुपंचाल की प्राकृत शौरसेनी सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी। संस्कृत नाटकों में श्रेष्ठ सद्वंशज पात्र बात करने में इस शौरसेनी ही का प्रयोग करते थे। इससे यह साबित होता है कि प्राकृत युग में शौरसेनी का स्थान क्या था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गाने में महाराष्ट्रीय प्राकृत का प्रयोग था, यह ठीक है; इसका कारण इतना ही मालूम होता है कि महाराष्ट्रीय प्राकृत में स्वर बहुत होने से वह शौरसेनी से श्रुति-मधुर मानी जाती थी; और गाने में इसीलिए शायद लोग इसे ज्यादा पसंद करते थे।

महाराज अशोक के लेख में मुख्यतः तीन प्रकार की प्राकृत मिली है—उदीच्य; लाट-देशीय और प्राच्य। परंतु मध्यदेशीय प्राकृत नहीं मिली—मध्यदेश में टोपरा और मेरठ के दो खंभों पर जो लेख हैं, उनमें पूरब की बोली ही व्यवहार की गई है। महाराज अशोक पूरब के रहने-वाले थे, शायद इसी से उनकी प्रान्तिक बोली मध्यप्रदेश में भी प्रयुक्त हुई। भारत के इतिहास में सिर्फ एक ही बार पूरब की बोली ने पछाँह पर चढ़ाई की।

परंतु महाराज अशोक के समय में एक नई साहित्यिक भाषा भारत से सिंहल में फैली—यह पालि भाषा है। पहले पंडित लोग सोचते थे कि पालि की जड़ पूरब में—मगध में—थी, क्योंकि इसका एक और नाम है 'मागधी'। अब पालि के संबंध में पंडितों की राय बदल रही है। अब विचार है कि पालि पूरब की नहीं, बल्कि पछाँह की—मध्यदेश की ही बोली थी—शौरसेनी प्राकृत का एक प्राचीन रूप भेद थी। बुद्धदेव के उपदेश पूरब की बोली प्राच्य प्राकृत में, जो कोसल, काशी और मगध में प्रचलित थी, उसी में प्रकट हुए। फिर इस प्राच्य प्राकृत से और दूसरी प्राकृतों में अनुवादित किये गए। मथुरा और उज्जैन की भाषा में जो अनुवाद हुआ, उसका नाम दिया गया 'पालि'। सिंहल में जब इस अनुवाद का प्रचार हुआ, तब वहाँ के लोग भूल से इसे 'मागधी' के नाम से पुकारने लगे, क्योंकि पालि बुद्ध-वचन थी, और भगवान् बुद्ध ने मगध में अपने जीवन का बहुत अंग बिताया था, इससे बुद्ध-वचन या पालि से मगध का संबंध सोचकर 'मागधी' नाम रखा गया। सिंहल से ब्रह्मदेश, श्याम और कम्बोज में यह पालि भाषा फैली। इस प्रकार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो हज़ार वर्ष के पहले मध्यदेश की भाषा—जिसे हम हिन्दी का एक प्राचीन रूप कह सकते हैं—बहिर्भारत के बौद्धों की धार्मिक भाषा बनी। यह बात इस युग के पहले की है। ईसवी सदी के प्रारम्भ से संस्कृत के बाद उत्तर में शौरसेनी भद्र समाज में बोली जाती थी। इसका प्रभाव दूसरी प्राकृत बोलियों पर भी पड़ा। भाषा तत्त्व के विचार से ग्रियर्सन आदि पंडितों ने राजस्थान, गुजरात, पंजाब और अवध की प्राकृत बोलियों पर शौरसेनी का विशेष प्रभाव स्वीकार किया है। राजस्थानी, गुजराती, पंजाबी और अवधी के विकास में शौरसेनी ने बहुत काम किया। सिर्फ प्रान्तिक प्राकृतों से इन बोलियों की उत्पत्ति नहीं हुई, ऐसा विचार होता है।

ईसवी प्रथम सहस्र वर्षों के बीच में प्राचीन भारतवर्ष में एक नवीन राष्ट्रभाषा या साहित्यिक भाषा का उद्भव हुआ। यह अपभ्रंश भाषा थी, जो शौरसेनी प्राकृत का एक रूप थी। अपभ्रंश भाषा—यह शौरसेनी अपभ्रंश—पंजाब से बंगाल तक और नेपाल से महाराष्ट्र तक साधारण शिष्ट भाषा और साहित्यिक भाषा बनी। लगभग ईसवी सन् ८०० से १३ या १४ सौ तक शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार काल था। गुजरात और राजपूताने के जैनों के द्वारा इसमें एक बड़ा साहित्य बना। बंगाल के प्राचीन बौद्ध सिद्धाचार्य गण इसमें पद रचते थे, जो अंत में भोट भाषा (तिब्बती) में उलथा किये गये। इसके अलावा भारत में इस अपभ्रंश में एक विराट् लोक-साहित्य बना, जिसके टूटे-फूटे पद और गीत आदि हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण और प्राकृत पिंगल नामक छन्द-ग्रंथ में पाए जाते हैं। शौरसेनी अपभ्रंश की प्रतिष्ठा के कई कारण थे। ईस्वी प्रथम सहस्रक की अंतिम सदियों के राजपूत राजाओं की सभा में यह भाषा बोली जाती थी, क्योंकि यह भाषा उसी समय मध्यप्रदेश और उससे संलग्न प्रान्तों में आधुनिक पछाँह में—साधारणतः घरेलू भाषा के रूप में इस्तेमाल होती थी। द्वितीय कारण यह है कि इस समय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोरखपंथी आदि अनेक हिन्दू संप्रदाय के गुरु लोग जो पंजाब और हिन्दुस्तान से नवजाग्रत हिन्दूधर्म की वाणी लेकर भारत के अन्य प्रदेश में गए, वे भी इसी भाषा को बोलते थे, इसमें पद आदि बनाते थे और इसी में उपदेश देते थे। उसी समय उत्तर-भारत के कनौजिया आदि ब्राह्मण बंगाल आदि प्रदेश में ब्राह्मण आचार और संस्कृत ले उपनिविष्ट हुए। इन सब कारणों से, आज से लगभग एक हजार साल आगे, जिसे हम हिन्दी का पूर्व रूप कह सकते हैं, वही शौरसेनी अपभ्रंश, ठीक उसी प्रकार जैसे आजकल हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है, एक राष्ट्रीय, साहित्यिक तथा धार्मिक भाषा हुई थी।

संस्कृत, प्राकृत और भाषा—भारत की आर्य भाषा के क्रमविकास में ये तीन पीढ़ियाँ हैं। संस्कृत आदि युग की धर्म, राष्ट्र तथा साहित्य की भाषा थी। यह संस्कृत भाषा पंजाब और मध्यप्रदेश की प्राचीन बोली के आधार पर बनी। संस्कृत से प्राकृत का उद्भव हुआ, प्राकृतों में पालि भी है। पालि भाषा मगध से संबंध नहीं रखती, परंतु शूरसेन या मथुरा और उज्जैन से। यह मूलतः मध्यदेश ही की भाषा है, ऐसे सिद्धांत पर आजकल पंडित लोग पहुँचे हैं। पालि के बाद मध्यदेश की शौरसेनी भाषा थी। प्राकृत का अंतिम रूप था अपभ्रंश। अपभ्रंश बदलती हुई हिन्दी आदि भाषाओं में परिणत हो गई। जिस समय शौरसेनी अपभ्रंश परिवर्तित होकर ब्रज भाषा (हिन्दी) बन रही थी, उसी समय हिन्दुस्तान में तुर्क और ईरानी मुसलमानी आये। पहले पंजाब में इनका अधिकार हुआ, और पंजाब ही में करीब सौ वर्ष उन लोगों ने राज किया। पंजाब में कुछ लोग मुसलमान बने। फिर पंजाब से खास हिन्दुस्तान पर मुसलमानों की चढ़ाई हुई और उनकी फतेह हुई। मुसलमान देहली में आए, और उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। अफगानिस्तान के तुर्की और फारसी बोलनेवाले विदेशी मुसलमान तो थे ही, पर पंजाबी बोलनेवाले देशी मुसलमान भी इधर ज्यादा करके आने लगे। पंजाब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की बोलियों का मूल शौरसेनी से कुछ अलग प्राकृत थी, परन्तु शौरसेनी का प्रभाव इन पर बहुत पड़ा। पंजाब में राज करनेवाले विदेशी मुसलमान थोड़ी बहुत पंजाबी जानते थे। देहली के आसपास कई कड़ी बोलियाँ प्रचलित थीं, और उनका पंजाबी से कुछ संयोग था। हिन्दुस्तान में आकर पंजाबी पर जाटू (बांगरू) मेवाड़ी, व्रज भाषा प्रभृति बोलियों का असर कुछ तो अवश्य पड़ा। प्राचीन पंजाबी का आदिम रूप देहली में कुछ बदल गया। भाषा के व्याकरण में बहुत सा पंजाबीपन रह गया, परन्तु स्थानीय बोली के व्याकरण के अनुसार भी रूप आ गए। भाषा को हिन्दी या हिन्दुस्तानी नाम मिला। शब्द विशेष करके व्रज आदि प्रान्तिक भाषाओं से लिए जाने लगे। इस प्रकार उदीच्य और मध्यप्रदेश अर्थात् पंजाब और हिन्दुस्तान के पश्चिमी प्रान्त की भाषाएं मिलकर एक नवीन रूप में प्रकट हुई। साधारणतः हिन्दुस्तानी मुगलों की बदौलत सारे भारतवर्ष में फैल गई। व्रज भाषा आदि प्राचीन और साहित्यिक बोलियों के साथ-साथ यह भाषा हिन्दू-साहित्य में भी व्यवहृत होने लगी। अंत में इस कलकत्ते शहर में अंगरेज पंडितों की चेष्टा से गद्य साहित्य की भाषा खड़ी बोली हिन्दी ही हो गई। इस समय हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है—उत्तर भारत की संस्कृतिमूलक प्रगति का एक प्रधान वाहन या साधन या माध्यम बनकर इस भाषा की जय सर्वत्र हो रही है।

ऐतिहासिक आलोचना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उदीच्य और मध्यदेश—पंजाब और पछाँह—विशेष करके मध्यदेश में—भारतीय आर्य-सभ्यता ने अपनी विशेषताएं प्राप्त कीं, और इन प्रान्तों की भाषा युग-युग में सर्वजनगृहीत और सर्वजन-समादृत हुई। संस्कृत, पाली, शौरसेनी प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश, व्रजभाषा; फिर शौरसेनी प्रभावयुक्त पंजाब की बोली, हिन्दुस्तान में आकर शौरसेनी की दुहिता स्थानीय व्रज आदि बोलियों से मिल-जुलकर हिन्दुस्तानी या हिंदी बनी। इस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गोरखपंथी आदि अनेक हिन्दू संप्रदाय के गुरु लोग जो पंजाब और हिन्दुस्तान से नवजाग्रत हिन्दूधर्म की वाणी लेकर भारत के अन्य प्रदेश में गए, वे भी इसी भाषा को बोलते थे, इसमें पद आदि बनाते थे और इसी में उपदेश देते थे। उसी समय उत्तर-भारत के कनौजिया आदि ब्राह्मण बंगाल आदि प्रदेश में ब्राह्मण आचार और संस्कृत ले उपनिविष्ट हुए। इन सब कारणों से, आज से लगभग एक हजार साल आगे, जिसे हम हिन्दी का पूर्व रूप कह सकते हैं, वही शौरसेनी अपभ्रंश, ठीक उसी प्रकार जैसे आजकल हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी है, एक राष्ट्रीय, साहित्यिक तथा धार्मिक भाषा हुई थी।

संस्कृत, प्राकृत और भाषा—भारत की आर्य भाषा के क्रमविकास में ये तीन पीढ़ियाँ हैं। संस्कृत आदि युग की धर्म, राष्ट्र तथा साहित्य की भाषा थी। यह संस्कृत भाषा पंजाब और मध्यप्रदेश की प्राचीन बोली के आधार पर बनी। संस्कृत से प्राकृत का उद्भव हुआ, प्राकृतों में पालि भी है। पालि भाषा मगध से संबंध नहीं रखती, परंतु शूरसेन या मथुरा और उज्जैन से। यह मूलतः मध्यदेश ही की भाषा है, ऐसे सिद्धांत पर आजकल पंडित लोग पहुँचे हैं। पालि के बाद मध्यदेश की शौरसेनी भाषा थी। प्राकृत का अंतिम रूप था अपभ्रंश। अपभ्रंश बदलती हुई हिन्दी आदि भाषाओं में परिणत हो गई। जिस समय शौरसेनी अपभ्रंश परिवर्तित होकर व्रज भाषा (हिन्दी) बन रही थी, उसी समय हिन्दुस्तान में तुर्क और ईरानी मुसलमानी आये। पहले पंजाब में इनका अधिकार हुआ, और पंजाब ही में करीब सौ वर्ष उन लोगों ने राज किया। पंजाब में कुछ लोग मुसलमान बने। फिर पंजाब से खास हिन्दुस्तान पर मुसलमानों की चढ़ाई हुई और उनकी फतेह हुई। मुसलमान देहली में आए, और उन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। अफगानिस्तान के तुर्की और फारसी बोलनेवाले विदेशी मुसलमान तो थे ही, पर पंजाबी बोलनेवाले देशी मुसलमान भी इधर ज्यादा करके आने लगे। पंजाब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की बोलियों का मूल शौरसेनी से कुछ अलग प्राकृत थी, परन्तु शौरसेनी का प्रभाव इन पर बहुत पड़ा। पंजाब में राज करनेवाले विदेशी मुसलमान थोड़ी बहुत पंजाबी जानते थे। देहली के आसपास कई कड़ी बोलियाँ प्रचलित थीं, और उनका पंजाबी से कुछ संयोग था। हिन्दुस्तान में आकर पंजाबी पर जाटू (बांगरू) मेवाड़ी, व्रज भाषा प्रभृति बोलियों का असर कुछ तो अवश्य पड़ा। प्राचीन पंजाबी का आदिम रूप देहली में कुछ बदल गया। भाषा के व्याकरण में बहुत सा पंजाबीपन रह गया, परन्तु स्थानीय बोली के व्याकरण के अनुसार भी रूप आ गए। भाषा को हिन्दी या हिन्दुस्तानी नाम मिला। शब्द विशेष करके व्रज आदि प्रान्तिक भाषाओं से लिए जाने लगे। इस प्रकार उदीच्य और मध्यप्रदेश अर्थात् पंजाब और हिन्दुस्तान के पश्चिमी प्रान्त की भाषाएं मिलकर एक नवीन रूप में प्रकट हुईं। साधारणतः हिन्दुस्तानी मुगलों की बदौलत सारे भारतवर्ष में फैल गई। व्रज भाषा आदि प्राचीन और साहित्यिक बोलियों के साथ-साथ यह भाषा हिन्दू-साहित्य में भी व्यवहृत होने लगी। अंत में इस कलकत्ते शहर में अंगरेज पंडितों की चेष्टा से गद्य साहित्य की भाषा खड़ी बोली हिन्दी ही हो गई। इस समय हिन्दी की प्रतिष्ठा बढ़ती जाती है—उत्तर भारत की संस्कृतिमूलक प्रगति का एक प्रधान वाहन या साधन या माध्यम बनकर इस भाषा की जय सर्वत्र हो रही है।

ऐतिहासिक आलोचना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उदीच्य और मध्यदेश—पंजाब और पछाँह--विशेष करके मध्यदेश में--भारतीय आर्य-सभ्यता ने अपनी विशेषताएं प्राप्त कीं, और इन प्रान्तों की भाषा युग-युग में सर्वजनगृहीत और सर्वजन-समादृत हुई। संस्कृत, पाली, शौरसेनी प्राकृत, शौरसेनी अपभ्रंश, व्रजभाषा; फिर शौरसेनी प्रभावयुक्त पंजाब की बोली, हिन्दुस्तान में आकर शौरसेनी की दुहिता स्थानीय व्रज आदि बोलियों से मिल-जुलकर हिन्दुस्तानी या हिंदी बनी। इस

११

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रकार हिंदी को वर्तमान मर्यादा मिली। मध्यदेश की भाषा की प्रतिष्ठा भारत के इतिहास की एक प्रधान और साधारण बात है। काल की गति से मूल आर्यभाषा ने संस्कृत, पाली, शौरसेनी अपभ्रंश इत्यादि रूप बदलते-बदलते आख़िर हिंदी का रूप ग्रहण किया।

प्राचीन काल में भारतीय-सभ्यता-विशिष्ट वस्तुएँ यानी हिंदू-सभ्यता में जो कुछ श्रेष्ठ वस्तुएँ हैं उन सबका उद्भव आर्यावर्त ही में हुआ। मध्य काल में जब मुसलमान सभ्यता आई, तब हिन्दू सभ्यता से उसका मिश्रण आर्यावर्त में हुआ। आर्यावर्त की भाषा हिंदी में अरबी, फारसी, और तुर्की क़ा शब्दभंडार इस मिश्रण का फल है। इस मिश्रण से भारतीय सभ्यता ने नवीन रूप पाया।

प्राचीन काल के धर्म राष्ट्र तथा साहित्य की भाषाओं के साथ हिंदी का संबंध विचार करने से हिंदी का इतना प्रचार स्वाभाविक ही मालूम होगा। ऐतिहासिक कारण और हिंदी भाषा की नानामुखी कर्मशक्ति के सिवा हिंदी में ऐसे कुछ गुण हैं जिनसे यह एक श्रेष्ठ भाषा कही जा सकती है। हिंदी जिनकी मातृभाषा है, जिन्होंने इस भाषा को अपनाया है, उनकी राय क्या होगी, इसका पता हमें नहीं, पर एक महाराष्ट्रीय मित्र ने अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की कि "हिंदी में जो गुण हैं, उनमें से एक यह है कि हिंदी 'मर्दानी जबान' है।" मैं बंगाली होकर अपने महाराष्ट्रीय मित्र की इस राय का पूरा समर्थन करता हूँ। आधुनिक हिन्दी के ओज गुण के कई कारणों में इसकी संयुक्त व्यंजन-बाहुल्य एक प्रधान कारण है। 'उनका' 'देखके' 'चलता' 'हाथ में' 'मन में' इत्यादि साधारण पद में संयुक्त वर्ण से शब्दोच्चारण में ज़ोर आ जाता है—शब्द पर धक्का सा देकर संयुक्त ध्वनि इसे जाग्रत और उद्यमपूर्ण बना देती है। मेरी मातृभाषा के पदसमूह इतने ज़ोरदार नहीं होते। विशेषकर साहित्यिक बंगला में स्वरबाहुल्य के कारण मिठास आती है, पर वैसा ज़ोर नहीं रहता, जैसे 'उहार' या 'ओर', 'देखिया' या 'देखे',

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'चलिते छे' (चालू घरेलू बंगला में संयुक्त व्यंजन आ गया है—'चल् छे'), 'हाते', 'मने' इत्यादि। पुरानी हिंदी में हलंत उच्चारण बहुत ही कम होता था, सब स्वर वर्ण उच्चारण किये जाते थे। इससे ओजशक्ति कुछ कम होती थी। पर स्वरवर्ण के पूर्ण उच्चारण होने के कारण एक मनोहर मधुरता से भरा हुआ गाम्भीर्य आ जाता था। विशेषतः ध्रुपद आदि गाने में तानसेन प्रमुख संगीतकारों की वाणी से इस बात का प्रमाण मिलेगा। हिंदी उच्चारण में और एक विशेष गुण है। इसमें सब ध्वनि प्रयत्न के साथ सुस्पष्ट उच्चारण की जाती है। बंगला आदि दूसरी भाषाओं में बहुधा अस्पष्ट उच्चारण की कुरीति चली है। इसी से 'नाइहर' या 'नैहर', 'बहनोई', 'अखाड़ा', 'बनवाई', 'कन्हैया', 'रखवाल', 'मौसी', 'सौंप' आदि शब्द के बंगला प्रतिरूप बन गये 'नायेर', 'बोनाइ', 'आखड़ा', 'बानी', 'कानाइ', 'राखाल', 'मासी', 'संप' इत्यादि।

उच्चारण के अलावा हिंदी की शब्द-संपत्ति इसका एक और गुण है। प्राकृत से प्राप्त अनगिने शब्द हिंदी में विद्यमान हैं, मानो इतने प्राकृतज शब्दों का संरक्षण दूसरी किसी आर्यभाषा में हो ही नहीं सका। देहात में सहस्रों उपयोगी प्राकृत शब्द मिल सकते हैं, जो साहित्य में लाने के लायक हैं। प्राकृतज शब्द छोड़िये, तो देखिये हिन्दी संस्कृत के समग्र अभिधान की अधिकारिणी बनी है। संस्कृत शब्दों को हम सम्भाव्य हिन्दी की बदौलत फारसी-अरबी-अभिधान से भी हिंदी अपना खजाना अदा कर सकती। प्राकृतज या विशुद्ध हिंदी, संस्कृत और फारसी—इन तीन प्रकार के शब्दों की मिठास या मिष्टता या शीरीनी हिंदी की शक्ति तथा गौरव बढ़ा रही है। संस्कृत फारसी के शब्द भंडार हिंदी के लिए खुले रहने से हिंदी किसी की परवाह नहीं करती। सामाजिक और गृहस्थ जीवन की सब बातें केवक प्राकृतज शब्दों से ही हिंदी में अच्छी तरह से बोली जा सकती हैं। यह सिद्धान्त 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' और 'अधखिला फूल' में श्री हरिऔध जी ने प्रमाणित किया है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिंदी के इतने गुण होते हुए भी, इसे मातृभाषा रूप में लाभ करने का जन्म सौभाग्य जिसको नहीं मिला, उसके लिए हिन्दी का व्याकरण कठिनाइयों से भरा हुआ होता है। एक तो मुश्किल है हिंदी का लिंग-विचार। सुनते हैं इसमें श्रेष्ठ हिंदी विद्वानों का भी एक मत नहीं होता। हिंदी की इस स्वतन्त्रता ने इस विषय में भाषा को अराजकता में डाल दिया है। 'भात' पुंलिंग शब्द है और 'दाल' स्त्रीलिंग, 'पुस्तक' स्त्रीलिंग और 'ग्रन्थ' और 'कागज' पुंलिंग। 'अग्नि, मृत्यु, वायु'—इन सबको इस कलयुग में हिंदी में स्त्रीत्व की प्राप्ति हुई है। हिंदी अच्छी तरह से अगर सीखना चाहते हैं, तो संस्कृत व्याकरण को भूल जाइये। इसके ऊपर शब्द रूप में मौलिक रूप और सामान्य रूप, और 'का' और 'के' का दुरतिक्रमणीय हंगामा। लिंग विभ्राट और शब्दरूप की कठिनाई से बेचारे हिंदी-शिक्षार्थी जब किंकर्तव्य-विमूढ़ हो जाते हैं, तब क्रियापद के कर्मणि और भावे-प्रयोग आकर उसे खतम कर देते हैं।

हिंदी के व्याकरण को कुछ सहज सा और तर्कशास्त्र सम्मत बनाने की आवश्यकता है। हमारा सिद्धान्त यह है कि भविष्य काल का राजा King Demos या 'गण महाराज' इतनी सूक्ष्मता नहीं मानेगा। 'इनकलाब' जब सचमुच ज़िन्दा होगा और मजदूर तथा किसान जब भाषा के सुधार का काम खुद ही अपने हाथ में ले लेंगे, तब चालू और बाज़ारू, गंवार और देहाती तथा खड़ी बोली और पड़ी बोली सब एकाकार होकर एक नई गणभाषा बन जायगी।

गणतन्त्र के अनुकूल हिंदी का एक रूप अब भी विद्यमान है। इस कलकत्ता महानगरी में नई शैली के हिंदी गद्य साहित्य का पहले प्रचार हुआ, पर यहाँ अनपढ़ जो लोग हिंदी बोलते हैं, उसे हिंदी के गण-तान्त्रिक रूप के सिवा क्या कहूँ? कलकतिया बंगाली दो जबानें जानते हैं; एक अपनी मादरी ज़बान बंगला, और दूसरे कलकत्ते की बाज़ारू हिंदी। बचपन से अपनी मातृ-भाषा के साथ-साथ हमें इसका व्यवहार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करना पड़ता है। मैं इस टूटी-फूटी हिंदी के स्वरूप की कुछ आलोचना किसी और सभा में कर चुका हूँ! इस स्वरूप की मौलिक विशेषता यह है कि व्याकरण के नियम, शब्द धातु आदि के रूप, प्रत्यय प्रभृति जितने कम व्यवहार किये जा सकें सिर्फ उतने ही व्यवहार में लाये जायँ और स्वतन्त्रतापूर्वक बंगला शब्द और वाक्य रीति का प्रयोग हो। इस कलकतिया हिंदी को कलकत्ते के उड़िया, मैथिल, बिहारी आदि सब प्रवासियों ने अपनाया है, क्योंकि इन्हीं के साथ शुद्ध हिंदी बिगड़कर इसका संगठन हुआ। सीखने से भूलना अधिक कठिन है। इधर शुद्ध हिंदी के साथ परिचय होने का मौका नहीं मिलता, उधर जिन्दगी-भर बाज़ारू हिंदी के सिवा दिन का काम नहीं चलता;—हम करें क्या?

हिंदी की उत्पत्ति और प्रसार तथा इसके प्रादेशिक रूप आदि विषयों पर गवेषणात्मक विराट् ग्रंथ लिखा जा सकता है। मैं इस बारे में और कुछ कहना नहीं चाहता। अन्त में एक बात कहकर इसे समाप्त करूँगा।

जिसकी शक्ति और जिसका सौभाग्य हो उसे नम्र होना चाहिए। हिंदी भाषियों के उद्यम और उनकी कर्मशीलता ही नहीं बल्कि उनकी नागरिकता और सौजन्य, उनकी संस्कृति और मानसिक उत्कर्ष हिंदी-प्रचार के प्रबल कारणों में हैं। भारत के लोगों ने हिन्दी को 'राष्ट्रभाषा' मान लिया है; बंगला, मराठी, गुजराती, पंजाबी, तामिल इत्यादि घरेलू भाषा या प्रादेशिक भाषा हो सकती है, पर एकता-विधायिनी भाषा और भारत के संयुक्त राष्ट्र की माध्यम हिन्दी ही हो सकती है, इसे आज अधिकांश लोग मानते हैं। शुद्ध हिंदी बोलना सहज नहीं, रातोंरात शुद्ध हिन्दी सीखना भी कठिन है। बहुत से लोग टूटी-फूटी बोलने में शरमाते हैं। अशक्यता हेतु यदि कोई किसी राष्ट्र या धर्म संबंधिनी सभा में हिन्दी में व्याख्या दे सके, पर हिन्दी से अपना प्रेम प्रकाश करे तो उससे धैर्य के साथ व्यवहार करना उचित होगा, और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह गंगातीर की आर्य सभ्यता के सौजन्य के अनुसार ही है। पर ऐसी अवस्था में 'हिन्दी' पुकार कर बेचारे को यदि तंग किया जाय, और उसे अंग्रेजी में या अन्य किसी प्रान्तीय भाषा में बोलने नहीं दिया जाय तो वह हिन्दी के प्रसार के अनुकूल नहीं बल्कि विपरीत होगा। हमें आत्म-परीक्षा करनी चाहिए। अनजान से Linguistic Imperialism या भाषागत साम्राज्यवाद के पुरोहित हम न बनें—जुल्म या बलात्कार से हिन्दी प्रचार की चेष्टा नहीं होनी चाहिए।

खैर, हिंदी के जो गुण और कठिनाइयाँ हों, सो हों; पर यह सबको मानना पड़ेगा कि दुनिया के अव्वल दर्जे की अन्तर्जातीय भाषाओं में हिंदी का स्थान है। अंग्रेजी, उत्तर चीनी, जर्मन, रूस, स्पेनिश, फरांसी, अरबी, फारसी, मालय आदि भाषाओं में हिंदी का नाम करना चाहिए। संख्या के विचार से अंग्रेजी और उत्तर चीनी के नीचे हिंदी का स्थान है; श्रुति माधुर्य, जोर, कार्यशक्ति आदि में हिंदी एक अनोखी भाषा है। ऐसी भाषा हमारा गौरव स्थल है।

मैं हिंदी से बड़ा प्रेम रखता हूँ। यूरोप-प्रवास के समय फ्रान्स या जर्मनी में कहीं किसी भारतीय छात्र को दूर से मैं देखता, तो उससे मिलने जाता और सबसे पहिले हिंदी में उससे प्रश्न करता—क्या भाई, हिन्दुस्तानी हो ? जिससे बात करता, अगर वह उत्तर भारतीय होता, तो हिंदी ही में मुझसे बात करता, और यदि वह दक्षिणी होता, तो भाव से मेरी बात समझ लेता और यदि हिंदी नहीं जानता तो अंग्रेजी में माफी माँगता। अपने मित्र और छात्रों में मैं हिंदी भाषा और साहित्य का गुण-गान किया करता हूँ। कबीर जी के पद और तुलसी जी की रामायण को तो मैंने नित्य पाठ्य-ग्रन्थ सा बना रखा है। बहुत दिनों से इन दोनों विश्व-साहित्य के मुकुट-मणियों का पाठ किया करता हूँ।

बंगाल में हिंदी का प्रचार हो, बंगाली सज्जन भी हिंदी भाषा और साहित्य से परिचय प्राप्त कर पार्थिव और आध्यात्मिक लाभ उठावें, यह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैं सर्वान्तःकरण से चाहता हूँ। बंगाल की राजधानी कलकत्ते से हिंदी का संयोग खूब घनिष्ठ है। यदि कलकत्ते को हिंदी की आधुनिक गद्य-शैली की जन्मभूमि कहा जाय, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। हमारी बंगाली जाति के लिए यह बड़े अफ़सोस की बात है कि हिंदी ऐसी भाषा से वे यथोचित शक्ति और आनन्द को प्राप्त नहीं कर सके। इसके कारण निर्धारण होने चाहिए। रोग का निदान और कारण मिलने से इलाज ठीक हो सकता है। एक कारण मेरे विचार में तो यह है कि इधर हिंदी के उच्च शिक्षित सज्जनों का बहुत कम शुभागमन होता है। बिहार और संयुक्त प्रान्त के पूरब के जो आम लोग रोजी के लिए इधर आते हैं, वे स्वयं शुद्ध हिंदी नहीं बोल सकते,—उनकी व्यवहृत खिचड़ी बोली साहित्यिक और शुद्ध हिंदी के प्रचार का प्रधान अन्तराय होता है।

पर अवसर अब शुभ है। बंगाल की शिक्षित जनता में हिंदी का आदर होने के लिए कांग्रेस से कुछ मदद मिल सकती है। कालेजों से भी बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। निर्दिष्ट हिंदी परीक्षा में उत्तीर्ण होने से यदि दस-बीस आर्थिक पारितोषिक कालेजों के लड़कों को दिए जायँ, तो बहुत से नवयुवक इस ओर आकृष्ट होंगे। हिंदी प्रचार के सब साधन विशेष समिति में विचार किए जा सकते हैं। बंगाल में हिंदी प्रचार के लिए सम्मेलन की ओर से जो प्रयत्न किया जाय, उसका मैं पूरी तौर से समर्थन करूँगा। हिंदी-साहित्य सम्मेलन ने इस विषय में जो शुभ कामना प्रकट की, उसके लिए मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकाश करता हूँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी की उत्पत्ति

सप्रयोजन साहित्य को आधुधिक आलोचक 'प्रयुक्त साहित्य' कहते हैं। कुछ संत महात्मा और प्रचारक 'प्रयुक्त साहित्य' को ही ऊँचा साहित्य मानते हैं। यद्यपि तटस्थ और विदग्ध हृदय शुद्ध साहित्य को ही महत्त्व देता है पर प्रयुक्त और सप्रयोजन साहित्य का उपकार भी न्यून नहीं होता।

यह निबन्ध प्रयुक्त साहित्य के अन्तर्गत है। इसमें भाषा विज्ञान के यशस्वी लेखक डा० सुनीति कुमार चटर्जी ने हिंदी भाषा का इतिहास लिख कर उसके राष्ट्रभाषा होने के दावे को स्वतःसिद्ध माना है। अतः ज्ञातव्य बातें तो इसमें आदि से अंत तक भरी पड़ी हैं पर देखना है इसकी भाषा और शैली को। जिस गुण के कारण यह लेख निबन्ध माना गया है। जैसी हिंदी 'राष्ट्रभाषा' हो सकती है वैसी ही भाषा इसकी है। अहिंदी प्रांत के विद्वान् ऐसी ही भाषा में साहित्यिक व्यवहार चला सकते हैं। बाज़ारू काम के लिये कामचलाऊ भाषा आपसे आप बना-बिगड़ा करती है पर वह राष्ट्रभाषा नहीं कही जाती। अन्त में विद्वान् लेखक ने यह भी बता दिया है कि जब समय आवेगा तब खड़ी, पड़ी, बाज़ारू, गवारू आदि सभी प्रकार की भाषाएँ मिलकर एकाकार हो जाएँगी। शैली इसकी बोधानुग और यत्र तत्र यत्न सिद्ध लाक्षणिक भी है। पढ़ने में मन लगता है। विद्यालयों के साधारण विद्यार्थी को ऐसी ही सौम्य और शास्त्रीय शैली का अनुकरण करना चाहिए।

साहित्यिक लेख न होने से इनमें आत्मीय राग का अभाव है। ऐसा निबन्ध विषयप्रधान होता है। उसमें निश्छद्म तथा रागद्वेषरहित बात कही जाती है। पर साथ ही एक बात देखना अत्यावश्यक है। वह है लेखक की प्रामाणिकता। यदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लेखक आप्त और मर्मज्ञ है तो उसके लेख की महत्ता और बढ़ जाती है। इस निबंध के कर्त्ता भाषाविज्ञान के आचार्य और कलकत्ता विश्वविद्यालय के अध्यापक है।

निबंध में स्थायी प्रभाव होना चाहिए। वह भी इसमें है। यद्यपि इस लेख में सामयिक हिंदी का समर्थन है पर इसकी ऐतिहासिक और तार्किक पद्धति ऐसी उपादेय है कि यह विवेचन भावी विद्यार्थियों के लिए भी महत्त्व का होगा।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिंदी और हिंदुस्तानी ❀

आज इस विज्ञ और कर्मकुशल समाज के बीच जो अपनी भाषा और उसमें साहित्य की गति-विधि का निरीक्षण करके दोनों का मार्ग स्वच्छ और परिष्कृत करने के लिए इस पुण्य-भूमि पर एकत्र हैं, मेरा हृदय एक अपूर्व आनन्द का अनुभव भी करता है और रह रह कर संकोच से दबता भी है। संकोच का कारण है—जो स्थान मुझे यहाँ दिया गया है उससे यही प्रकट होता है कि आप लोग मुझसे अपने पवित्र प्रयत्न और शुभ अनुष्ठान में कुछ सहायता पहुँचने की आशा रखते हैं। पर अपनी शक्ति और योग्यता पर दृष्टि रखते हुए उस आशा के किसी अंश की भी पूर्त्ति की संभावना मुझे नहीं दिखाई पड़ रही है। इस विचित्र परिस्थिति में मुझे संतोष इसी बात का है कि मैं उपहास का पात्र होकर भी ऐसे विद्वानों और कर्मवीरों के संसर्ग से बहुत कुछ ज्ञान, बहुत कुछ उत्साह प्राप्त करूँगा।

हम सब लोग यहाँ यह समझने के लिए एकत्र हैं कि हमारा साहित्य किस दशा में है, उसमें किन किन बातों का अभाव है, उसकी कौन-कौन प्रवृत्तियाँ उत्कर्ष की ओर ले जानेवाली हैं और कौन कौन अपकर्ष की ओर तथा वर्त्तमान समय में वह किस रूप में हमारे जीवन को सरस सबल और समृद्ध करने में सहायक हो सकता है।

साहित्य किसी जाति की रक्षित वाणी की वह अखंड परंपरा है जो उसके जीवन के स्वतंत्र स्वरूप की रक्षा करती हुई जगत् की गति

❀ फैजाबाद के प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन में पठित भाषण।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के अनुरूप उत्तरोत्तर उसका अन्तर्विकास करती चलती है। उसके भीतर प्राचीन के साथ नवीन का इस मात्रा में और इस सफ़ाई के साथ मेल होता चलता है कि उसके दीर्घ इतिहास में कालगत विभिन्नताओं के रहते हुए भी यहाँ से वहाँ तक एक ही वस्तु के प्रसार की प्रतीति होती है। जब कि साहित्य व्यक्त वाणी या वाग्विभूति का संचित भंडार हैं तब पहले भाषा ही पर ध्यान जाना स्वाभाविक है। व्यक्त वाणी का यह संचय असभ्य जातियों में तो केवल मौखिक रहता है, पर सभ्य जातियों में पुस्तकों के भीतर हिफ़ाज़त के साथ बंद रखा जाता है। मौखिक अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकता, पर पुस्तकस्थ होकर हजारों वर्ष तक चला चलता है।

साहित्य की अखंड दीर्घ परंपरा सभ्यता का लक्षण है। यह परंपरा शब्द की भी होती है और अर्थ की भी। शब्द-परंपरा भाषा को स्वरूप देती है और अर्थ-परंपरा साहित्य का स्वरूप निर्दिष्ट करती है। ये दोनों परंपराएँ अभिन्न होती हैं। इन्हें एक ही परंपरा के दो पक्ष समझिए। किसी देश की शब्द-परंपरा अर्थात् भाषा कुछ काल तक चलकर जो अर्थ-विधान करती है वही उस देश का साहित्य कहलाता है। कुछ काल तक लगातार चलते रहने से शब्द-परंपरा या भाषा को भी एक विशेष स्वरूप प्राप्त हो जाता है और अर्थ-परंपरा या साहित्य को भी। इस प्रकार दोनों के स्वरूपों का सामंजस्य रहता है। इस सामंजस्य में यदि बाधा पड़ी तो साहित्य देश की प्राकृतिक जीवन-धारा से विच्छिन्न हो जायगा और जनता के हृदय का स्पर्श न कर सकेगा। यदि अर्थ-परंपरा का स्वरूप बनाए रखकर शब्द-परंपरा का स्वरूप बदल जायगा तो परिणाम होगा "कोयल का नग़मा" और "महात्माजी के अलफ़ाज़"। यदि शब्द-परंपरा स्थिर रखकर अर्थ-परंपरा या वस्तु-परंपरा बदली जाएगी तो आपके सामने "स्वर्ण अवसर" आएगा, "हृदय के छाले" फूटेंगे और "दुपट्टे फाड़े जाएँगे।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाषा या साहित्य के विशिष्ट स्वरूप प्राप्त करने का अभिप्राय यह नहीं है कि उसमें बाहर से आए हुए नए शब्द और नई नई वस्तुएँ न मिलें। उसमें नए-नए शब्द भी बराबर मिलते जाते हैं और नए-नए अर्थों या वस्तुओं की योजना भी होती जाती है, पर इस मात्रा में और इस ढंग से कि उसका स्वरूप अपनी विशिष्टता बनाए रहता है। हम यह बराबर कह सकते हैं कि वह इस देश का, इस जाति का और इस भाषा का साहित्य है। गंगा एक क्षीण धारा के रूप में गंगोत्तरी से चलती है, मार्ग में न जाने कितने नाले, न जाने कितनी नदियाँ उसमें मिलती जाती हैं, पर सागर-संगम तक वह 'गंगा' ही कहलाती है, उसका 'गंगापन' बना रहता है।

हमारे व्यावहारिक और भावात्मक जीवन से जिस भाषा का संबंध सदा से चला आ रहा है वह पहले चाहे जो कुछ कही जाती रही हो अब हिन्दी कही जाती है। इसका एक-एक शब्द हमारी सत्ता का व्यंजक है, हमारी संस्कृति का संपुट है, हमारी जन्मभूमि का स्मारक है, हमारे हृदय का प्रतिबिम्ब है, हमारी बुद्धि का वैभव है। देश की जिस प्रकृति ने हमारे हृदय में रूप-रंग भरा है उसी ने हमारी भाषा का भी रूप-रंग खड़ा किया है। यहाँ के वन, पर्वत, नदी, नाले, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी सब इसी हमारी बोली में अपना परिचय देते हैं, और अपनी ओर हमें खींचते हैं। इनकी सारी रूप-छटा, सारी भाव-भंगी हमारी भाषा में और हमारे साहित्य में समाई हुई है। यह वही भाषा है जिसकी धारा कभी संस्कृत के रूप में बहती थी, फिर प्राकृत और अपभ्रंश के रूप में और इधर हज़ार वर्ष से इस वर्त्तमान रूप में—जिसे हिंदी कहते हैं—लगातार बहती चली आ रही है। यह वही भाषा है जिसमें सारे उत्तरीय भारत के बीच चन्द और जगनिक ने वीरता की उमंग उठाई; कबीर सूर और तुलसी ने भक्ति की धारा बहाई; बिहारी देव और पद्माकर ने शृंगार-रस की वर्षा की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र. प्रतापनारायण मिश्र ने आधुनिक युग का आभास दिया और आज आप व्यापक दृष्टि फैलाकर सम्पूर्ण मानव जगत् के मेल में लानेवाली भावनाएँ भर रहे हैं। हजारों वर्ष से यह दीर्घ परम्परा अखंड चली आ रही है। ऐसी भव्य परम्परा का गर्व जिसे न हो वह भारतीय नहीं।

हमारा गर्व यह सोचकर और भी बढ़ जाता है कि यह परंपरा इतनी प्रबल और शक्तिशालिनी सिद्ध हुई कि इधर सौ वर्ष से—अर्थात् अँगरेज़ी राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने के पीछे इसे बंद करने के तरह तरह के प्रयत्न कुछ लोगों के द्वारा समय समय पर होते आ रहे हैं, पर यह अपना मार्ग निकालती चली आ रही है। इस विरोध का मूल हमारे उन मुसलमान भाइयों की निर्मूल आशंका है जो अपनी भाषा और अपने साहित्य को विदेशी साँचे में ढालकर अपने लिए अलग रखना चाहते हैं। यदि वे अपनी भाषा और अपने साहित्य की एक अलग परम्परा रखना चाहते हैं तो हमारे लिए यह प्रसन्नता की बात है। इधर अपनी भाषा की छटा, अपने साहित्य की विभूति हमारे सामने रहेगी, उधर उनके साहित्य के चमत्कार से भी हम अपना मनोरंजन करेंगे। यही मौका उन्हें भी रहेगा। मनोरंजन के क्षेत्र एक से दो रहें तो और अच्छी बात है। यही स्थिति मुसलमानी अमलदारी में रही है। दिल्ली और दक्खिन के बादशाह फ़ारसी कविता का भी आनन्द लेते थे और परम्परागत हिन्दी कविता का भी। फ़ारसी के स्थान पर जब उर्दू की शायरी होने लगी तब भी यही बात रही। अनेकरूपता का नाम ही संसार है। सौन्दर्य्य की विभूति अनेक रूपों में प्रकट होती है। सहृदय उन सब में आनन्द का अनुभव करते हैं। अकबर की बात छोड़ दीजिए जो आप कभी कभी हिन्दी में कविता करता था। औरंगज़ेब तक के दरबार में जाकर हिंदी-कवियों का कविता सुनाना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसिद्ध है। रहीम, रसखान, गुलाम नबी इत्यादी का नाम हिंदी के अच्छे कवियों में है।

यहीं तक नहीं अपनी धार्मिक भावनाओं की व्यंजना के लिए भी मुसलमान यहाँ की परम्परागत भाषा को बराबर काम में लाते थे। हमारे हिंदी-काव्य के इतिहास में सूफ़ी कवियों का एक वर्ग ही अलग है, जिसके अन्तर्गत, कुतबन, जायसी, उसमान, नूरमुहम्मद इत्यादी दर्जनों कवि हुए हैं। उन्होंने हमारी ही प्यारी बोली में हमारे काव्यों की पदावली में, जिसमें संस्कृत का पुट बराबर रहता आया है, प्रेम कहनियाँ लिखी हैं।

यह देखना चाहिए कि हमारी भाषा और हमारे साहित्य में वह कौन-सी वस्तु है, जो अब हमारे मुसलमान भाइयों को नापसन्द है। इधर उनकी ओर से जो लेख आदि निकल रहे हैं उनसे पता चलता है कि भाषा में न पसंद आनेवाली वस्तु हैं संस्कृत के शब्द और साहित्य में भारतीय दृश्य, भारतीय रीति-नीति और भारतीय इतिहास-पुराणों के प्रसंग। इस सम्बन्ध में हमारा नम्र निवेदन यह है कि जिस देश का साहित्य होगा उस देश की परंपरागत, भाषा, उस देश के प्राकृतिक स्वरूप, रीति-नीति कथा प्रसंग आदि से वह कैसे दूर रह सकता है?

अब थोड़ा यह भी देखिए कि पुराने मुसलमान भाइयों ने अपने वर्ग के लिए अलग साहित्य निर्माण करनें में उसका क्या स्वरूप रक्खा था, और कितने दिनों तक वह स्वरूप वे बनाए रहे। हिंदी में थोड़े से, अरबी फारसी शब्द मिलाकर अपने साहित्य के लिए जो भाषा उन्होंने ग्रहण की, वह रेखता कहलाती थी। जो हिंदी उन्होंने ली थी वह केवल व्यवहार और बोलचाल की हिंदी न थी, परंपरागत काव्यों और गीतों की हिंदी भी थी, जिसमें बहुत चलते संस्कृत शब्दों के साथ-साथ ठेठ घरेलू शब्द भी रहते थे।

यह तो हुई कविता और साहित्य की बात। सबसे अधिक ध्यान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

देने की बात यह है कि सर्वसाधारण मुसलमान जनता में इसलाम के धार्मिक सिद्धांतों के प्रचार के लिए चार सौ वर्ष पहले जिस भाषा का प्रयोग वे अपनी किताबों में करते थे, उसमें यहाँ के धार्मिक और दार्शनिक पुस्तकों में आनेवाले इन्द्रिय विकार आदि शब्द तक भी कभी कभी लाते थे—

(१) सराहना नेवाजनां ख़ुदा को बहुत कि वह पालनहारा है आलम का (शरह मरग़बुल कलूब-शाह मीराँजी, बीजापुरी सन् १४९५ के पहले)।

(२) सवाल—यह तन अलाधा (अलहद:) बल्कि सतंतर (स्वतंत्र) विकार रूप दिखाता है। एक तिल क़रार नहीं ज्यों मरकट रूप।

जवाब—ऐ आरिफ़ ! ज़ाहिर तनके फ़ेल से गुजऱ्या व बातिन करतब विषै ? दूसरा तन सो भी कि इस इन्द्रियन का विकार व चेष्टा करनहारा······सुख दुख भोगनहारा। जेता विकार रूप वही दूसरा तन··। यह तन फ़हम सूं गुजऱ्या तो गुन उसका क्यों रहे ?

(कलामतुल हक़ायक़, शाह बुरहानुद्दीन बीजापुरी सन् १५८२)।

उर्दू के इतिहास के लेखक उर्दू का उत्थान बीजापुर और गोलकुण्डा की दक्खिनी रियासतों से मानते हैं। वहाँ शीया मुसलमानों की अधिक बस्ती थी। इससे इमामहुसैन की कथा को लेकर दक्खिनी उर्दू कवियों ने कई मसनवियों या प्रबन्ध-काव्यों की रचना की। इनमें से एक का नाम है 'करबल-कथा' (करबला की कथा)। यह कथा शब्द भला आजकल उर्दू में कभी जगह पा सकता है ? शृंगार की प्रेम-कहानियों की रचना भी दक्खिनी उर्दू में बहुत कुछ हुई है। जैसे 'वजही' की 'मसनबी क़ुतुब-मुश्तरी' जिसकी पद्य-रचना का रूप देखिए—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

न भुइँ पर बसे वह न असमान में।
रहा शद उसी नार के ध्यान में।
भुलाई चंचल धन वो शाह कों।
कि लुभवाए ज्यों कहरुबा काह कों।
लगा शाह उसासाँ भरन आह मार।
कि नज़दीक ना है व गुनवंत नार।

'वजही की ग़ज़ल का नमूना यह है—

पिउ अपनेकाँ आज मैं निस सपने देखी सोयकर।
जब पिउ चलिया सेंति सेज तब सोते उठी रोयकर॥
ना पूछूँ बहमन जोयसी कब मिलना पिउ सों होयसी।

'वजही' का रचना-काल सन् १६०० से १६२५ तक माना जाता है। इसके उपरांत सन् १६५० के लगभग 'नसरती' का समय आता है, जो कुछ दिनों तक तो दक्खिनी शायरी की उपर्युक्त परम्परा पर चला पर आगे चलकर वह 'हिन्दवीपन' को बहुत कुछ दूर हटाकर फ़ारसी रूप देने में लगा। अपना यह प्रयत्न उसने स्पष्ट स्वीकार किया है और कहा है "दखिन के शायरों की मैं रविशपर शेर बोल्या नहीं" एक स्थान पर और कहता है—"मआनी की सूरत की है आरसी। दखिन का किया शेर जूँ फारसी॥ फ़साहत में गर फ़ारसी .खुश कलाम॥ धरे फ़ख़् हिंदी वचन पर मुदाम॥ मैं इस दो हुनर के खुलासों को पा। किया शेर ताज़ः दोनों फन मिला॥" नसरती ने जो रास्ता दिखलाया उसपर कुछ लोग धीरे धीरे चलने लगे, पर दक्खिनी शायरी की देशी परम्परा कुछ दिनों तक चलती रही। सन् १६९१ ई० में आफ़ज़ल ने हिंदी-गीत-काव्य परम्परा के अनुसार 'बारहमासा' लिखा जिसकी भाषा इस ढंग की है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सखी रे ! चैत रितु आई सुहाई।
अजहुँ उम्मीद मेरी बर न आई।
रहे हैं भँवर फूलों के गले लाग।
मेरे सीनः जुदाई की लगी आग।
सखी दिन रैन मुझ नागिन डसत है।
फिरूँ दौरी तमामै जग हँसत है।

सन् १७०० के पीछे वली ने और दक्खिनी शायरों के समान कुछ दिनों तक हिंदीपन को रहने दिया। उसकी उन रचनाओं में हिंदी-काव्य-परंपरा के कुछ शब्द भारतीय कथा-प्रसंगों के कुछ संकेत, प्रेम व्यापार में स्त्री-पुरुष का भेद आदि कुछ बातें बनी रहीं। जैसे—

इस रैन अँधेरी में मत भूल पड़ूँ तिससूँ।
टुक पाँव के बिछुवों की आवाज सुनाती जा॥
मुझ दिल के कबूतर को पकड़ा है तेरी लट ने।
यह काम धरम का है टुक इसको छुड़ाती जा॥
तुझ मुख की परस्तिश में गई उम्र मेरी सारी।
ऐ बुत की पुजनहारी इस बुत को पुजाती जा॥
सुख बात बोलता हूँ शिकवः तेरे कपट का।
तुझ नैन देखने को दिल ठांठ कर चुका था॥

पीछे शाह सादुल्लाह गुलशन ने 'वली' को हिदायत की कि "ये इतने फ़ारसी के मज़मून जो बेकार पड़े हैं, इन्हें काम में ला।" फिर तो वली ने अपना रुख़ ही पलट दिया और वे इस तरह के कलाम सामने लाने लगे—

जब सनम को ख़याले बाग़ हुआ।
तालिबे नश्शए फ़राग़ हुआ।
फौज उश्शाक़ देख हर जानिब।
नाज़नीं साहबे दिमाग़ हुआ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अश्क सूँ तुझ लबां की सुरखी के।
जिगर लाल दाग़ दाग़ हुआ।

पहले के दक्खिनी शायर तो देव की श्रुति-रुचि के अनुसार जगह को 'जाघा' और 'अलहद:' को 'अलाधा' तक लिखते थे। फ़ारसी शब्दों के बहुवचन आदि हिंदी-व्याकरण के अनुसार रखते थे, पर वली ने 'आशिक़' का बहुवचन अरबी के क़ायदे पर 'उश्शाक़' रक्खा है और फ़ारसी समास के ढंग पर 'नशए फ़राग' और 'साहबे दिमाग़' लाए हैं। वली सन् १७०० ई० में दिल्ली आए। क़ायम ने सन् १७२० में वली के दीवान का दिल्ली पहुँचना लिखा है।

यहाँ से अब दिल्ली के शायरों की परंपरा उर्दू साहित्य में चली है। सन् १७०० ई० दिल्ली में हातिम नाम के एक शायर थे। इन्होंने फिर हिंदी के शब्दों की छँटाई की; जिसका वर्णन उन्होंने आप ही इस प्रकार किया है—

"लस्सान अरबी व ज़बान फ़ारसी कि करीबुलफ़हम व कसीरुल इस्तअमाल बाशद व रोजमर्रा देहली कि मिर्जायाने हिंद व फसीहाने रिंद दर महावर: दारंद मंजूर दाश्त:। सिवाए आँ ज़बान हिंदवी कि आँरा भाखा गोयंद मौक़ूफ करद:।

तात्पर्य यह कि हातिम ने अरबी फ़ारसी के शब्द ला लाकर रखे और हिंदी या भाषा के शब्दों को निकाल फेंका। अरबी फ़ारसी के बीच हिंदी के वे ही शब्द और मुहाविरे रहने पाए जिन्हें शाहज़ादे सरदार लोग दरबार में बोलते थे। इस प्रकार उर्दू एक दरबारी भाषा रह गई। इतना होने पर भी इनकी कविताओं में भारतीय कथा-प्रसंगों के संकेत पाए जाते हैं—

ख़ुदा के नूर का मथकर समुन्दर।
यही चौदह रतन काढ़े हैं बाहर॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अगर फ़हमीद: हिकमत आशना है।
इसी नुसखे में चौदह विद्या हैं।।

हातिम ही के समय में उर्दू के महाकवि 'सौदा' हुए हैं। जो पहले हिंदीपन से सटी हुई शायरी ही नहीं सर्व-साधारण में प्रचलित हिंदी भाषा की कविता भी करते थे और अच्छी करते थे। कुछ उद्धृत किए बिना आगे नहीं बढ़ते बनता। सौदा की हिंदी ग़ज़ल—

निकल के चौखट से घर की प्यारे जो पट की ओझल ठिठक रहा है।
सिमट के घट से तेरे दरस को नयन में जी आ अटक रहा है।
अगिन ने तेरे विरह की जब से झुलस दिया है कलेजा मेरा।
हिये की धड़कन मैं क्या बताऊँ यूँ कोयला सा चटक रहा है।
जिन्हों की छाती से पार बरछी हुई है रन में वो सूरमा है,
पड़ा वो सावन्त मन में जिसके विरह का काँटा खटक रहा है।
मुझे पसीना जो तेरे मुख पर दिखाई दे है तो सोचता हूँ,
य क्योंकि सूरज की जोत आगे हर एक तारा छटक रहा है।
हिलोर यों लेती ओस की बूँद लग के फूलों की पंखड़ी से,
तुम्हारे कानों में जिस तरह से हर एक मोती लटक रहा है।
कहीं जो लग चलने साथ देता हो इस तरह का कटर है पापी,
न जानूँ पेड़ी की धूल मैं हूँ जो मुझसे मुल्ला भटक रहा है।
कभू लगा है न आते जाते जो बैठकर टुक इसे निकालूँ,
सजन! जो काँटा है तुझ गली का सो पग में मेरे अटक रहा है।
कोई जो मुझसे य पूछता हो क्यों तू रोता है कह तो हमसे,
हर एक आँसू मेरे नयन का जगह जगह सिर पटक रहा है।
गुनी हो कैसा ही ध्यान जिसका तेरे गुनों से लगा है प्यारे,
ग्यान परबत भी है जो उसका तो छोड़ उसको सटक रहा है।
जो बाट मिलने की हो उसका पता बता दो मुझे सिरीजन,
तुम्हारी बटियों में आज बरसों से यह बटोही भटक रहा है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जो मैंने 'सौदा' से जाके पूछा तुझे कुछ अपने भी मन की सुध बुध,
य रोके मुझसे कहा किसी की लटक में लटकी लटक रहा है।

सौदा के हिन्दी दोहे—

कारी रैन डरावनी घर तें होइ निरास।
जंगल में जा सो रहे कोऊ आस न पास॥
बैरी पहुँचे आइके तेरी देहली पास।
बेग खबर लो या नबी! अब पत की नहिं आस॥
खीझ खीझ चहुँ ओर से पड़े वह ज़ालिम टूट।
वेवों को डरपाय के ले गये घर को लूट॥
कहै हरम सर पीट कर खोकर अपनी लाज।
माटी में तू रल गयो दीन दुनी के लाज॥
खोयौ तैंने नीर बिन नबी के मन को चैन।
जालिम तेरे हाथ से प्यासो गयो हुसैन॥

उक्त दोहे मरसियों में आ गए हैं। उन्हीं में से अलग किए गए हैं। सौदा की पहेलियों की भाषा हिन्दी है पर उनकी और सब रचनाएँ हातिम की ही सरणी पर चलती हैं। उर्दू की शायरी में जो थोड़ा बहुत हिन्दीपन लुका छिपा था, वह लखनऊ जाने पर नासिख के हाथ से दूर किया गया। फिर तो वह हिन्दी से ऐसी हटी कि उसने अपना एक दायरा ही अलग कर लिया। उस दायरे से जगत, चंचल, नार, गुन, अकास, धरम, धन, करम, दया, बीर, बली ऐसे शब्द एकदम निकाल बाहर हुए। इसी प्रकार वस्तुओं में न कमल और न भँवरे रह गए न बसन्त और कोकिल, न वर्षाऋतु रह गई न सावन की हरियाली; न भीम और अर्जुन रह गए; न कर्ण और भोज। इस प्रकार यहाँ की परंपरागत भाषा के आधे हिस्से से और परंपरागत साहित्य के सर्वांश से अर्थात् देश के सामान्य जीवन से उर्दू दूर हटा दी गई। जबरदस्ती जान बूझकर हटाई गई, आप से आप नहीं हटी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उर्दू के इस रूप में आने का परिणाम यह हुआ कि अपना प्रसार करने की स्वाभाविक शक्ति उसमें न रह गई। वह अपने को बनाए रखने के लिए मक़तबों और सरकारी दफ्तरों की मुहताज हो गई। यह बात अङ्गरेज़ी अमलदारी के प्रतिष्ठित हो जाने पर हमारे नवशिक्षित मुसलमान भाइयों को स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगी और वे उसकी रक्षा और प्रसार के कृत्रिम साधनों का अवलम्बन करने में लगे। मुसलमानी अमलदारी में सरकारी दफ्तर फारसी में थे। अतः ईस्ट इण्डिया कंपनी ने भी कुछ दिनों तक सरकारी दफ्तरों की ज़बान फारसी ही रहने दी पर पीछे अधिकारियों को यह बात खटकने लगी, कि दफ्तरों की भाषा सर्वसाधारण की भाषा से बिलकुल अलग है। उनका ध्यान देश की प्रचलित भाषा की ओर गया। सन् १८३६ ई० में हमारे संयुक्त प्रदेश के सदर बोर्ड से एक इश्तहारनामा निकला जो इस प्रकार था—

इश्तहारनामः बोर्ड सदर—

पच्छाह के सदर बोर्ड के साहबों ने यह ध्यान किया है कि कचहरी के सब काम पारसी जबान में लिखा पढ़ा होने से सब लोगों को बहुत हर्ज पड़ता है और बहुत कलप होता है, और जब कोई अपनी अर्जी अपनी भाषा में लिख के सरकार में दाखिल करने पावे तो बड़ी बात होगी। सब को चैन आराम होगा इसलिए हुक्म दिया गया है कि सन् १२४४ की कुवार बदी प्रथम से जिसका जो मामला सदर बोर्ड में हो सो अपना अपना सवाल अपनी हिन्दी की बोली में और पारसी के नागरी अच्छरन में लिख के दाखिल करे कि डाक पर भेजे और सवाल जौन अच्छरन में लिखा हो तौने अच्छरन में और हिन्दी बोली में उस पर हुक्म लिखा जायगा। मिती २९ जुलाई सन् १८३६ ई०।

खेद की बात है कि यह व्यवस्था चलने न पाई। मुसलमान भाइयों की ओर से इस बात का घोर प्रयत्न हुआ कि दफ्तरों में हिन्दी घुसने न

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पाए, उर्दू चलाई जाय। अन्त में सन् १८३७ ई० से उर्दू दफ्तरों की भाषा कर दी गई। इसके उपरान्त जब सर्वसाधारण की शिक्षा के लिए सरकार की ओर से जगह जगह मदरसे खुलने की बात उठी और सरकार ने यह निश्चय किया कि संस्कृत की कक्षाएँ तोड़ दी जायँ और हिन्दी भाषा का पढ़ना सब विद्यार्थियों के लिए आवश्यक कर दिया जाय, तब भी मुसलमान भाइयों की ओर से विरोध खड़ा किया गया और सन् १८४८ में उनकी प्रेरणा से कम्पनी की सरकार ने यह आज्ञा निकाली "ऐसी ज़बान का इल्म तमाम तुलबा के लिए लाज़िम करार देना जो मुल्क की सरकारी और दफ्तरी ज़बान नहीं है, हमारी राय में दुरुस्त नहीं। अलावः इसके मुसलमान तुलबा जिनकी तादाद इस देहली कालेज में बड़ी है, इसे अच्छी नज़र से नहीं देखेंगे।" हिन्दी के विरोध की यह चेष्टा बराबर बढ़ती गई। यहाँ तक कोशिश की गई कि वर्नाक्यूलर स्कूलों में उसकी शिक्षा जारी ही न होने पाए। हिन्दी की रक्षा के लिये राजा शिवप्रसाद को कितना यत्न करना पड़ा था, यह हिन्दीप्रेमी मात्र जानते हैं। सरकार की ओर से ज्ञान की वृद्धि के लिये एक संस्था (Society for promotion of knowledge in India through the medium of vernacular language) स्थापित हुई थी, जिसका उद्देश्य था अङ्गरेजी, फारसी, संस्कृत आदि की पुस्तकों का देशी भाषा में अर्थात् हिन्दी, उर्दू और बंगला में अनुवाद करना। पर उर्दू को छोड़कर न हिन्दी में कोई अनुवाद होने पाया, न बंगला में।

सर सैय्यद अहमद साहब वास्तव में उर्दू को क्या समझते थे, यह उन्हीं की ज़बान से सुनिए। वे फ़रमाते हैं—"चूँकि ज़बान खास बादशाही बाज़ारों में मुरव्वज थी इस वास्ते इसको ज़बान उर्दू कहा करते थे। और बादशाही अमीर उमरा इसको बोलते थे। गोया हिन्दुस्तान के मुसलमानों की यह ज़बान थी।" इस प्रकार उर्दू को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्होंने केवल दरबारी अमीर उमरा और मुसलमानों की ज़बान तसलीम किया है।

मुसलमान किस तरह पहले अपने मज़हब की तालीम के लिए थोड़ी अरबी फ़ारसी मिली एक ख़ास ढंग की हिन्दी काम में लाए, फिर धीरे धीरे हिन्दीपन निकालते निकालते बिलकुल एक विदेशी ढाँचे की भाषा गढ़कर अपने लिखने की भाषा एकदम अलग कर ली, यह बात अब स्पष्ट हो गई होगी। मुहम्मदशाह के समय तक इस नई गढ़ी हुई भाषा का, जो पीछे उर्दू कहलाई, साहित्य-रचना के लिए प्रचार न हो सका था, इसका आभास हिन्दी के सूफ़ी कवि नूरमुहम्मद ने अपनी उस पुस्तक में दिया है जो उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'इन्द्रावती' के पीछे लिखी। पुस्तक का नाम है 'अनुराग बाँसुरी'।* नूरमुहम्मद के समय से मुसलमान देश की प्रचलित भाषा हिन्दी से किनारा खींचने लगे थे और मुसलमानों के लिए फ़ारसी में रचना करना ही जायज़ समझने लगे थे। 'इन्द्रावती' लिखने पर उन्हें उनके मुसलमान भाइयों ने यह कहकर फटकारना शुरू किया कि "तुम मुसलमान होकर हिन्दी में क्यों लिखने गये" इसी से बेचारे को 'अनुराग-बाँसुरी' में अपनी सफ़ाई इन शब्दों में देनी पड़ी—

जानत है वह सिरजन हारा। जो कछु है मन मरम हमारा॥
हिन्दू-मग पर पाँव न राखेउँ। का जौ बहुतै हिन्दी भाखेउँ॥

जिसे उर्दू कहते हैं उसका उस समय साहित्य में कोई स्थान न था, यह नूरमुहम्मद के इस कथन से साफ़ झलकता है—

† कामयाब कहँ कौन जगावा। फिर हिन्दी भाखै पर आवा॥
छाँड़ि पारसी कंद नबातैं। अरुझाना हिन्दी-रस बातैं॥

---

* यह पुस्तक अप्रकाशित है। (अब यह प्रकाशित हो गयी है)

† नूरमुहम्मद फ़ारसी की रचनाओं में अपना तखल्लुस 'कामयाब' रखते थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जनता से अपने को बिलकुल अलग दिखाने के लिए मुसलमानों ने ही अपने लिए विदेशी ढाँचे की एक अलग भाषा और साहित्य खड़ा किया, यह इतनी प्रत्यक्ष बात है कि किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। उर्दू की प्राचीनता दिखाने के लिए दक्खिनी शायरों की जो लंबी सूची सामने लाई गई है, उसमें कोई हिंदू भी है ? शायद एक या दो। और ज़ाने दीजिए 'आबे हयात' ही उठा लीजिए। उसमें सब के सब शायर मुसलमान ही तो हैं ! अब और सबूत क्या चाहिए ? इतने पर भी न जाने किस मुँह से यह कहा जाता है कि हिंदुओं और मुसलमानों के मेल से उर्दू पैदा हुई। मेल से पैदा हुई चीज़ की यही सूरत होती है ?

आज सबसे बढ़कर खेद तो तब होता है जब कोई कानूनपेशा हिंदू, पेट के पीछे जिसके घराने का लगाव देश की परंपरागत संस्कृति और साहित्य से बिलकुल टूट गया हो, जिसकी प्रारंभिक शिक्षा केवल फारसी तथा अदालती भाषा उर्दू की हुई हो, किसी जलसे या मुशायरे में उर्दू को हिंदू-मुसलिम कल्चर के मेल से वजूद में आई हुई एक मुश्तरकः ज़बान बताने लगता है। हम पूछते हैं कि ज़ब तुम 'हिंदू कल्चर' से कोसों दूर पड़ गए हो तब उसका मेल कहाँ और कितना है, यह क्या पहचान सकते हो ? बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात इत्यादि के साहित्य की कुछ खबर है ? जब तुम ऐसे कूप-मंडूक हो कि अपने तंग घेरे के बाहर नज़र ही नहीं फैला सकते, तब इस रोशनी के ज़माने में चुप क्यों नहीं रहते ? साहित्य की जो देश-व्यापक परंपरा बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि और प्रांतों में चली आ रही है, वहीं परंपरा तो हिंदी की भी है—अर्थ-परंपरा भी और शब्द-परंपरा भी। इसी अर्थ-परंपरा और शब्द-परंपरा से इस देश की दस बारह करोड़ जनता परिचित है। इसी को वह अपना समझती आई है। जिसने उर्दू नहीं पढ़ी है उसे ज़रा अपनी 'मुश्तरकः आम-फ़हम' में कोई 'सयासी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तक़रीर' सुनाइए तो पता लगे। हमें सबसे बढ़कर क्षोभ उस समय हुआ था जब हिंदुस्तानी के किसी जलसे में एक साहब यह फ़रमा गए थे कि "मैं तुलसी और कबीर को समझ लेता हूँ पर आजकल की हिन्दी बहुत कम समझ पाता हूँ"। इस प्रलाप का भी कहीं ठिकाना है? जो आजकल के साहित्य की भाषा नहीं समझता वह भला तुलसी की भाषा क्या समझेगा? संस्कृत शब्दों की परंपरा सूर, तुलसी आदि की रचनाओं में चली आई थी वही आजकल भी चली आ रही है।

जिस प्रकार 'हिन्दवीपन' निकाल कर एक विदेशी ढाँचे की भाषा खड़ी करने का क्रमबद्ध इतिहास है उसी प्रकार उस भाषा को सब के गले मढ़ने के लिए हिन्दी को दूर रखने के घोर प्रयत्न का भी खासा इतिहास है जो उस समय से शुरू होता है जब देश का पूरा शासन अँगरेज़ों के हाथ में आया। इन दोनों इतिहासों का संक्षेप में उल्लेख करके अब मैं वर्त्तमान परिस्थिति पर आता हूँ। अब तक शिक्षा का लक्ष्य अधिकतर सरकारी नौकरी रहा है। अतः इस बात का प्रयत्न बराबर होता रहा है कि दफ्तरों में हिंदी न घुसने पाए। दफ़्तरों की भाषा जब तक उर्दू रहेगी तब तक झक मार कर लोगों को अपने बच्चों को उर्दू की शिक्षा देनी पड़ेगी और यह कहने का मौक़ा रहेगा कि उर्दू पढ़े-लिखे लोगों की भाषा है। अगर दफ़्तरों की भाषा होना ही प्रचलित भाषा होने का प्रमाण है तब तो फ़ारसी भी, जो कई सौ वर्ष तक दफ़्तरों की भाषा रही है, देश की प्रचलित भाषा मानी जानी चाहिए।

जिस समय उर्दू के साथ साथ—उसे हटाकर नहीं—हिंदी को भी स्थान दिलाने के लिए सर ऐंटनी मैकडानल के समय में आन्दोलन उठा उस समय भी पूरा विरोध मुसलमानों की ओर से खड़ा किया गया। अदालतों से ही नहीं शिक्षा पद्धति से भी हिन्दी को हटाने के प्रयत्न बराबर होते रहे हैं, यह दिखाया जा चुका है। अब आजकल की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परिस्थिति देखिए। जो लोग राजनीतिक दृष्टि से हिन्दू-मुसलिम एकता अत्यन्त आवश्यक समझते हैं वे एक बीच का रास्ता पकड़ कर 'हिन्दुस्तानी' लेकर उठे हैं। इस हिन्दुस्तानी का समर्थन कुछ उदार समझे जानेवाले मुसलमान और उर्दू की गोद में पले हिन्दू भी कर रहे हैं। हम भोली भाली जनता को इस 'हिन्दुस्तानी' से सावधान करना अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। जो हिन्दुस्तानी इन लोगों के ध्यान में है वह थोड़ी छनी हुई उर्दू के सिवा और कुछ नहीं है। उर्दू के सब लक्षण—जैसे वाक्य-रचना की फारसी शैली, अरबी-फ़ारसी के अप्रचलित मुंशी-फ़हम शब्द, अरबी-फारसी क़ायदे के बहुवचन उसमें वर्तमान रहेंगे तब तो वह 'हिन्दुस्तानी' कहलाएगी, अन्यथा नहीं।

साहित्य, विज्ञान, दर्शन इत्यादि के काम की हिन्दुस्तानी नहीं हो सकती, यह तो इसके समर्थक भी स्वीकार करते हैं। हमारा कहना है कि साधारण बोलचाल और व्यवहार के लिए भी जिस प्रकार की 'हिन्दुस्तानी' हमारे उर्दू-परस्त दोस्तों के ध्यान में है वह चलनेवाली नहीं है। साधारण लिखा पढ़ी और व्यवहार में भी वही भाषा चल सकती है जिसमें ठेठ हिन्दी शब्दों के अतिरिक्त जैसे सब प्रकार के लोगों द्वारा बोले जानेवाले अरबी फ़ारसी के शब्द आएँ, वैसे ही संस्कृत के भी। पर क्या भूल कर भी प्रचलित से प्रचलित संस्कृत शब्द, जिसे गाँवों में बसनेवाली अपढ़ जनता तक बराबर बोलती आ रही है—हिंदुस्तानी में कभी स्थान पा सकती है ? जहाँ एक भी ऐसा शब्द आया कि हमारे मेहरबान दोस्तों को 'भाखापन' की गंध आने लगेगी।

साधारण लिखा-पढ़ी अदालती व्यवहार तथा बोलचाल के लिए यदि एक सच्ची सामान्य भाषा 'हिंदुस्तानी' के नाम से ग्रहण कर ली जाय तो कोई हर्ज नहीं। पर उस हिन्दुस्तानी में जिस प्रकार अरबी-फ़ारसी के ऐसे चलते शब्द आएँ जैसे—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जरूर, क़ाबू, इख़्तियार, दावा, वक्त, सलाह, क़ायदा, क़ानून, हिम्मत, हैरान, सिफ़ारिश, अरजी, नरम, गरम, मुलायम, ग़रीब, अमीर, इज्जत, क़सूर, माफ़, मरज़ी, ग़रज, किफ़ायत, नफ़ा, नुक़सान, तक़ाज़ा, उम्र, दरवाजा, रंज, गुस्सा, किस्सा, तनख़ाह, तदबीर, पेशा, साल, शकल, सूरत, ऐब, हुनर, हाज़िर, सवाल, जवाब, सज़ा, मुनासिब, सही, ग़लत, मंजूर।

उसी प्रकार नित्य बोले जानेवाले ऐसे संस्कृत के शब्द भी आएँ जैसे—

विद्या, परीक्षा, ज्ञान, धर्म, अधर्म, पाप, पुण्य, अपराध, न्याय, अन्याय, उपाय, युक्ति, कला, आकाश, पृथ्वी, क्षमा, दया, माया, प्रेम. प्रीति, क्रोध, ईर्षा, शोच, चिन्ता, सुख, दुःख सम्पत्ति, विपत्ति, शरण, चरण, धन, मान, मर्य्यादा, प्रतिष्ठा, कृपा, बन्धन, नाश, रक्षा, वस्तु, सन्तोष, औषध, वश, भोगविलास, आनन्द, पर्वत, जल, धारा, स्नान, ध्यान, शीत, ताप, शोभा, सुन्दरता, तेज, प्रताप, बल, पराक्रम, पौरुष, वीरता, शरीर, देह, कोमल, सुकुमार, शुद्ध, अशुद्ध, पवित्र, इच्छा, अक्षर, वाणी, कंठ, अर्थ, मनोरथ, कामना इत्यादि।

है ऐसी आशा ? यदि नहीं तो ऐसी हिन्दुस्तानी को दूर से नमस्कार !

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी और हिन्दुस्तानी

भाषण सदा प्रयुक्त साहित्य में आता है । सदा उसका निश्चित प्रयोजन रहता है किसी विषय का प्रतिपादन । उसकी प्रतिपादन-शैली ही उसका प्राण होती है और भाषा की सरलता उसका शृङ्गार । इस भाषण की शैली और भाषा दोनों ही सौम्य हैं । शुक्लजी के निबन्ध-सम्बन्धी सभी गुण इसमें हैं । पर सरलता इसकी विशेषता है । शुक्लजी समास-शैली में गंभीर भाषा लिखते हैं पर यहाँ शैली भी 'व्यास' है और भाषा भी टकसाली व्यवहार की है । शुक्लजी आलोचना और इतिहास के दृष्टिकोण से मार्मिक विचार प्रकट किया करते हैं । यहाँ भी यही हुआ है, पर बातें इस ढंग से आई हैं कि हिन्दी का साधारण श्रोता भी उन्हें समझ लेता है । साहित्य, भाषा, हिन्दी-हिन्दुस्तानी आदि की परिभाषाएँ ऐसे रूप में आई हैं कि जो चाहे उन्हें जान सकता है ।

'छनी हुई उर्दू' को हिन्दुस्तानी कहना वक्ता ने अनुचित माना है, इसीसे हिन्दी और उर्दू दो भाषाएँ रखना ही अच्छा है । यदि व्यवहार में आनेवाली जनता की भाषा जिसमें फ़ारसी और संस्कृत सभी के चलते शब्द आ जाते हैं, हिन्दुस्तानी मानी जाय तो अवश्य मानी जा सकती है ।

—।—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो मसजिदें

आजकल समाचार-पत्रों में लाहौर की शहीदगंज मसजिद की प्रतिदिन कुछ-न-कुछ चर्चा होती रहती है। शहर में काफ़ी खलबली मची हुई है, दोनों तरफ़ मज़हबी जोश दीखता है। एक-दूसरे पर हमले होते हैं, एक-दूसरे की बदनीयती की शिकायतें होती हैं, और बीच में एक पंच की तरह अंगरेज़ी हुकूमत अपनी ताकत दिखलाती है। मुझे न तो वाक़यात ही ठीक-ठीक मालूम हैं कि किसने यह सिलसिला पहले छेड़ा था, या किसकी गलती थी, और न इसकी जाँच करने की मेरी कोई इच्छा ही है। इस तरह के धार्मिक जोश में मुझे बहुत दिलचस्पी भी नहीं है; लेकिन दिलचस्पी हो या न हो पर जब वह दुर्भाग्य से पैदा हो जाय, तो उसका सामना करना ही पड़ता है। मैं सोचता था कि हम लोग इस देश में कितने पिछड़े हुए हैं कि अदना-अदना-सी बातों पर जान देने पर उतारू हो जाते हैं; पर अपनी गुलामी और फ़ाकेमस्ती सहने को तैयार रहते हैं।

इस मसजिद से मेरा ध्यान भटककर एक दूसरी मसजिद की तरफ़ पहुँचा। वह एक बहुत प्रसिद्ध ऐतिहासिक मसजिद है, और करीब चौदह सौ वर्ष से उसकी तरफ़ लाखों-करोड़ों निगाहें देखती आई हैं। वह इस्लाम से भी पुरानी है, और उसने अपनी इस लम्बी जिन्दगी में न जाने कितनी बातें देखी हैं। उसके सामने बड़े-बड़े साम्राज्य गिरे, पुरानी सल्तनतों का नाश हुआ, धार्मिक परिवर्तन हुए। ख़ामोशी से उसने यह सब देखा, और हर क्रांति और तबादले पर उसने अपनी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भी पोशाक बदली। चौदह सौ वर्ष के तूफ़ानों को इस आलीशान इमारत ने बरदाश्त किया ; बारिश ने उसको धोया, हवा ने अपने बाजुओं से उसको रगड़ा ; मिट्टी ने उसके बाज़ हिस्सों को ढँका। बुज़ुर्गी और शान उसके एक-एक पत्थर से टपकती है। मालूम होता है, उसकी रग-रग और रेशे-रेशे में दुनियाँ भर का तजुर्बा इस डेढ़ हजार वर्ष ने भर दिया है। इतने लम्बे ज़माने तक प्रकृति के खेलों और तूफ़ानों की बरदाश्त कठिन थी ; लेकिन उससे भी अधिक कठिन था मनुष्य की हिमाक़तों और वहशतों को सहना। पर उसने यह भी सहा। उसके पत्थरों की ख़ामोश निगाहों के सामने साम्राज्य खड़े हुए और गिरे। मज़हब उठे और बैठे; बड़े से बड़े बादशाह, खूबसूरत-से-खूबसूरत औरतें, लायक़ से लायक आदमी चमके और फिर अपना रास्ता नाप कर ग़ायब हो गये। हर तरह की वीरता उन पत्थरों ने देखी और देखी हर प्रकार की नीचता और कमीनापन। बड़े और छोटे, अच्छे और बुरे, सब आये और चल बसे ; लेकिन वे पत्थर अभी क़ायम हैं। क्या सोचते होंगे वे पत्थर, जब वे आज भी अपनी ऊँचाई से मनुष्यों की भीड़ों को देखते होंगे—उनके बच्चों का खेल, उनके बड़ों की लड़ाई, फ़रेब और बेवकूफ़ी। हजारों वर्ष में इन्होंने कितना कम सीखा ! कितने दिन और लगेंगे कि इनको अक्ल और समझ आये ?

समुद्र की एक पतली-सी बाँह एशिया और यूरोप को वहाँ अलग करती—एक चौड़ी नदी की भाँति बासफोरस बहता है और दो दुनियाओं को जुदा करता है। उसके युरोपियन किनारे की छोटी छोटी पहाड़ियों पर बाइजेन्टियम की पुरानी बस्ती थी। बहुत दिनों से वह रोमन साम्राज्य में थी, जिसकी सरहद ईस्वी की शुरू की शताब्दियों में ईराक तक थी ; लेकिन पूरब की ओर से इस साम्राज्य पर अकसर हमले होते थे। रोम की शक्ति कुछ कम हो रही थी और वह अपनी दूर-दूर की सरहदों की ठीक तरह रक्षा नहीं कर सकता था। कभी पश्चिम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और उत्तर में जर्मन बहशी (जैसा कि रोमन लोग उन्हें कहते थे) चढ़ आते थे, और उनका हटाना मुश्किल हो जाता था। तो कभी पूरब में ईराक की तरफ़ से या अरब से एशियाई लोग हमले करते और रोमन फ़ौजों को हरा देते थे।

रोम के सम्राट् कान्सटेन्टाइन ने यह फैसला किया कि अपनी राजधानी पूरब की ओर ले जाय, ताकि वह पूर्वी हमलों से साम्राज्य की रक्षा कर सके। उसने वासफोरस के सुन्दर तट को चुना और वाइजेन्टियम की छोटी पहाड़ियों पर एक विशाल नगर की स्थापना की। ईस्वी की चौथी सदी खतम होनेवाली थी, जब कान्सटेन्टिनोपल (उर्फ कुस्तुन्तुनियाँ) का जन्म हुआ। इस नवीन प्रबन्ध से रोमन साम्राज्य पूरब में जरूर मज़बूत हो गया, लेकिन अब पश्चिम की सरहद और भी दूर पड़ गई। कुछ दिन बाद रोमन साम्राज्य के दो टुकड़े हो गये—एक पश्चिमी साम्राज्य और दूसरा पूर्वी साम्राज्य। कुछ वर्ष बाद पश्चिमी साम्राज्य को उसके दुश्मनों नें खतम कर दिया; लेकिन पूर्वी साम्राज्य एक हजार वर्ष से अधिक और कायम रहा और वाइजेन्टाइन साम्राज्य के नाम से प्रसिद्ध रहा।

सम्राट् कान्सटेन्टाइन ने केवल राजधानी ही नहीं बदली, परन्तु उससे भी बड़ा एक परिवर्तन किया। उसने ईसाई धर्म स्वीकार किया। उसके पहले ईसाइयों पर रोम में बहुत सख्तियाँ होती थीं। जो उनमें से रोम के देवताओं को नहीं पूजता था, या सम्राट् की मूर्ति का पूजन नहीं करता था, उसको मौत की सजा मिल सकती थी। अक्सर उसे मैदान में भूखे शेरों के सामने फेंक दिया जाता था। यह रोम की जनता का एक बहुत प्रिय तमाशा था। रोम में ईसाई होना एक बहुत ख़तरे की बात थी। वे तो बाग़ी समझे जाते थे। अब एकाएक ज़मीन आसमान का फर्क हो गया। सम्राट् स्वयं ईसाई हो गया, और ईसाई धर्म सबसे आदरणीय समझा जाने लगा। अब बेचारे पुराने देवताओं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के पूजनेवाले मुश्किल में पड़ गये, और बाद के सम्राटों ने तो उनको बहुत सताया। केवल एक सम्राट् फिर ऐसे हुए (जूलियन) जो ईसाई धर्म को तिलांजलि देकर फिर देवताओं के उपासक बन गये; परन्तु तब ईसाई धर्म बहुत ज़ोर पकड़ चुका था, इसलिए बेचारे रोम और ग्रीस के प्राचीन देवताओं को जंगल को शरण लेनी पड़ी और वहाँ से भी वे धीरे-धीरे ग़ायब हो गये।

इन पूर्वी रोमन साम्राज्य के केन्द्र कुस्तुन्तुनियाँ में सम्राटों की आज्ञा से बड़ी-बड़ी इमारतें बनीं और बहुत जल्द वह एक विशाल नगर हो गया। उस समय यूरोप में कोई भी दूसरा शहर उसका मुकाबला नहीं कर सकता था—रोम भी बिलकुल पिछड़ गया था। वहाँ की इमारतें एक नई तर्ज़ की बनीं एक नई भवन बनाने की कला का प्रादुर्भाव हुआ, जिसमें मेहराब, गुम्बज, बुर्जियाँ, खम्भे इत्यादि अपनी ही तर्ज़ के थे, और जिसके अन्दर और खम्भों वग़ैरह पर बारीक मोज़ाइक (पच्चीकारी) का काम होता था। यह इमारती कला बाजेन्टाइन कला के नाम से प्रसिद्ध है। छठी सदी में कुस्तुन्तुनियाँ में एक आलीशान केथीड्रेल (बड़ा गिरजा) इस कला का बनाया गया, सांक्टा सोफ़िया या सेन्ट-सोफ़िया के नाम से मशहूर हुआ।

पूर्वी रोमन साम्राज्य का यह सब में बड़ा गिरजा था और सम्राटों की यह इच्छा थी कि वह बेमिसाल बने और अपनी शान और ऊँचे दर्जे की कला में साम्राज्य के योग्य हो। उनकी इच्छा पूरी हुई और यह गिरजा अब तब वाइजेन्टाइन कला की सबसे बड़ी फ़तह समझा जाता है। बाद में ईसाई धर्म के दो टुकड़े हुए (हुए तो कई लेकिन दो बड़े टुकड़ों का ज़िक्र है) और रोम और कुस्तुन्तुनियाँ में धार्मिक लड़ाई हुई। वे एक दूसरे से अलग हो गए। रोम का विशप (बड़ा पादरी) पोप हो गया और वह यूरोप के पश्चिमी देशों में बड़ा माना जाने लगा, लेकिन पूर्वी रोमन साम्राज्य ने उसको नहीं माना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और वहाँ का ईसाई फ़िरका अलग हो गया। यह फ़िरका ऑर्थोडाक्स चर्च कहलाने लगा या अक्सर ग्रीक चर्च भी कहलाता था, क्योंकि वहाँ की बोली ग्रीक हो गई थी। ऑर्थोडाक्स चर्च रूस और उसके आस-पास भी फैला था।

सेंट सोफ़िया का केथीड्रेल ग्रीक चर्च (धर्म) का केन्द्र था और नौ सौ वर्ष तक वह ऐसा ही रहा। बीच में एकाएक रोम के पक्षपाती ईसाई (जो आये थे मुसलमानों से क्रूसेड्स—जेहाद लड़ने) कुस्तुन्तुनिया पर टूट पड़े और उस पर उन्होंने क़ब्ज़ा भी कर लिया, लेकिन वे जल्द ही निकाल दिए गए।

आख़िर में जब पूर्वी रोमन साम्राज्य एक हजार वर्ष से अधिक चल चुका था और सेंट-सोफ़िया की अवस्था भी लगभग नौ सौ वर्ष की हो रही थी, तब एक नया हमला हुआ, जिसने उस पुराने साम्राज्य का अन्त कर दिया। पंद्रहवीं सदी में ओस्मानली तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया पर फ़तह पाई। नतीजा यह हुआ कि वहाँ का जो सबसे बड़ा ईसाई केथीड्रेल था, वह अब सबसे बड़ी मसजिद हो गई। सेंट सोफ़िया का नाम आया सुफ़ीया हो गया। उसकी यह नई जिन्दगी भी लम्बी निकली—सैकड़ों वर्षों की एक तरह से वह आलीशान मसजिद एक ऐसी निशानी बन गई, जिस पर दूर-दूर से निगाहें आकर टकराती थीं और बड़े-बड़े मनसूबे गाँठती थीं। उन्नीसवीं सदी में तुर्की साम्राज्य कमज़ोर हो रहा था और रूस बढ़ रहा था। रूस इतना बड़ा देश होते हुए भी एक बन्द देश था। उसके साम्राज्य भर में कोई ऐसा खुला बन्दरगाह नहीं था जो सर्दियों में बर्फ़ से खाली रहे और काम आ सके, इसलिए वह कुस्तुन्तुनिया की ओर लोभभरी आँखों से देखता था। इससे भी अधिक आकर्षण आध्यात्मिक और सांस्कृतिक था। रूस के ज़ार (सम्राट्) अपने को पूर्वी रोमन सम्राटों के वारिस समझते थे और उनकी पुरानी राजधानी को अपने क़ब्ज़े में लाना चाहते थे। दोनों का मज़हब वही

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आर्थोडाक्स ग्रीक चर्च था, जिसका नामी गिरजा सेंट-सोफ़िया था। रूस को यह असह्य था कि उसके धर्म का सबसे पुराना और प्रतिष्ठित गिरजा मसजिद बना रहे। उसके ऊपर जो इस्लाम की निशानी हिलाल या अर्द्ध-चन्द्र था, उसके बजाय ग्रीक क्रास होना चाहिए।

धीरे-धीरे उन्नीसवीं सदी में ज़ारों का रूस कुस्तुन्तुनिया की ओर बढ़ता गया। जब करीब आने लगा, तब यूरोप की और शक्तियाँ घबराईं। इंगलैंड और फ्रांस ने रुकावटें डालीं, लड़ाई हुई, रूस कुछ रुका। लेकिन फिर वही कोशिश जारी हो गई, फिर वही राजनीतिक पेंच चलने लगे। आख़िरकार सन् १६१४ की बड़ी लड़ाई आरम्भ हुई, और उसमें इंगलैंड, फ्रांस, रूस और इटली में खुफिया समझौते हुए। दुनिया के सामने तो ऊँचे सिद्धान्त रखे गये आज़ादी के और छोटे देशों की स्वतन्त्रता के; लेकिन परदे के पीछे गिद्धों की तरह लाश के इन्तजार में उसके बँटवारे के मनसूबे निश्चित किये गये।

पर यह मनसूबे भी पूरे नहीं हुए। उस लाश के मिलने के पहले ज़ारों का रूस ही ख़तम हो गया। वहाँ क्रांति हुई, हुकूमत और समाज दोनों का ही उलटफेर हो गया। बोल्शेविकों ने तमाम पुराने खुफिया समझौते प्रकाशित कर दिये, यह दिखाने को कि यह यूरोप की बड़ी-बड़ी साम्राज्यवादी शक्तियाँ कितनी धोखेबाज़ हैं। साथ ही इस बात की घोषणा की कि वे (बोल्शेविक) साम्राज्यवाद के विरुद्ध हैं, और किसी दूसरे देश पर अपना अधिकार नहीं जमाना चाहते। हर एक जाति को स्वतन्त्र रहने का अधिकार है।

यह सफाई और नेकनीयती पश्चिम की विजयी शक्तियों को पसंद नहीं आई। उनकी राय में खुफिया सन्धियों का ढिंढोरा पीटना शराफत की निशानी नहीं थी। ख़ैर, अगर रूस की नई हुकूमत नालायक है, तो कोई वजह न थी कि वे अपने अच्छे शिकार से हाथ धो बैठें। उन्होंने—ख़ासकर अंग्रेजों ने—कुस्तुन्तुनिया पर क़ब्ज़ा किया। ४८६ वर्ष

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बाद इस पुराने शहर की हुकूमत इस्लामी हाथों से निकलकर फिर ईसाई हाथों में आई। सुलतान-ख़लीफ़ा ज़रूर मौजूद थे, लेकिन वे एक गुड्डे की भाँति थे; जिधर मोड़ दिये जायँ, उधर ही घूम जाते थे। आया सुफ़ीया भी हस्बमामूल खड़ी थी और मसजिद थी; लेकिन उसकी वह शान कहाँ, जो आजाद वक्त में थी, जब स्वयं सुलतान उसमें जुमे का नमाज़ पढ़ने जाते थे।

सुलतान ने सिर झुकाया, ख़लीफ़ा ने ग़ुलामी तसलीम की; लेकिन चन्द तुर्क ऐसे थे, जिनको यह स्वीकार न था। उनमें से एक मुस्तफ़ा कमाल था, जिसने ग़ुलामी से बग़ावत को बेहतर समझा।

इस अरसे में क़ुस्तुन्तुनिया के एक और वारिस और हक़दार पैदा हुए—ये ग्रीक लोग थे। लड़ाई के बाद ग्रीस को मुफ्त में बहुत सी ज़मीन मिली और वह पुराने पूर्वी रोमन साम्राज्य का स्वप्न देखने लगा। अभी तक रूस रास्ते में था और तुर्की तो मौजूद ही था। अब रूस मुकाबले से हट गया, और तुर्क लोग हारते हुए परेशान पड़े हुए थे। रास्ता साफ मालूम होता था। इंगलैंड और फ्रांस के बड़े आदमियों को भी राज़ी कर लिया गया, फिर दिक्कत क्या?

लेकिन एक बड़ी कठिनाई थी। वह कठिनाई थी मुस्तफ़ा कमाल-पाशा। उसने ग्रीक हमले का मुक़ाबिला किया और अपने देश से ग्रीक फ़ौजों को बुरी तरह हराकर निकाला। उसने सुलतान ख़लीफ़ा को, जिसने अपने मुल्क के दुश्मनों का साथ दिया था, एक गद्दार (देशद्रोही) कहकर निकाल दिया। उसने मुल्क से सल्तनत और ख़िलाफत दोनों का सिलसिला ही मिटा दिया। उसने अपने गिर और थके हुए मुल्क को हज़ार कठिनाइयों और दुश्मनों के सामने खड़ा किया और उसमें फिर नई जान फूँक दी। उसने सबसे बड़े परिवर्तन धार्मिक और सामाजिक किये। स्त्रियों को परदे के बाहर खींचकर जाति में सबसे आगे रखा। उसने धर्म के नाम पर कट्टरपने को दबा दिया और सिर नहीं उठाने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिया। उसने सबमें नई तालीम फैलाई—हज़ार वर्ष पुराने रिवाजों और तरीकों को ख़तम किया।

पुरानी राजधानी कुस्तुन्तुनिया को भी उसने इस पदवी से उतार दिया। डेढ़ हजार वर्ष में वह दो बड़े साम्राज्यों की राजधानी रही थी। अब राजधानी एशिया में अंगोरा नगर हो गया—एक छोटा सा शहर लेकिन तुर्कों की नई शक्ति का एक नमूना। कुस्तुन्तुनिया का नाम भी बदल गया—वह इस्ताम्बूल हो गया।

और आया सूफ़िया? उसका क्या हशर हुआ? वह चौदह सौ वर्ष की इमारत इस्ताम्बूल में खड़ी है और ज़िन्दगी के ऊँच-नीच को देखती जाती है। नौ सौ वर्ष तक उसने ग्रीक धार्मिक गाने सुने और अनेक सुगंधियों को, जो ग्रीक पूजा में रहती हैं, सूँघा। फिर चार सौ अस्सी वर्ष तक अरबी अजान की आवाज़ उसके कानों में आई और नमाज पढ़नेवालों की क़तारें उसके पत्थरों पर खड़ी हुईं।

और अब?

एक दिन कुछ महीनों की बात है,—इसी साल १९३५ में गाज़ी मुस्तफा कमालपाशा (जिनको अब खास ख़िताब और नाम आता तुर्क का दिया गया है) के हुक्म से आया सूफ़िया मसजिद नहीं रही। बगैर किसी धूम-धाम के वहाँ के होजा लोग (मुसलिम मुल्ला वगैरह) हटा दिये गये और अन्य मसजिदों में भेज दिये गये। और यह तय हुआ कि आया सूफ़िया बजाय मसजिद के एक म्यूज़ियम (संग्रहालय) हो—ख़ासकर बाइजेन्टाइन कलाओं का। बाइजेन्टाइन ज़माना तुर्कों के आने के पहले का ईसाई ज़माना था। तुर्कों ने कुस्तुन्तुनिया पर कब्ज़ा १४५२ ई० में किया था। उस समय से समझा जाता है कि बाइजेन्टाइन कला ख़तम हो गई, इसलिए अब आया सूफ़िया एक प्रकार से फिर ईसाई ज़माने को वापस चली गई—मुस्तफा कमाल के हुक्म से!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आजकल वहाँ ज़ोरों की खुदाई हो रही है। जहाँ-जहाँ मिट्टी जम गई थी, हटाई जा रही है और पुराने मोज़ाइक्स निकल रहे हैं। बाइ-जेन्टाइन कला के जाननेवाले अमेरिका और जर्मनी से बुलाये गये हैं, और उन्हीं की निगरानी में काम हो रहा है। फाटक पर संग्रहालय की तख़्ती लटकती है, और दरबान बैठा रहता है। उसको आप अपना छाता छड़ी दीजिए, उनका टिकट लिजिए और अंदर जाकर इस प्रसिद्ध पुरानी कला के नमूने देखिये। और देखते देखते इस संसार के विचित्र इतिहास पर विचार कीजिए; अपने दिमाग़ को हज़ारों वर्ष आगे-पीछे दौड़ाइए; क्या क्या तसवीरें, क्या क्या तमाशे, क्या क्या जुल्म, क्या क्या अत्याचार आपके सामने आते हैं। उन दीवारों से कहिये कि वे आपको अपनी कहानी सुनावें, अपने तजरुबे आपको दे दें। शायद कल और परसों जो गुज़र गये, उन पर ग़ौर करने से हम आज को समझें; शायद भविष्य के परदे को भी हटा कर हम झाँक सकें।

लेकिन वे पत्थर और दीवारें खामोश हैं। उन्होंने एतवार की ईसाई पूजा बहुत देखीं और बहुत देखीं जुमे की नमाजें। अब हर दिन की नुमाइश है उनके साये में। दुनिया बदलती रही; लेकिन वे कायम हैं। उनके घिसे हुए चेहरे पर कुछ हल्की मुसकराहट सी मालूम होती है, और धीमी आवाज़ सी कानों में आती है—'इन्सान भी कितना बेवक़ूफ और जाहिल है कि वह हज़ारों वर्ष के तजरुबे से नहीं सीखता और बार बार वही हिमाक़तें करता है।'

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो मसजिदें

प्रतिभा, श्रुत और अभ्यास के योग से सच्चा साहित्य उत्पन्न होता है। प्रतिभा प्रगट होती है संकल्पात्मक अनुभूति में, श्रुत और अभ्यास पीछे उसे अभिव्यक्त करके संवेदनीय और व्यवहार्य बनाते हैं। वाल्मीकि ने एक शिकारी को शिकार करते देखा। वे ध्यानस्थ थे—हृदय की पवित्र भूमि में। उन्हें शोक हुआ पर उस शोक का संबंध उस एक शिकारी से नहीं था प्रत्युत उसका संबंध शिकारी मात्र से था। इसी से उन्हें संकल्पात्मक अनुभूति हुई। उसी अनुभूति को उनके विशाल 'श्रुत' और कला के अभ्यास ने महाकाव्य बना दिया—इतिहास की पाषाण मूर्ति को काव्य का दुकूल पहना दिया।

जवाहरलाल नेहरू स्वाधीनता का ध्यान कर रहे थे—हृदय की पवित्र भूमिमें विचर रहे थे। देखा कि सामने शहीदगंज मज़हबी शिकारियों का शिकार हो रहा है। उन्हें एक वेदना हुई—संकल्पात्मक अनुभूति हुई। तीव्र अनुभूति ने उनकी शिक्षा और कला के ढाँचे में ढलकर एक निबंध का रूप पाया। इसमें उनकी बहुश्रुतता का पूरा प्रमाण है। कैसे सरल और सीधे ढंग से उन्होंने 'आया सोफ़िया' का इतिहास सुना दिया है। इस निबंध की शैली और भाषा जैसी स्वाभाविक, सरल, सौम्य और भावों के साथ बहनेवाली है, उसीसे लेखन कला का अभ्यास जान पड़ जाता है। वर्णन तो ऐसा अद्भुत है कि आया सोफ़िया के पत्थर भी सजीव होकर बोल उठे हैं। सच्ची बात तो यह है कि यह दो मस्जिदों का नहीं—दो मनो-भावों का वर्णन है। और वह भी हृदय की कलम से लिखा गया है।

अन्तिम वाक्य में समस्त निबन्ध की अन्तरात्मा का निचोड़ है। कोई कलाकार कदाचित् उसे स्वतः ध्वनित होने के लिए छोड़ देता और इससे अधिक मार्मिक शब्दों में उपसंहार उपस्थित करता पर स्पष्टवक्ता लेखक ने सब कुछ जो उसे कहना था—कह दिया।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस ऐतिहासिक कहानी में निबंध के सभी गुण विद्यमान हैं। ज्ञातव्य और विचारणीय बातें भरी पड़ी हैं। कहने का ढंग अनूठा है। भाषा नमूने की हिंदुस्तानी है। व्यंग्य शुरू से आखिर तक हँस रहा है। सोफिया की पूरी कहानी तो व्यञ्जक है ही 'लाश के मिलने के पहले' 'शराफत की निशानी' 'बगैर किसी धूमधाम के 'हर दिन की नुमाइश' आदि के समान न जाने कितने शब्दों में से हृदय की उबाल निकल रही है। लेखक का आत्मीय राग तो कोई अनाड़ी भी सुन सकता है। यह निबंध उनकी आत्मकथा का एक टुकड़ा सा लगता है। और निबंध का सबसे बड़ा लक्षण जो प्रभाव है उसकी भी इसमें कमी नहीं।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'ऊँह'

ईश्वर इस 'ऊँह' से बचाए। जिसकी ज़बान पर आया, उसको तबाह किया ; जिस घर में घुसा, उसका सत्यानाश किया और जिस राष्ट्र में फैला, उसमें गधे के हल चलवा दिये। सबूत चाहिए तो संसार का इतिहास उठा कर देख लो, इस 'ऊँह' ने संसार के क्या-क्या रंग बदले हैं। जनरल 'ग्रूश' को नैपोलियन आज्ञा देता है कि अंग्रेजों की फौज के पीछे अभी पहुँच जाओ और पौ फटने से पहिले उसके पृष्ठभाग पर दबाव डालो। सामने से मैं आक्रमण करता हूँ। 'ब्लूशर' के आने से पहिले इस फ़ौज को रगड़ डालेंगे। जनरल 'ग्रूश' 'ऊँह' कर देता है। सबेरे नौ बजे 'ब्रेकफास्ट' (प्रातराश) से फ़ारिग होकर रवाना होता है। 'वाटरलू' की लड़ाई न सिर्फ़ यूरोप का, बल्कि सारी दुनियाँ का नक़शा बदल देती है।

हिन्दोस्तान में भी 'ऊँह' का कुछ कम ज़ोर नहीं रहा है। नादिर-शाह चढ़ा चला आ रहा है। मोहम्मद शाह बादशाह रंगरेलियाँ मना रहे हैं, पता लगता है कि नादिर लाहौर तक आ गया। बादशाह सला-मत 'ऊँह' कर देते हैं। लीजिए, इनकी एक 'ऊँह' से दिल्ली लुट जाती है, खजाना खाली हो जाता है।

मरहठे बढ़ते आ रहे हैं। दिल्ली पर कब्ज़ा करके 'गंजपुरा' लूट लेते हैं। अहमदशाह अबदाली की ख़बर होती है। वह बदला लेने चलता है। 'होलकर' और 'सेंधिया' दोनों मिलकर 'भाऊ' को समझाते हैं कि तोपखाना यहीं छोड़ दो, हलके फुलके होकर मुकाबला करो। आमने-सामने की लड़ाई 'अबदाली' से मुश्किल है। 'भाऊ' 'ऊँह' कर देता है। इस 'ऊँह' का नतीजा यह निकलता है कि हिन्दोस्तान की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सल्तनत का जो ख़याल मरहठों का था, वह पानीपत की लड़ाई से स्वप्न हो जाता है।

पहले तो जो कुछ था, वह था; आजकल इस 'ऊँह' का बड़ा जोरजोरा है। यही वजह है कि यहाँ के इन्तज़ाम का ऊँट किसी करवट नहीं बैठता, उधर प्रजा की माँग-पुकार पर गवर्नमेंट ने 'ऊँह' की और इधर इस 'ऊँह' का जवाब बम से मिला। ज़रा गवर्नमेंट के शासन पर प्रजा ने 'ऊँह' की, और इस 'ऊँह' पर मशीनगन की गोलियाँ बरस गईं। प्रजा की हालत देखो तो यहाँ भी इस 'ऊँह' के नतीजे मौजूद हैं। मुसलमान-मुसलमान में झगड़ा, हिन्दू-हिन्दू में झगड़ा, हिन्दू-मुसलमान में झगड़ा, उत्तर-दक्खिन में झगड़ा, पूरब-पश्चिम में झगड़ा, यहाँ तक कि ज़मीन-आसमान में झगड़ा। अगर यहाँ 'ऊँह' का कुछ अरसे यों ही ज़ोर रहा, तो 'स्वराज्य' मिलना क्या 'गुलामी' भी नसीब होनी मुश्किल है।

देश के बाद अब सभाओं की दशा देखो, तो वहाँ भी यही रङ्ग दिखाई देगा। मेम्बर हैं कि बने ठने गद्देदार कुर्सियों पर विराजमान हैं। स्पीकर (वक्ता) जोश में बहकर कहीं से कहीं निकले जा रहे हैं। मेम्बरों ने थोड़ी देर यह असम्बद्ध भाषण सुना और 'ऊँह' कहकर आँखें बन्द कर लीं। लीजिए, इनके लिए तो सभा की कार्रवाई समाप्त हो गई। जो सदस्य ज़रा आँखें खोले बैठे हैं, वे ब्लाटिंग पर फूल-पत्ते या गधे और आदमियों के चित्र बना रहे हैं। कोई इन भले आदमियों से पूछे कि महाशय, यहाँ आप सोने और चित्र बनाने आये हैं, या राष्ट्र के लिए कुछ काम करने? वोट लेने का वक्त आया और उन्होंने बेसोचे-समझे पक्ष या विपक्ष में हाथ उठा दिये। उनको न यह मालूम करने की जरूरत कि इस विषय पर क्या विवाद हुआ और न यह जानने की आवश्यकता कि परिस्थिति के अनुसार समर्थन करना चाहिए या विरोध। यह तो सिर्फ 'ऊँह' करने और हाथ उठाने आये थे। इस कर्तव्य को पूरा कर दिया। अब सभा वाले जानें, उनका काम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathm...

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जाने। सभा की समाप्ति पर इन लोगों से पूछो तो निःसन्देह नब्बे फी-सदी 'ऊँह' से जवाब देंगे, जिसका अर्थ यह हुआ कि सभा व्यर्थ, वक्ता बेवकूफ और सुननेवाले गधे !

विद्यार्थियों को देखो, तो 'ऊँह' का ज़ोर सबसे अधिक इन्हीं में पाओगे। साल-भर खेल-कूद में गँवा दिया। परीक्षा का समय आया, तो 'ऊँह' कर दी, यानी कल से पढ़ेंगे, आख़िर यह 'ऊँह' यहाँ तक खींचा कि परीक्षा आ गई। फ़ेल हुए। फ़ेल होने पर भी 'ऊँह' कर दी। यह 'ऊँह' बहुत ही सारगर्भित है। इसका एक अर्थ तो यह है कि बाप जीते हैं, खाने-पीने और उड़ाने को मुफ्त मिलता है। अगर वह भी मर गये तो जायदाद मौजूद है। कर्ज़ा देने को साहूकार तय्यार हैं। फिर पढ़-लिख-कर अपना समय क्यों नष्ट करें। दूसरा मतलब यह कि अभी हमारी उम्र ही क्या है, सिर्फ अठारह वर्ष की है। अगर मिडिल के इम्तहान में दो चार बार फ़ेल ही हो चुके तो क्या हर्ज है? तीस साल की उम्र तक भी इन्ट्रेन्स पास कर लिया, तो सिफारिश के बल पर कहीं-न-कहीं चिपक ही जायँगे, या कम से कम विलायत जाने का कर्ज़ा तो ज़रूर मिल जायगा, और जरा कोशिश की तो बाद में माफ भी हो सकेगा।

इस फ़ेल होने पर इधर इन्होंने 'ऊँह' की और उधर माँ-बाप ने 'ऊँह' की। इस दशा में माँ और बाप की 'ऊँह' का दूसरा अभिप्राय है, अर्थात् यह कि 'बच्चा' अभी फ़ेल हुआ है, दिल टूटा हुआ है। ज़रा कुछ कहा, तो कहीं ऐसा न हो कि रो रोकर जान हलाकान कर ले या कहीं जाकर डूब मरे। बस, इस 'ऊँह' ने 'साहबज़ादे' की शिक्षा की इति-श्री कर दी।

घरवाली की 'ऊँह' सबसे ज्यादा भयानक होती है। किसी दासी पर रुष्ट हो रही हैं। वह बराबर जवाब दिये जाती है। यह 'ऊँह' करके चुप हो जाती हैं। लीजिए नौकर शेर हो गये। घर का सारा प्रबंध अस्त-व्यस्त, इनके अधिकार छिन गये। घर के शासन का सूत्र नौकरों के हाथ में चला गया। कोई चीज चोरी हो गई। घर की मालिकिन ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इधर उधर ढूँढ़ा। कुछ थोड़ा बहुत हल्ला भी मचाया। आखिर 'ऊँह' करके बैठ गई। अब क्या है? पिटारी में से कत्था छालियाँ गायब, कैसबक्स में से रुपये पैसे गायब, संदूकों में से कपड़े गायब, शनैः शनैः सारे घर का सफाया हो गया। बच्चों ने कोयलों से दीवारों पर लकीरें खींचीं, दरवाजों पर पेन्सिल से कीड़े-मकोड़े बनाए। पहले तो श्रीमती जी कुछ थोड़ी बहुत बिगड़ीं, फिर 'ऊँह' करके चुप हो गई। अब जाकर देखो, तो थोड़े दिनों में सारा मकान भाँति भाँति की चित्रकारी से 'अजन्ता की गुफाओं' को मात कर रहा है!

अब रहे स्वामी, सो इनकी 'ऊँह' सबसे ज्यादा तेज है। श्रीमती जी किसी बात पर बिगड़ीं, यह 'ऊँह' करके बाहर चले गए। अब न तो इनकी कोई प्रतिष्ठा नौकरों में रही और न श्रीमती की दृष्टि में। रसोई बनानेवाली ने पंद्रह दिन में दस रुपये की लकड़ियाँ जला दीं। मालिक को क्रोध आया और क्यों न आता, परिश्रम की कमाई इस तरह जलती देख कर क्यों दिल न जले। कुछ बड़बड़ाए, घरवाली की तरफ सहायता की दृष्टि से देखा। उन्होंने 'ऊँह' कर दी। मिसरानी जी (रोटी बनानेवाली) ने यह रंग देख दूसरे पखवाड़े में बीस रुपये की लकड़ियाँ फूँक दीं।

पर यह बात भी है कि दम्पति की यह 'ऊँह' कभी-कभी वह काम कर जाती है, जो चाणक्य जैसे नीति-निपुण मंत्री भी नहीं कर सकते। श्रीमती को क्रोध आया। पति ने 'ऊँह' कर दी। चलो लड़ाई का खातमा हुआ। पतिदेव किसी बात पर बिगड़े, देवीजी ने 'ऊँह' कर दी, उनका क्रोध शान्त हो गया। यदि 'ऊँह' की जगह जवाब दिया जाता, तो पतिदेव को घर छोड़ना और श्रीमती को अपने मायके जाना पड़ता। हिन्दुस्तान के बहुत से घराने इस 'ऊँह' ही ने बचा रखे हैं।

प्रत्येक विषय के दो पक्ष होते हैं, जय या पराजय। इन दोनों दशाओं में 'ऊँह' हानिकारक सिद्ध होती है। पराजय पर जिसने 'ऊँह'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की, उसने मानो अपनी हार को हार ही न समझा। ऐसी दशा में वह अपनी दशा सुधारने की क्या चेष्टा करेगा? जिसने विजय पर 'ऊँह' की, उसने मानो अपने साहस और पराक्रम की कद्र नहीं की। वह आज नहीं डूबा, तो कल डूबेगा। दुनियाँ में वे लोग कुछ कर सकते हैं, जो जीत को जीत और हार को हार समझें। अब रहे ये 'ऊँह' वाले जो बेपरवाही और उपेक्षा से विजय और पराजय को बराबर समझते हैं, जिनकी दृष्टि में हार और जीत में कोई भेद ही नहीं, उनका बस, ईश्वर ही मालिक है।

यह उचित प्रतीत होता है कि अन्त में इस 'ऊँह' के क्रमविकास पर भी कुछ प्रकाश डाला जाय और यह बताया जाय कि यह पहले क्या था और क्या से क्या हो गया। हमलोग पुरुषार्थ रहित प्रारब्ध के अनुयायी हो गए हैं और इस प्रारब्धवाद से हमको यह लाभ हुआ कि कोई ज़िम्मेदारी या उत्तरदायित्व हम पर बाकी नहीं रहा। इसलिए हमारी कोशिश हमेशा यह रही है कि इस भोगवाद या प्रारब्ध के जितने विभाग बढ़ाए जा सकें, उतने बढ़ा दें। पहले हमने इस भोगवाद को संतोष, ईश्वर की मर्जी और निरीहता इन तीन सीढ़ियों तक पहुँचाया था, पर जब इससे भी हमारी तृप्ति न हुई, तो चौथा दर्जा 'ऊँह' का निकाला। भोगवाद के कैवल्य का यह अन्तिम सोपान है। हमारे साहस की प्रशंसा करनी चाहिए कि हम इस आखिरी सीढ़ी को भी तय कर चुके हैं। अगर जमाने की यही हालत रही, तो थोड़े दिनों में इस 'ऊँह' से भी कोई ऊँचा स्थान ढूँढकर वहाँ पहुँचने की कोशिश करेंगे, और ईश्वर ने चाहा, तो सफल होंगे।

मेरी ओर से कोई हिन्दुस्तान के लीडरों को सुना दे कि स्वराज्य प्राप्त करना है, तो पहले अपने भाइयों में से इस 'ऊँह' को निकालो। यह कर सके, तो हिन्दुस्तान ही क्या सारा संसार तुम्हारा है। यह नहीं हो सकता, तो व्यर्थ चीख़-चोख़ कर क्यों अपना गला फाड़ते हो। हम 'ऊँह' कर देंगे और तुम चीख़ते-चीख़ते मर जाओगे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"ऊँह"

जब कवि अपने हृदय में लगी हुई कोई भी बात कहता है—चाहे वह नीति की हो अथवा कुनीति की हो, बुद्धि की हो अथवा हृदय की—वह काव्य बन जाती है। 'ऊँह' भी ऐसी ही कवि के हृदय में लगी हुई बात है। यद्यपि उसमें आदि से अन्त तक खुला उपदेश भरा है, तथापि उसका जन्म कवि-हृदय से हुआ है, इससे वह पाठक के हृदय में घर कर जाती है। यदि हृदयस्पर्शिता काव्य की कसौटी है तो 'ऊँह' अवश्य ऊँचा साहित्य है—वर्गीकर्त्ता आलोचक चाहे उसे प्रयुक्त साहित्य कहें अथवा शुद्ध। साहित्य के तीनों गुण उसमें हैं—वस्तु, रीति और हृदय छूने की शक्ति। साहित्य में 'ऊँह' का नाम सुनकर पाठक भी ऊँह कर देता है। निबंध का नाम है 'ऊँह'। सुनते ही विद्यार्थी भी 'ऊँह' कर देता है। पर जब कवि इतिहास, समाज, परिवार आदि के अनुभव से रँगे हुए चित्र दिखाता है तो हर एक का मन 'ऊँह' की ओर दौड़ने लगता है। इस निबंध में एक से एक बढ़कर दस चित्र खींचे गए हैं। पीछे से उस्ताद ने ज्ञान भी गुथा है। यह भी भोले चित्रकार के लिए स्वाभाविक है। इसीसे उसमें भी व्यंग्य और विनोद की एक धीमी ध्वनि है। अन्त में तो लेखक ने लिखा है कि अपने भाइयों में से 'ऊँह' को निकालो। पर उसकी भाषा और शैली कहती है कि वह स्वयं ऊँह की झाँकी पर ऐसा दीवाना है कि उसके भविष्य का स्वप्न देख रहा है। 'हम ऊँह कह देंगे और तुम चीखते-चीखते मर जावोगे'। यह उपदेश नहीं, चित्र है, इसीसे तो प्यारा लगता है।

एक निबंध में इस चित्र-शैली ने न जाने कितनी स्वतंत्र कहानियाँ अंकित कर दी हैं। नेपोलियन और नादिर की ही नहीं, हमारी मधुर गृहस्थी की रंगीन कहानियाँ भी। मुहाविरेदार हिन्दुस्तानी ऐसी ज़िन्दादिल है कि एक बार पढ़ना शुरू कर देने पर पढ़नेवाला कभी 'ऊँह' नहीं कर सकता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और हृदय छूने की शक्ति तो इसमें है ही, नहीं तो इस नीतिमय निबंध को उर्दू से हिन्दी में उल्था करने की ज़रूरत क्या थी, इसको साहित्य के क्षेत्र में स्थान देने की आवश्यकता क्या थी। इसकी हृदयग्राहिता और सर्वप्रियता ही तो इसका सर्वस्व है। एक बात और है—पौरुषेय निबन्ध के सभी गुण इसमें हैं। आदि से अन्त तक इसमें वक्ता की मधुर वाणी सुन पड़ती है। आत्मीय राग के सामने विषय और विचार गौण हो गये हैं। शीर्षक का विस्मयबोधक नाम भी इसका सबूत है। देशकाल की छाया रहने पर भी इसमें प्रभाव की गंभीरता और स्थिरता है, यह सामयिक नहीं स्थायी साहित्य है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गुण्डा

१

वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रातों में, कड़कती हुई जेठ की धूप में, नंगे शरीर घूमने में वह सुख मानता था। उसकी चढ़ी मूँछें बिच्छू के डंक की तरह देखनेवालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रङ्ग, साँप की तरह, चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमें सीप की मूठ का बिछुआ खुँसा रहता। उसके घुँघराले बालों पर सुनहले पल्ले के साफ़े का छोर उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कन्धे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गँड़ासा, यह थी उसकी धज! पञ्जों के बल जब वह चलता, तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुण्डा था।

ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में वही काशी नहीं रह गई थी, जिसमें उपनिषद् के अजातशत्रु की परिषद् में ब्रह्मविद्या सीखने के लिये विद्वान् ब्रह्मचारी आते थे। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य के धर्म-दर्शन के वाद-विवाद, कई शताब्दियों से लगातार मन्दिरों और मठों के ध्वंस और तपस्वियों के वध के कारण प्रायः बन्द-से हो गये थे। यहाँ तक कि पवित्रता और छूआछूत में कट्टर वैष्णव-धर्म भी उस विच्छृंखलता में, नवागन्तुक धर्मोन्माद में, अपनी असफलता देखकर काशी में अघोर रूप धारण कर रहा था। उसी समय समस्त न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्र-बल के सामने झुकते देखकर, काशी के विच्छिन्न और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

निराश नागरिक जीवन ने, एक नवीन सम्प्रदाय की सृष्टि की। वीरता जिसका धर्म था। अपनी बात पर मिटना, सिंह वृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राणभिक्षा माँगनेवाले कायरों तथा चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वन्द्वी पर शस्त्र न उठना, सताये हुए निर्बलों को सहायता देना और प्रत्येक क्षण प्राणों को हथेली पर लिए घूमना, उनका बाना था। उन्हें लोग काशी में गुण्डा कहते थे।

जीवन की किसी अलभ्य अभिलाषा से वञ्चित होकर जैसे प्रायः लोग विरक्त हो जाते हैं; ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर, एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र होने पर भी नन्हकूसिंह ने बहुत सा रुपया खर्च करके जैसा स्वाँग खेला था, उसे काशी वाले बहुत दिनों तक नहीं भूल सके। वसन्त ऋतु में यह प्रहसन-पूर्ण अभिनय खेलने के लिये उन दिनों प्रचुर धन, बल, निर्भीकता और उच्छृङ्खलता की आवश्यकता होती थी। एक बार नन्हकूसिंह ने भी एक पैर में नूपुर, एक हाथ में तोड़ा, एक आँख में काजल, एक कान में हजारों के मोती तथा दूसरे कान में फटे हुए जूते का पल्ला लटका कर, एक हाथ में जड़ाऊ मूठ की तलवार, दूसरा हाथ भूषणों से लदी हुई अभिनय करनेवाली प्रेमिका के कन्धे पर रखकर गाया था—

'कहीं बैंगनवाली मिले तो बुला देना।'

प्रायः बनारस के बाहर की हरियालियों में, अच्छे पानी वाले कुओं पर गङ्गा की धारा में मचलती हुई डोंगी पर वह दिखलाई पड़ता था। कभी-कभी जुआखाने से निकल कर जब वह चौक में आ जाता, तो काशी की रँगीली वेश्याएँ मुस्कराकर उसका स्वागत करतीं और उसके दृढ़ शरीर को सस्पृह देखतीं। वह तमोली की ही दूकान पर बैठकर उनके गीत सुनता, ऊपर कभी नहीं जाता था। जुए की जीत का रुपया मुट्ठियों में भर-भर कर, उनकी खिड़की में वह इस तरह उछालता कि कभी-कभी समाजी लोग अपना सिर सहलाने लगते, तब वह ठठाकर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हँस देता। जब कभी लोग कोठे के ऊपर चलने के लिये कहते, तो वह उदासी की साँस खींचकर चुप हो जाता।

वह अभी बन्सी के जुआ-खाने से निकला था। आज उसकी कौड़ी ने उसका साथ न दिया। सोलह परियों के नृत्य में उसका मन न लगा। मन्नू तमोली की दूकान पर बैठते हुए उसने कहा—"आज सायत अच्छी नहीं रही मन्नू!"

"क्यों मालिक! चिन्ता किस बात की है। हम लोग किस दिन के लिये हैं। सब आप ही का तो है।"

"अरे बुद्धू ही रहे तुम! नन्हकूसिंह जिस दिन किसी से लेकर जुआ खेलने लगे, उसी दिन समझना वह मर गये। तुम जानते नहीं कि मैं जुआ खेलने कब जाता हूँ। जब मेरे पास एक पैसा नहीं रहता, उस दिन नाल पर पहुँचते ही जिधर बड़ी ढेरी रहती है उसी को बदता हूँ और फिर वही दाँव आता भी है। बाबा कीनाराम का यह वरदान है!"

"तब आज क्यों मालिक?"

"पहिला दाँव तो आया ही, फिर दो चार हाथ बदने पर सब निकल गया, तब भी लो, यह पाँच रुपये बचे हैं। एक रुपया तो पान के लिए रख लो और चार दे दो मलूकी कथक को कह दो कि दुलारी से गाने के लिए कह दे। हाँ वही एक गीत—विलमि विदेस रहे।"

नन्हकूसिंह की बात सुनते ही मलूकी, जो अभी गाँजे की चिलम पर रखने के लिये अँगारा चूर कर रहा था, घबराकर उठ खड़ा हुआ। वह सीढ़ियों पर दौड़ता हुआ चढ़ गया। चिलम को देखता ही ऊपर चढ़ा, इसीलिए उसे चोट भी लगी; पर नन्हकूसिंह की भृकुटी देखने की शक्ति उसमें कहाँ। उसे नन्हकूसिंह की वह मूर्ति न भूली थी। जब इसी पान की दूकान पर जुये-खाने से जीता हुआ, रुपये से भरा तोड़ा लिये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह बैठा था। दूर से बोधीसिंह की बारात का बाजा बजता हुआ आ रहा था। नन्हकू ने पूछा—"यह किसकी बारात है?"

"ठाकुर बोधीसिंह के लड़के की।"—मन्नू के इतना कहते ही नन्हकू के ओठ फड़कने लगे। उसने कहा—"मन्नू! यह नहीं हो सकता। आज इधर से बारात न जायगी। बोधीसिंह हमसे निपट कर तब बारात इधर से ले जा सकेंगे।"

मन्नू ने कहा—"तब मालिक मैं क्या करूँ?"

नन्हकू गड़ाँसा कंधे पर से और ऊँचा करके मलूकी से बोला "मलुकिया देखता है अभी, जा ठाकुर से कह दे, कि बाबू नन्हकूसिंह आज यहीं लगाने के लिए खड़े हैं। समझ कर आवें, लड़के की बारात है।"

मलुकिया काँपता हुआ ठाकुर बोधीसिंह के पास गया। बोधीसिंह और नन्हकू से पाँच वर्ष से सामना नहीं हुआ है। किसी दिन नाल पर कुछ बातों में ही कहा-सुनी होकर, बीच-बचाव हो गया था। फिर सामना नहीं हो सका था। आज नन्हकू जान पर खेलकर अकेले खड़ा है। बोधीसिंह भी उस आन को समझते थे। उन्होंने मलूकी से कहा जा बे, कह दे कि हमको क्या मालूम कि बाबू साहब वहाँ खड़े हैं। जब वह हैं ही, तो दो समधी जाने का क्या काम है। बोधीसिंह लौट गये और मलूकी के कन्धे पर तोड़ा लाद कर बाजे के आगे नन्हकूसिंह बारात लेकर गये, ब्याह में जो कुछ लगा खर्च किया। ब्याह कराकर तब दूसरे दिन इसी दूकान तक आकर रुक गये। लड़के को और उसकी बारात को उसके घर भेज दिया।

मलूकी को भी दस रुपया मिला था उस दिन। फिर नन्हकूसिंह की बात सुनकर बैठे रहना और यम को न्योता देना एक ही बात थी। उसने जाकर दुलारी से कहा—हम ठेका लगा रहे हैं, तुम गाओ तब-तक बल्लु सारंगीवाला पानी पीकर आता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'बाप रे ! कोई आफत आई है क्या बाबू साहब ? सलाम ।'—कह कर दुलारी ने खिड़की से मुस्कराकर झाँका था कि नन्हकूसिंह उसके सलाम का जवाब देकर, दूसरे एक आनेवाले को देखने लगे ।

हाथ में हरौती की पतली-सी छड़ी, आँखों में सुरमा, मुँह में पान, मेंहदी लगी हुई लाल दाढ़ी, जिसकी सफेद जड़ दिखलाई पड़ रही थीं, कुब्बेदार टोपी, छकलिया अँगरखा और साथ में लैसदार परतलेवाले दो सिपाही ! कोई मौलवी साहब हैं। नन्हकू हँस पड़ा। नन्हकू की ओर बिना देखे ही मौलवी ने एक सिपाही से कहा—"दुलारी से कह दो कि आज रेजीडेण्ट साहब की कोठी पर मुजरा करना होगा, अभी चलें, देखो तब तक हम जानअली से कुछ इत्र ले रहे हैं।"

सिपाही ऊपर चढ़ रहा था और मौलवी दूसरी ओर चले थे कि नन्हकू ने ललकार कर कहा—"दुलारी ! हम कब तक यहाँ बैठे रहें ! क्या अभी सारङ्गिया नहीं आया क्या ?"

दुलारी ने कहा—"वाह बाबू साहब ! आप ही के लिए तो मैं यहाँ आ बैठी हूँ। सुनिए न। आप तो कभी ऊपर......" मौलवी जल उठा। उसने कड़क कर कहा—"चोबदार ! अभी वह सूअर की बच्ची उतरी नहीं। जाओ कोतवाल के पास मेरा नाम लेकर कहो कि मौलवी अलाउद्दीन कुब्रा ने बुलाया है। आकर इसकी मरम्मत करें। देखता हूँ तो जब से नवाबी गई, इन काफिरों की मस्ती बढ़ गई है।"

कुब्रा मौलवी ! बापरे—तमोली अपनी दूकान सम्हालने लगा। पास ही एक दूकान पर बैठकर ऊँघता हुआ बजाज चौंक कर सिर में चोट खा गया। इसी मौलवी ने तो महाराज चेतसिंह से साढ़े तीन सेर चींटी के सिर का तेल माँगा था। मौलवी अलाउद्दीन कुब्रा ! बाजार में हलचल मच गई। नन्हकूसिंह ने मन्नू से कहा—"क्यों चुपचाप बैठोगे नहीं ?"

दुलारी से कहा—"वहीं से बाई जी ! इधर-उधर हिलने का काम

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं। तुम गाओ। हमने ऐसे घसियारे बहुत से देखे हैं। अभी कल रमल के पासे फेंक कर अधेला-अधेला माँगता था, आज चला है रोब गाँठने।"

अब कुबरा ने घूमकर उसकी ओर देखकर कहा—"कौन है यह पाजी!"

"तुम्हारे चाचा बाबू नन्हकूसिंह!" के साथ ही पूरा बनारसी झापड़ पड़ा। कुबरा का सिर घूम गया। लैस के परतले-वाले सिपाही दूसरी ओर भाग चले और मौलवी साहब चौंधिया कर जानअली की दूकान पर लड़खड़ाते गिरते-पड़ते, किसी तरह पहुँच गये।

जानअली ने मौलवी से कहा—"मौलवी साहब! भला आप उस गुण्डे के मुँह लगने गये। यह तो कहिए कि उसने गँड़ासा नहीं तौल दिया।" कुबरा के मुँह से बोली नहीं निकल रही थी। उधर दुलारी गा रही थी—'......विलमि विदेस रहे.......' गाना पूरा हुआ, कोई आया गया नहीं। तब नन्हकूसिंह धीरे धीरे टहलता हुआ, दूसरी ओर चला गया। थोड़ी देर में एक डोली रेशमी परदे से ढँकी हुई आई। साथ में एक चोबदार था। उसने दुलारी को राजमाता पन्ना की आज्ञा सुनाई।

दुलारी चुपचाप डोली पर जा बैठी। डोली धूल और संध्या काल के धुएँ से भरी हुई बनारस की तङ्ग गलियों में होकर शिवालय घाट की ओर चली।

२

श्रावण का अन्तिम सोमवार था। राजमाता पन्ना शिवालय में बैठकर पूजन कर रही थीं। दुलारी बाहर बैठी कुछ अन्य गानेवालियों के साथ भजन गा रही थी। आरती हो जाने पर फूलों की अञ्जलि बिखेर कर पन्ना ने भक्ति-भाव से देवता के चरणों में प्रणाम किया। फिर प्रसाद लेकर आते ही उन्होंने दुलारी को देखा। उसने खड़ी होकर हाथ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जोड़ते हुए कहा—'मैं पहले ही पहुँच जाती। क्या करूँ, वह कुबरा मौलवी निगोड़े आकर रेजीडेण्ट की कोठी पर ले जाने लगा। घण्टों इसी झंझट में बीत गया सरकार !"

"कुबरा मौलवी ! जहाँ सुनती हूँ उसी का नाम। सुना है कि उसने यहाँ भी आकर कुछ .....''—फिर न जाने क्या सोच कर बात बदलते हुए पन्ना ने कहा—"हाँ, तब फिर क्या हुआ ? तुम कैसे यहाँ आ सकी ?"

'बाबू नन्हकूसिंह उधर से आ गये। मैंने कहा—सरकार की पूजा पर मुझे भजन गाने को जाना है। और यह जाने नहीं दे रहा है। उन्होंने मौलवी को ऐसा झापड़ लगाया कि उसकी हेकड़ी भूल गई। और तब जाकर मुझे किसी तरह यहाँ आने की छुट्टी मिली।"

"कौन नन्हकूसिंह ?"

दुलारी ने सिर नीचा करके कहा—"अरे क्या सरकार को नहीं मालूम ? बाबू निरंजनसिंह के लड़के ! उस दिन, जब मैं बहुत छोटी थी, आपकी बारी में झूला झूल रही थी, जब नवाब का हाथी बिगड़ कर आ गया था, बाबू निरंजनसिंह के कुँवर ने ही तो उस दिन हम लोगों की रक्षा की थी।"

राजमाता का मुख उस प्राचीन घटना को स्मरण करके न जाने क्यों विवर्ण हो गया। फिर अपने को सँभाल कर उन्होंने पूछा—'तो बाबू नन्हकूसिंह उधर कैसे आ गये ?"

दुलारी ने मुस्कुराकर सिर नीचा कर लिया। दुलारी राजमाता पन्ना के पिता के जमींदारी में रहनेवाली वेश्या की लड़की थी। उसके साथ ही कितनी बार झूले हिंडोले अपने बचपन में पन्ना झूल चुकी थी। वह बचपन से ही गाने में सुरीली थी। सुंदरी होने पर चंचल भी थी। पन्ना जब काशिराज की माता थीं तब दुलारी काशी की प्रसिद्ध गानेवाली थी। राजमहल में उसका गाना-बजाना हुआ ही करता।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

महाराज बलवन्तसिंह के समय से ही संगीत पन्ना के जीवन का आवश्यक अंग था। हाँ, तब प्रेम, दुःख और दर्द भरी विरह कल्पना के गीत की ओर अधिक रुचि थी। अब सात्विक भावपूर्ण भजन होता था। राजमाता पन्ना का वैधव्य से दीप्त शान्त मुख-मंडल कुछ मलिन हो गया।

बड़ी रानी की सापत्न्य-ज्वाला बलवन्तसिंह के मर जाने पर भी नहीं बुझी। अन्तःपुर कलह का रंगमंच बना रहता, इसी से प्रायः पन्ना काशी के राजमंदिर में आकर पूजा-पाठ में अपना मन लगातीं। रामनगर में उनको चैन नहीं मिलता। नई रानी होने के कारण बलवन्तसिंह की प्रेयसी होने का गौरव तो उन्हें था ही, साथ में पुत्र उत्पन्न करने का सौभाग्य भी मिला, फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उनके हृदय को व्यथित किया करता। उन्हें अपने व्याह की आरम्भिक चर्चा का स्मरण हो आया।

छोटे से मंच पर बैठी, गंगा की उमड़ती हुई धारा को पन्ना अन्यमनस्क होकर देखने लगीं। उस बात को, जो अतीत में एक बार, हाथ से अनजान में खिसक जानेवाली वस्तु की तरह गुम हो गयी हो, सोचने का कोई कारण नहीं। उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं; परन्तु मानव-स्वभाव हिसाब रखने की प्रथा के अनुसार कभी कभी कह ही बैठता है कि "यदि वह बात हो गई होती तो" ठीक उसी तरह पन्ना भी राजा बलवन्तसिंह द्वारा बलपूर्वक रानी बनाई जाने के पहले की एक संभावना को सोचने लगी थीं, सो भी बाबू नन्हकूसिंह का नाम सुन लेने पर। गेंदा मुँहलगी दासी थी। वह पन्ना के साथ उसी दिन से है, जिस दिन से पन्ना बलवन्तसिंह की प्रेयसी हुई। राज्य-भर का अनुसन्धान उसी के द्वारा मिला करता। और उसे न जाने कितनी जानकारी भी थी। उसने दुलारी का रंग उखाड़ने के लिये कुछ कहना आवश्यक समझा।

"महारानी! नन्हकूसिंह अपनी सब जमींदारी स्वाँग, भैंसों की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लड़ाई, घुड़दौड़ और गाने-बजाने में उड़ाकर अब डाकू हो गया है। जितने खून होते हैं, सब में उसी का हाथ रहता है। जितनी……" उसे रोक कर दुलारी ने कहा—"यह झूठ है। बाबू साहब के ऐसा धर्मात्मा तो कोई है ही नहीं। कितनी विधवाएँ उनकी दी हुई धोती से अपना तन ढँकती हैं। कितनी लड़कियों की ब्याह-शादी होती है। कितने सताये हुए लोगों की उनके द्वारा रक्षा होती है।"

रानी पन्ना के हृदय में एक तरलता उद्वेलित हुई। उन्होंने हँसकर कहा—'दुलारी, वे तेरे यहाँ आते हैं न? इसी से तू उनकी बड़ाई…।"

"नहीं सरकार! शपथ खाकर कह सकती हूँ कि बाबू नन्हकूसिंह ने आज तक कभी मेरे कोठे पर पैर नहीं रखा।"

राजमाता न जाने क्यों इस अद्भुत व्यक्ति को समझने के लिए चञ्चल हो उठी थीं। तब भी उन्होंने दुलारी को आगे कुछ न कहने के लिए तीखी दृष्टि से देखा। वह चुप हो गई। पहले पहर की शहनाई बजने लगी। दुलारी छुट्टी माँग कर डोली पर बैठ गई। तब गेंदा ने कहा—'सरकार! आजकल नगर की दशा बड़ी बुरी है। दिनदहाड़े लोग लूट लिये जाते हैं। सैकड़ों जगह नाल पर जूए में लोग अपना सर्वस्व गँवाते हैं। बच्चे फुसलाये जाते हैं। गलियों में लाठियाँ और छुरे चलने के लिए भौंहें कारण बन जाती हैं। इधर रेजीडेण्ट साहब से महाराज की अनबन चल रही है।" राजमाता चुप रहीं।

दूसरे दिन राजा चेतसिंह के पास रेजीडेण्ट मार्कहेण्ड की चिट्ठी आई। जिसमें नगर की दुर्व्यवस्था की कड़ी आलोचना थी। डाकुओं और गुण्डों को पकड़ने के लिए, उन पर कड़ा नियन्त्रण रखने की सम्मति भी थी। कुबरा मौलवी वाली घटना का उल्लेख था। उधर हेस्टिंग्ज़ के आने की भी सूचना थी। शिवालय घाट और रामनगर में हलचल मच गई। कोतवाल हिम्मतसिंह पागल की तरह, जिसके हाथ में लाठी, लोहाँगी, गँड़ासा, बिछुआ या करौली देखते उसी को पकड़ने लगते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक दिन नन्हकूसिंह सुम्भा के नाले के संगम पर ऊँचे से टीले की घनी हरियाली में अपने चुने हुए साथियों के साथ दुधिया छान रहे थे। गंगा में उनकी पतली डोंगी बड़ की जटा से बँधी थी। कथकों का गाना हो रहा था। चार उलाँकी एक्के कसे-कसाये खड़े थे।

नन्हकूसिंह ने अकस्मात् कहा—'मलूकी ! गाना जमता नहीं है। उलाँकी पर बैठ कर जाओ, दुलारी को बुला लाओ।" मलूकी वहाँ मजीरा बजा रहा था। दौड़ कर एक्के पर जा बैठा, आज नन्हकूसिंह का मन उखड़ा था। बूटी कई बार छानने पर भी नशा नहीं। एक घण्टे में दुलारी सामने आ गई। उसने मुस्कुराकर पूछा—"क्या हुक्म है बाबू साहब !"

'दुलारी ! आज गाना सुनने का मन हो रहा है।"

"इस जंगल में क्यों ?" उसने सशंक हँस कर कुछ अभिप्रायसे पूछा।

"तुम किसी तरह का खटका न करो।" नन्हकूसिंह ने हँस कर कहा।

'यह तो मैं उस दिन महारानी से भी कह आई।"

"क्या किससे ?"

"राजमाता पन्नादेवी से"—फिर उस दिन गाना नहीं जमा। दुलारी ने आश्चर्य से देखा कि तानों में नन्हकूसिंह की आँखें तर हो जाती हैं।

गाना-बजाना समाप्त हो गया था। वर्षा की रात में झिल्लियों का स्वर उस झुरमुट में गूँज रहा था। मन्दिर के समीप ही छोटे से कमरे में नन्हकूसिंह चिन्ता में निमग्न बैठा था। आँखों में नींद नहीं। और सब लोग तो सोने लगे थे, दुलारी जाग रही थी। वह भी कुछ सोच रही थी। आज उसे, अपने को रोकने के लिये कठिन प्रयत्न करना पड़ रहा था; किन्तु असफल होकर वह उठी और नन्हकूसिंह के समीप धीरे-धीरे चली आई। कुछ आहट पाते ही चौंक कर नन्हकू ने पास ही पड़ी हुई तलवार उठा ली। तब हँस कर दुलारी ने कहा—"बाबू साहब ! यह क्या ? स्त्रियों पर भी तलवार चलाई जाती है ?"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छोटे-से दीपक के प्रकाश में वासनाभरी रमणी का मुख देखकर नन्हकू हँस पड़ा। उसने कहा—"क्यों बाई जी! क्या इसी समय जाने की पड़ी है। मौलवी ने फिर बुलाया है क्या ?" दुलारी नन्हकू के पास बैठ गई। नन्हकू ने कहा—"क्या तुमको डर लग रहा है ?"

"नहीं, मैं कुछ पूछने आई हूँ।"

"क्या ?"

"क्या,······यही कि···कभी तुम्हारे हृदय में···।"

"उसे न पूछो दुलारी! हृदय को बेकार ही समझ कर तो उसे हाथ में लिये फिर रहा हूँ। कोई कुछ कर देता-कुचलता-चीरता-उछा-लता! मर जाने के लिए सब कुछ तो करता हूँ; पर मरने नहीं पाता।"

"मरने के लिये भी कहीं खोजने जाना पड़ता है! आपको काशी का हाल क्या मालूम! न जाने घड़ी भर में क्या हो जाय। क्या उलट-पुलट होनेवाला है! बनारस की गलियाँ जैसे काटने दौड़ती हैं!"

"कोई नई बात इधर हुई है क्या ?"

"कोई हेस्टिंग्ज़ साहब आया है। सुना है कि उसने शिवालय घाट पर तिलंगों की कम्पनी का पहरा बैठा दिया है। राजा चेतसिंह और राजमाता पन्ना वहीं हैं। कोई-कोई कहता है कि उनको पकड़ कर कलकत्ता भेजने······"।

"क्या पन्ना भी·····रनवास भी वहीं है"—नन्हकू अधीर हो उठा था।

"क्यों बाबू साहब, आज रानी पन्ना का नाम सुन कर आपकी आँखों में आँसू क्यों आ गये ?"

सहसा नन्हकू का मुख भयानक हो उठा। उसने कहा—"चुप रहो, तुम इसको जानकर क्या करोगी।" वह उठ खड़ा हुआ। उद्विग्न की तरह न जाने क्या खोजने लगा। फिर स्थिर होकर उसने कहा—"दुलारी! जीवन में आज यह पहला ही दिन है कि एकान्त रात में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक स्त्री मेरे पलँग पर आकर बैठ गई है। मैं चिरकुमार अपनी एक प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिये सैकड़ों असत्य अपराध करता फिर रहा हूँ। क्यों ? तुम जानती हो ? मैं स्त्रियों का घोर विद्रोही हूँ और पन्ना !···किन्तु उसका क्या अपराध ! अत्याचारी, बलवन्तसिंह के कलेजे में बिछुआ मैं न उतार सका। किन्तु पन्ना ! उसे पकड़कर गोरे कलकत्ते भेज देंगे। वही······।"

नन्हकूसिंह उन्मत्त हो उठा था। दुलारी ने देखा, नन्हकू अन्धकार में ही वट-वृक्ष के नीचे पहुँचा और गंगा की उमड़ती हुई धारा में डोंगी खोल दी—उसी घने अन्धकार में। दुलारी का हृदय काँप उठा।

३

१६ अगस्त सन् १७८१ को काशी डाँवाडोल हो रही थी। शिवालय घाट में राजा चेतसिंह लेफ्टिनेंट इस्टाकर के पहरे में थे। नगर में आतंक था। दूकानें बन्द थीं। घरों में बच्चे अपनी माँ से पूछते थे—"माँ, आज हलुए वाला नहीं आया।" वह कहती—"चुप बेटे!" सड़कें सूनी पड़ी थीं। तिलङ्गों की कम्पनी के आगे-आगे कुबरा मौलवी कभी-कभी, आता-जाता दिखाई पड़ता था। उस समय खुली हुई खिड़कियाँ भी बन्द हो जाती थीं। भय और सन्नाटे का राज्य था। चौक में चिथरूसिंह की हवेली अपने भीतर काशी की वीरता को बंद किये कोतवाली का अभिनय कर रही थी। इसी समय किसी ने पुकारा—

"हिम्मतसिंह !"

खिड़की में से सिर निकाल कर हिम्मतसिंह ने पूछा—"कौन ?"

"बाबू नन्हकूसिंह !"

"अच्छा, तुम अब तक बाहर ही रहे ?"

"पागल ! राजा कैद हो गये हैं। छोड़ दो इन सब बहादुरों को ! हम एक बार इनको लेकर शिवालय घाट पर जायँ।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

"ठहरो"—कह कर हिम्मतसिंह ने कुछ आज्ञा दी, सिपाही बाहर निकले। नन्हकू की तलवार चमक उठी। सिपाही भीतर भागे। नन्हकू ने कहा—"नमकहरामो! चूड़ियाँ पहन लो।" लोगों के देखते-देखते नन्हकूसिंह चला गया। कोतवाली के सामने फिर सन्नाटा हो गया।

नन्हकू उन्मत्त था। उसके थोड़े से साथी उसकी आज्ञा पर जान देने के लिए तुले थे। वह नहीं जानता था कि राजा चेतसिंह का क्या राजनैतिक अपराध है। उसने कुछ सोच कर अपने थोड़े से साथियों को फाटक पर गड़बड़ मचाने के लिए भेज दिया। इधर अपनी डोंगी लेकर शिवालय की खिड़की के नीचे धारा काटता हुआ पहुँचा। किसी तरह निकले हुए पत्थर में रस्सी अटका कर, उस चञ्चल डोंगी को उसने स्थिर किया और बन्दर की तरह उछल कर खिड़की के भीतर हो रहा। उस समय वहाँ राजमाता पन्ना और युवक राजा चेतसिंह से बाबू मनियारसिंह कह रहे थे—"आपके यहाँ रहने से, हम लोग क्या करें यह समझ में नहीं आता। पूजा-पाठ समाप्त करके आप रामनगर चली गई होतीं, तो यह......।"

तेजस्विनी पन्ना ने कहा—"अब मैं रामनगर कैसे चली जाऊँ?"

मनियारसिंह दुःखी होकर बोले—"कैसे बताऊँ? मेरे सिपाही तो बन्दी हैं।"

इतने में फाटक पर कोलाहल मचा। राजपरिवार अपनी मंत्रणा में डूबा था कि नन्हकूसिंह का आना उन्हें मालूम हुआ। सामने का द्वार बन्द था। नन्हकूसिंह ने एक बार गङ्गा की धारा को देखा—उसमें एक नाव घाट पर लगने के लिये लहरों से लड़ रही थी। वह प्रसन्न हो उठा। इसी की प्रतीक्षा में वह रुका था। उसने जैसे सबको सचेत करते हुए कहा—"महारानी कहाँ हैं?"

सबने घूमकर देखा—एक अपरिचित वीरमूर्ति! शस्त्रों से लदा हुआ पूरा देव!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चेतसिंह ने पूछा—"तुम कौन हो ?"

"राजपरिवार का एक बिना दाम का सेवक हूँ !"

पन्ना के मुँह से हलकी-सी साँस निकल कर रह गई। उसने पहचान लिया। इतने वर्षों के बाद ! वही नन्हकूसिंह !

मनियारसिंह ने पूछा—"तुम क्या कर सकते हो ?"

"मैं मर सकता हूँ ! पहले महारानी को डोंगी पर बिठाइए। नीचे दूसरी डोंगी पर अच्छे मल्लाह हैं, फिर बात कीजिए।" मनियारसिंह ने देखा जनानी ड्योढ़ी का दरोग़ा राज की एक डोंगी पर चार मल्लाहों के साथ खिड़की से नाव सटा कर प्रतीक्षा में है। उन्होंने पन्ना से कहा—"चलिये, मैं चलता हूँ।"

"औ .."—चेतसिंह को देखकर, पुत्र-वत्सला ने संकेत से एक प्रश्न किया, उसका उत्तर किसी के पास न था। मनियारसिंह ने कहा—"तब मैं यहीं ?" नन्हकू ने हँस कर कहा—"मेरे मालिक, आप नाव पर बैठें। जब तक राजा भी नाव पर न बैठ जायँगे, तब तक सत्रह गोली खाकर भी नन्हकूसिंह जीवित रहने की प्रतिज्ञा करता है।"

पन्ना ने नन्हकू को देखा। एक क्षण के लिए चारों आँखें मिलीं, जिनमें जन्म-जन्म का विश्वास ज्योति की तरह जल रहा था। फाटक बलपूर्वक खोला जा रहा था। नन्हकू ने उन्मत्त होकर कहा—"मालिक ! जल्दी कीजिए।"

दूसरे क्षण पन्ना डोंगी पर थी और नन्हकूसिंह फाटक पर इस्टाकर के साथ।

चेतराम ने आकर एक चिट्ठी मनियारसिंह के हाथ में दी।

लेफ्टिनेन्ट ने कहा—"आपके आदमी गड़बड़ मचा रहे हैं। अब मैं अपने सिपाहियों को गोली चलाने से नहीं रोक सकता।"

"मेरे सिपाही यहाँ कहाँ हैं साहब ?" मनियारसिंह ने हँसकर कहा। बाहर कोलाहल बढ़ने लगा था।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चेतराम ने कहा—"पहले चेतसिंह को कैद कीजिये।"

"कौन ऐसी हिम्मत करता है?" कड़ककर कहते हुए बाबू मनियार-सिंह ने तलवार खींच ली। अभी बात पूरी न हो सकी थी कि कुबरा मौलवी वहाँ पहुँचा। यह मौलवी साहब की क़लम नहीं चल सकती थी, और न ये बाहर ही जा सकते थे। उन्होंने कहा—"देखते क्या हो चेतराम!"

चेतराम ने राजा के ऊपर हाथ रखा ही था कि नन्हकू के सधे हुए हाथ ने उसकी भुजा उड़ा दी। इस्टाकर आगे बढ़े, मौलवी साहब चिल्लाने लगे। नन्हकूसिंह ने देखते-देखते इस्टाकर और उसके कई साथियों को धराशायी किया। फिर मौलवी साहब कैसे बचते!

नन्हकूसिंह ने कहा—"क्यों, उस दिन के झापड़ ने तुझको समझाया नहीं? ले पाजी!"—कहकर ऐसा साफ जनेवा मारा कि कुबरा ढेर हो गया। कुछ ही क्षणों में यह भीषण घटना हो गई, जिसके लिये अभी कोई प्रस्तुत न था।

नन्हकूसिंह ने ललकार कर चेतसिंह से कहा—"आप देखते क्या हैं? उतरिये डोंगी पर!" उसके घावों से रक्त के फुहारे छूट रहे थे। उधर फाटक से तिलंगे भीतर आने लगे थे। चेतसिंह ने खिड़की से उतरते हुए देखा कि बीसों तिलंगों की संगीनों के बीच वह अविचल खड़ा होकर तलवार चला रहा है। नन्हकू के चट्टान सदृश शरीर से गैरिक की तरह रक्त की धारा बह रही है। गुंडे का एक-एक अंग कट कर वहीं गिरने लगा। वह काशी का गुंडा था।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शतरंज के खिलाड़ी

वाजिद्अली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रंग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था, तो कोई अफीम की पीनक ही के मज़े लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धन्धों में, आहार-व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना में, कविगण-प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मिस्सी और उबटन का रोज़गार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया हुआ था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को ख़बर न थी। बटेर लड़ रहे हैं। तीतरों की लड़ाई के लिये पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है; पौ बारह का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरंज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रंक तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फ़क़ीरों को पैसे मिलते, तो वे रोटियाँ न लेकर अफ़ीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गंजीफ़ा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है, विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है, ये दलीलें ज़ोर के साथ पेश की जाती थीं (इस संप्रदाय के लोगों से दुनियाँ अब भी खाली नहीं है)। इसलिये अगर मिर्ज़ा सज्जाद्अली और मीर रौशनअली अपना अधिकांश समय बुद्धि तीव्र करने में व्यतीत करते थे, तो किसी विचारशील पुरुष को क्या आपत्ति हो सकती थी? दोनों के पास मौरूसी जागीरें थीं, जीविका की कोई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चिंता न थी ; घर में बैठे चखौतियाँ करते थे। आखिर और करते ही क्या ! प्रातःकाल दोनों ही मित्र नाश्ता करके बिसात बिछाकर बैठ जाते, मुहरे सज जाते, और लड़ाई के दाँव-पेंच होने लगते। फिर ख़बर न होती थी कि कब दोपहर हुई कब तीसरा पहर, कब शाम। घर के भीतर से बार-बार बुलावा आता—खाना तैयार है। यहाँ से जवाब मिलता—चलो, आते हैं, दस्तरख्वान बिछाओ। यहाँ तक कि बावरची विवश होकर कमरे ही में खाना रख जाता था और दोनों मित्र दोनों काम साथ-साथ करते थे। मिर्ज़ा सज्जादअली के घर में कोई बड़ा-बूढ़ा न था, इसलिये उन्हीं के दीवानखाने में बाज़ियाँ होती थीं ; मगर यह बात न थी कि मिर्ज़ा के घर के और लोग उनके इस व्यवहार से ख़ुश हों। घरवालों का तो कहना ही क्या, महल्लेवाले, घर के नौकर-चाकर तक नित्य द्वेष-पूर्ण टिप्पणियाँ किया करते थे—बड़ा मनहूस खेल है। घर को तबाह कर देता है। ख़ुदा न करे किसी को इसकी चाट पड़े। आदमी दीन, दुनियाँ, किसी के काम का नहीं रहता, न घर का न घाट का। बुरा रोग है। यहाँ तक कि मिर्ज़ा की बेग़म साहबा को इससे इतना द्वेष था कि अवसर खोज-खोजकर पति को लताड़ती थीं। पर उन्हें इसका अवसर मुश्किल से मिलता था। वह सोती ही रहती थीं, तब तक उधर बाज़ी बिछ जाती थी और रात को जब सो जाती थीं, तब कहीं मिर्ज़ाजी भीतर आते थे। हाँ, नौकरों पर वह अपना गुस्सा उतारती रहती थीं—क्या, पान माँगे हैं ? कह दो, आकर ले जायँ। खाने की भी फ़ुर्सत नहीं है ? ले जाकर खाना सिर पर पटक दो ; खायँ, चाहे कुत्ते को खिलावें। पर रू-ब-रू वह भी कुछ न कह सकती थीं। उनको अपने पति से उतना मलाल न था जितना मीर साहब से। उन्होंने उनका नाम मीरबिगाड़ू रख छोड़ा था। शायद मिर्ज़ाजी अपनी सफ़ाई देने के लिये सारा इल्ज़ाम मीर साहब ही के सिर थोप देते थे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक दिन बेगम साहबा के सिर में दर्द होने लगा। उन्होंने लौंड़ी से कहा—"जाकर मिर्ज़ा साहब को बुला ला। किसी हकीम के यहाँ से दवा लावें। दौड़, जल्दी कर।" लौंड़ी गई, तो मिर्ज़ा ने कहा—"चल, अभी आते हैं।" बेगम साहबा का मिज़ाज गरम था। इतनी ताब कहाँ कि उनके सिर में दर्द हो, और पति शतरंज खेलता रहे। चेहरा सुर्ख हो गया। लौंड़ी से कहा—"जाकर कह, अभी चलिए, नहीं तो वह आप ही हकीम के यहाँ चली जायँगी।" मिर्ज़ाजी बड़ी दिलचस्प बाज़ी खेल रहे थे, दो ही किस्तों में मीर साहब की बाज़ी मात हुई जाती थी। झुँझलाकर बोले—"क्या ऐसा दम लबों पर है? ज़रा सब्र नहीं होता?"

मीर—अरे तो जाकर सुन ही आइए न। औरतें नाज़ुक मिज़ाज होती ही हैं।

मिर्ज़ा—जी हाँ, चला क्यों न जाऊँ! दो किश्तों में आपकी मात होती है।

मीर—जनाब, इस भरोसे न रहिएगा। वह चाल सोची है कि आपके मुहरे धरे रहें, और मात हो जाय। पर जाइए, सुन आइए। क्यों ख्वाहमख्वाह उनका दिल दुखाइएगा?

मिर्ज़ा—इस बात पर मात ही करके जाऊँगा।

मीर—मैं खेलूँगा ही नहीं। आप जाकर सुन आइए।

मिर्ज़ा—अरे यार, जाना पड़ेगा हकीम के यहाँ। सिर-दर्द खाक नहीं है; मुझे परेशान करने का बहाना है।

मीर—कुछ भी हो, उनकी खातिर तो करनी ही पड़ेगी।

मिर्ज़ा—अच्छा, एक चाल और चलूँ।

मीर—हर्गिज नहीं, जब तक आप सुन न आवेंगे, मैं मुहरे में हाथ ही न लगाऊँगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिर्ज़ा साहब मजबूर होकर अन्दर गए, तो बेगम साहबा ने त्योंरियाँ बदल कर, लेकिन कराहते हुए कहा—तुम्हें निगोड़ी शतरंज इतनी प्यारी है ! चाहे कोई मर ही जाय, पर उठने का नाम ही नहीं लेते ! नौज कोई तुम-जैसा आदमी हो !

मिर्ज़ा—क्या कहूँ, मीर साहब मानते ही न थे। बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ा कर आया हूँ।

बेगम—क्या जैसे वह खुद निखट्टू हैं, वैसे ही सबको समझते हैं ? उनके भी बाल-बच्चे हैं ; या सबका सफाया कर डाला ?

मिर्ज़ा—बड़ा लती आदमी है। जब आ जाता है, तब मजबूर होकर मुझे भी खेलना ही पड़ता है।

बेगम—दुतकार क्यों नहीं देते ?

मिर्ज़ा—बराबर के आदमी हैं, उम्र में, दर्जे में, मुझसे दो अंगुल ऊँचे। मुलाहिज़ा करना ही पड़ता है।

बेगम—तो मैं ही दुतकारे देती हूँ। नाराज़ हो जायँगे, हो जायँ। कौन किसी की रोटियाँ चला देता है। रानी रूठेंगी, अपना सुहाग लेंगी। हिरिया, जा, बाहर से शतरंज उठा ला। मीर साहब से कहना, मियाँ अब न खेलेंगे ; आप तशरीफ ले जाइए।

मिर्ज़ा—हाँ-हाँ, कहीं ऐसा ग़ज़ब भी न करना! ज़लील करना चाहती हो क्या !—ठहर हिरिया, कहाँ जाती है।

बेगम—जाने क्यों नहीं देते। मेरा ही ख़ून पिए, जो उसे रोके। अच्छा उसे रोका ; मुझे रोको, तो जानूँ।

यह कह कर बेगम साहबा झल्लाई हुई दीवानख़ाने की तरफ चलीं। मिर्ज़ा बेचारे का रंग उड़ गया। बीबी की मिन्नतें करने लगे—"ख़ुदा के लिए, तुम्हें हज़रत हुसेन की क़सम। मेरी ही मैयत देखे, जो उधर जाय !" लेकिन बेगम ने एक न मानी। दीवानख़ाने के द्वार तक गईं ; पर एकाएक पर-पुरुष के सामने जाते हुए पाँव बँध-से गए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भीतर झाँका। संयोग से कमरा ख़ाली था। मीर साहब ने दो-एक मुहरे इधर-उधर कर दिए थे, और अपनी सफाई जताने के लिए बाहर टहल रहे थे। फिर क्या था, बेगम ने अन्दर पहुँच कर बाज़ी उलट दी; मुहरे कुछ तख़्त के नीचे फेंक दिए, कुछ बाहर; और किवाड़े अंदर से बंद करके कुंडी लगा दी। मीर साहब दरवाजे पर तो थे ही, मुहरे बाहर फेंके जाते देखे, चूड़ियों की झनक भी कान में पड़ी। फिर दरवाजा बंद हुआ, तो समझ गए, बेगम साहबा बिगड़ गईं। चुपके से घर की राह ली!

मिर्ज़ा ने कहा—तुमने ग़ज़ब किया!

बेगम—अब मीर साहब इधर आए, तो खड़े-खड़े निकलवा दूँगी। इतनी लौ ख़ुदा से लगाते, तो क्या ग़रीब हो जाते! आप तो शतरंज खेलें, और मैं यहाँ चूल्हे-चक्की की फ़िक्र में सिर खपाऊँ! ले जाते हो हकीम साहब के यहाँ कि अब भी ताम्मुल है?

मिर्ज़ा घर से निकले, तो हकीम के घर जाने के बदले मीर साहब के घर पहुँचे; और सारा वृत्तांत कहा। मीर साहब बोले--मैंने तो जब मुहरे बाहर आते देखे, तभी ताड़ गया। फ़ौरन भागा। बड़ी गुस्सेवर मालूम होती हैं। मगर आपने उन्हें यों सिर चढ़ा रक्खा है, यह मुनासिब नहीं। उन्हें इससे क्या मतलब कि आप बाहर क्या करते हैं। घर का इन्तजाम करना उनका काम है; दूसरी बातों से उन्हें क्या सरोकार?

मिर्ज़ा—खैर यह तो बताइये, अब कहाँ जमाव होगा?

मीर—इसका क्या ग़म। इतना बड़ा घर पड़ा हुआ है। बस यहीं जमे।

मिर्ज़ा—लेकिन बेग़म साहबा को कैसे मनाऊँगा? जब घर बैठा रहता था, तब तो वह इतना बिगड़ती थीं; यहाँ बैठक होगी तो शायद ज़िंदा न छोड़ेंगी।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मीर—अजी, बकने भी दीजिए, दो-चार रोज़ में आप ही ठीक हो जायँगी। हाँ, आप इतना कीजिये कि आज से ज़रा तन जाइये

२

मीर साहब की बेगम किसी अज्ञात कारण से उनका घर से दूर रहना ही उपयुक्त समझती थीं। इसलिये वे उनके शतरंज-प्रेम की कभी आलोचना न करतीं; बल्कि कभी कभी मीर साहब को देर हो जाती, तो याद दिला देती थीं। इन कारणों से मीर साहब को भ्रम हो गया था कि मेरी स्त्री अत्यंत विनयशील और गम्भीर है, लेकिन जब दीवानख़ाने में बिसात बिछने लगी, और मीर साहब दिन भर घर में रहने लगे तो उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। उनकी स्वाधीनता में बाधा पड़ गई। दिन भर दरवाज़े पर झाँकने को तरस जातीं।

उधर नौकरों में भी काना-फूसी होने लगी। अब तक दिन भर पड़े-पड़े मक्खियाँ मारा करते थे। घर में चाहे कोई आवे, चाहे कोई जाय, उनसे कुछ मतलब न था। अब आठों पहर की धौंस हो गई। कभी पान लाने का हुक्म होता, कभी मिठाई का और हुक्का तो किसी प्रेमी के हृदय की भाँति नित्य जलता ही रहता था। वे बेगम साहबा से जा-जाकर कहते—"हुज़ूर, मियाँ की शतरंज तो हमारे जी का जंजाल हो गई! दिन भर दौड़ते-दौड़ते पैरों में छाले पड़ गये। यह भी तो कोई खेल है कि सुबह को बैठे. तो शाम ही कर दी! घड़ी-आध-घड़ी दिल-बहलाव के लिये खेल लेना बहुत है। खैर, हमें कोई शिकायत नहीं, हुज़ूर के गुलाम हैं, जो हुक्म होगा, बजा ही लावेंगे, मगर यह खेल मनहूस है। इसका खेलनेवाला कभी पनपता नहीं, घर पर कोई-न-कोई आफ़त ज़रूर आती है। यहाँ तक कि एक के पीछे महल्ले-के-महल्ले तबाह होते देखे गये हैं। सारे महल्ले में यही चर्चा होती रहती है। हुज़ूर का नमक खाते हैं, अपने आक़ा की बुराई सुन-सुन कर रंज होता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। मगर क्या करें।" इस पर बेगम साहबा कहतीं—"मैं तो खुद इसको पसंद नहीं करती। पर वह किसी की सुनते ही नहीं, तो क्या किया जाय।"

महल्ले में भी दो-चार पुराने ज़माने के लोग थे, वे आपस में भाँति-भाँति के अमंगल की कल्पनाएँ करने लगे—"अब ख़ैरियत नहीं। जब हमारे रईसों का यह हाल है, तो मुल्क का खुदा ही हाफ़िज़। यह बादशाहत शतरंज के हाथों तबाह होगी। आसार बुरे हैं।"

राज्य में हाहाकार मचा हुआ था। प्रजा दिन-दहाड़े लूटी जाती थी। कोई फ़रियाद सुननेवाला न था। देहातों की सारी दौलत लखनऊ में खिंची चली जाती थी, और वह वेश्याओं में, भाँड़ों में और विलासिता के अन्य अंगों की पूर्ति में उड़ जाती थी। अँगरेज़ कम्पनी का ऋण दिन-दिन बढ़ता जाता था। कमली दिन-दिन भीगकर भारी होती जाती थी। देश में सुव्यवस्था न होने के कारण वार्षिक कर भी न वसूल होता था। रेज़ीडेंट बार-बार चेतावनी देता था, पर यहाँ तो विलासिता के नशे में चूर थे, किसी के कानों पर जूँ न रेंगती थी।

ख़ैर, मीर साहब के दीवानख़ाने में शतरंज होते कई महीने गुज़र गए। नए-नए नक्शे हल किए जाते, नए-नए किले बनाये जाते, नित नई व्यूह-रचना होती, कभी-कभी खेलते झौड़ हो जाती, तू-तू मैं-मैं तक की नौबत आ जाती। पर शीघ्र ही दोनों मित्रों में मेल हो जाता। कभी-कभी ऐसा होता कि बाज़ी उठा दी जाती, मिर्ज़ाजी रूठकर अपने घर चले आते, मीर साहब अपने घर में जा बैठते। पर रात-भर की निद्रा के साथ सारा मनोमालिन्य शांत हो जाता था। प्रातःकाल दोनों मित्र दीवानख़ाने में आ पहुँचते थे।

एक दिन दोनों मित्र बैठे शतरंज की दलदल में ग़ोते खा रहे थे कि इतने में घोड़े पर सवार एक बादशाही फ़ौज का अफ़सर मीर साहब का नाम पूछता हुआ आ पहुँचा। मीर साहब के होश उड़ गए! यह क्या बला सिर पर आई! यह तलबी किस लिये हुई! अब ख़ैरियत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं नज़र आती ! घर के दरवाज़े बन्द कर लिये। नौकरों से बोले—"कह दो, घर में नहीं हैं।"

सवार—घर में नहीं, तो कहाँ हैं ?

नौकर—यह मैं नहीं जानता। क्या काम है ?

सवार—काम तुझे क्या बताऊँ ? हुज़ूर में तलबी है—शायद फ़ौज के लिये कुछ सिपाही माँगे गये हैं। जागीरदार हैं कि दिल्लगी ! मोरचे पर जाना पड़ेगा तो आँटे-दाल का भाव मालूम हो जायगा !

नौकर—अच्छा, तो जाइये, कह दिया जायगा।

सवार—कहने की बात नहीं है। मैं कल खुद आऊँगा। साथ ले जाने का हुक्म हुआ है।

सवार चला गया। मीर साहब की आत्मा काँप उठी। मिर्ज़ा से बोले—कहिए जनाब, अब क्या होगा ?

मिर्ज़ा—बड़ी मुसीबत है। कहीं मेरी भी तलबी न हो।

मीर—कम्बख़्त कल फिर आने को कह गया है !

मिर्ज़ा—आफ़त है, और क्या ! कहीं मोरचे पर जाना पड़ा, तो बेमौत मरे।

मीर—बस, यही एक तदबीर है कि घर पर मिलो ही नहीं। कल से गोमती पर कहीं वीराने में नक्शा जमे। वहाँ किसे ख़बर होगी ? हज़रत आकर आप लौट जायँगे।

मिर्ज़ा—वल्लाह, आपको ख़ूब सूझी ! इसके सिवा और कोई तदबीर नहीं है।

इधर मीर साहब की बेगम उस सवार से कह रही थीं—"तुमने ख़ूब धता बताई।" उसने जवाब दिया—"ऐसे गावदियों को तो चुटकियों पर नचाता हूँ। इनकी सारी अक्ल और हिम्मत तो शतरंज ने चर ली। अब भूल कर भी घर पर न रहेंगे।"

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

३

दूसरे दिन से दोनों मित्र मुँह अँधेरे घर से निकल खड़े होते। बगल में एक छोटी-सी दरी दबाए, डिब्बे में गिलौरियाँ भरे, गोमती-पार की एक पुरानी वीरान मसजिद में चले जाते, जिसे शायद नवाब आसिफुद्दौला ने बनवाया था। रास्ते में तम्बाकू, चिलम और मदरिया ले लेते और मसजिद में पहुँच, दरी बिछा, हुक्का भर कर शतरंज खेलने बैठ जाते थे। फिर उन्हें दीन-दुनिया की फ़िक्र न रहती थी। 'किश्त', 'शह' आदि दो-एक शब्दों के सिवा उनके मुँह से और कोई वाक्य नहीं निकलता था। कोई योगी भी समाधि में इतना एकाग्र न होता होगा। दोपहर को जब भूख मालूम होती, तो दोनों मित्र किसी नानबाई की दूकान पर जाकर खाना खा आते, और चिलम हुक्का पीकर फिर संग्राम-क्षेत्र में डट जाते। कभी-कभी तो उन्हें भोजन का भी ख़याल न रहता था।

इधर देश की राजनीतिक दशा भयंकर होती जा रही थी। कम्पनी की फ़ौजें लखनऊ की तरफ़ बढ़ी चली आती थीं। शहर में हलचल मची हुई थी। लोग बाल-बच्चों को ले-लेकर देहातों में भाग रहे थे। पर हमारे दोनों खिलाड़ियों को इसकी ज़रा भी फ़िक्र न थी। वे घर से आते, तो गलियों में होकर। डर था कि कहीं किसी बादशाही मुलाज़िम की निगाह न पड़ जाय जो, बेगार में पकड़ जायँ। हज़ारों रुपये सालाना की जागीर मुफ़्त में हज़म करना चाहते थे।

एक दिन दोनों मित्र मसजिद के खँडहर में बैठे हुए शतरंज खेल रहे थे। मीर की बाज़ी कुछ कमज़ोर थी। मिर्ज़ा साहब उन्हें किश्त-पर-किश्त दे रहे थे। इतने में कम्पनी के सैनिक आते हुए दिखाई दिए। यह गोरों की फौज थी जो लखनऊ पर अधिकार जमाने के लिये आ रही थी।

मीर साहब बोले– अँगरेज़ी फौज आ रही है, ख़ुदा ख़ैर करे।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिर्ज़ा—आने दीजिए, किश्त बचाइये। लो यह किश्त !

मीर—तोपख़ाना भी है। कोई पाँच हज़ार आदमी होंगे। कैसे जवान हैं। लाल बंदरों के-से मुँह हैं। सूरत देख कर ख़ौफ़ मालूम होता है।

मिर्ज़ा—जनाब, हीले न कीजिए। ये चकमे किसी और को दीजिएगा—यह किश्त !

मीर—आप भी अजीब आदमी हैं। यहाँ तो शहर पर आफ़त आई हुई है, और आपको किश्त की सूझी हुई है ! कुछ इसकी भी ख़बर है कि शहर घिर गया, तो घर कैसे चलेंगे ?

मिर्ज़ा—जब घर चलने का वक्त आवेगा, तो देखा जायगा—यह किश्त ! बस, अब की शह में मात है।

फ़ौज निकल गई। दस बजे का समय था। फिर बाज़ी बिछ गई।

मिर्ज़ा बोले—आज खाने की कैसे ठहरेगी ?

मीर—अजी, आज तो रोज़ा है। क्या आपको ज्यादा भूख मालूम होती है ?

मिर्ज़ा—जी नहीं। शहर में न-जाने क्या हो रहा है।

मीर—शहर में कुछ न हो रहा होगा। लोग खाना खा-खाकर आराम से सो रहे होंगे। हुज़ूर नवाब साहब भी ऐशगाह में होंगे।

दोनों सज्जन फिर जो खेलने बैठे तो तीन बज गए। अब की मिर्ज़ाजी की बाज़ी कमजोर थी। चार का गजर बज ही रहा था कि फ़ौज की वापसी की आहट मिली। नवाब वाजिदअली शाह पकड़ लिए गए थे, और सेना उन्हें अज्ञात स्थान को लिए जा रही थी। शहर में न कोई हलचल थी, न मार-काट। एक बूँद भी खून नहीं गिरा था। आज तक किसी स्वाधीन देश के राजा की पराजय इतनी शांति से. इस तरह ख़ून बहे बिना न हुई होगी। यह वह अहिंसा न थी, जिस पर देवगण प्रसन्न होते हैं। यह वह कायरपन था, जिस पर बड़े

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

से-बड़े कायर भी आँसू बहाते हैं। अवध के विशाल देश का नवाब बंदी बना चला जाता था, और लखनऊ ऐश की नींद में मस्त था। यह राजनीतिक अधःपतन की सीमा थी।

मिर्ज़ा ने कहा—हुज़ूर नवाब साहब को ज़ालिमों ने क़ैद कर लिया है।

मीर—होगा, यह लीजिए शह !

मिर्ज़ा—जनाब ज़रा ठहरिए। इस वक्त इधर तबीयत नहीं लगती। बेचारे नवाब साहब इस वक्त खून के आँसू रो रहे होंगे।

मीर—रोया ही चाहें, यह ऐश वहाँ कहाँ नसीब होगा - यह किस्त !

मिर्ज़ा—किसी के दिन बराबर नहीं जाते। कितनी दर्दनाक हालत है।

मीर—हाँ, सो तो है ही– यह लो फिर किश्त ! बस अब की किश्त में मात है, बच नहीं सकते।

मिर्ज़ा—खुदा की क़सम, आप बड़े बेदर्द हैं। इतना बड़ा हादसा देखकर भी आपको दुख नहीं होता। हाय ग़रीब वाजिदअली शाह !

मीर—पहले अपने बादशाह को तो बचाइए फिर नवाब साहब का मातम कीजिएगा। यह किश्त और मात। लाना हाथ !

बादशाह को लिए हुए सेना सामने से निकल गई। उनके जाते ही मिर्ज़ा ने फिर बाज़ी बिछा दी। हार की चोट बुरी होती है। मीर ने कहा—"आइए, नवाब साहब के मातम में एक मरसिया कह डालें।" लेकिन मिर्ज़ाजी की राजभक्ति अपनी हार के साथ लुप्त हो चुक थी, वह हार का बदला चुकाने के लिए अधीर हो रहे थे।

४

शाम हो गई। खँडहर में चमगादड़ों ने चीखना शुरू किया। अबाबीलें आ-आकर अपने-अपने घोसलों में चिमटीं। पर दोनों खिलाड़ी डटे थे, मानो दो खून के प्यासे सूरमा आपस में लड़ रहे हों।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिर्ज़ाजी तीन बाज़ियाँ लगातार हार चुके थे, इस चौथी बाजी का रंग भी अच्छा न था। वह बार-बार जीतने का दृढ़ निश्चय करके सँभल-कर खेलते थे, लेकिन एक-न-एक चाल ऐसी बेढब आ पड़ती थी, जिससे बाजी खराब हो जाती थी। हर बार हार के साथ प्रतिकार की भावना और भी उग्र होती जाती थी। उधर मीर साहब मारे उमंग के ग़ज़लें गाते थे, चुटकियाँ लेते थे, मानो कोई गुप्त धन पा गए हों। मिर्ज़ाजी सुन-सुनकर झुँझलाते और हार की झेंप मिटाने के लिए उनकी दाद देते थे। पर ज्यों-ज्यों बाज़ी कमज़ोर पड़ती थी, धैर्य हाथ से निकलता जाता था। यहाँ तक कि वह बात-बात पर झुझलाने लगे—"जनाब; आप चाल न बदला कीजिए। यह क्या कि एक चाल चले, और फिर उसे बदल दिया। जो कुछ चलना हो एक बार चल लीजिए। यह आप मुहरे पर ही हाथ क्यों रखे रहते हैं? मुहरे को छोड़ दीजिए। जब तक आपको चाल न सूझे, मुहरा छूइए ही नहीं। आप एक-एक चाल आध-आध घंटे में चलते हैं। इसकी सनद नहीं। जिसे एक चाल चलने में पाँच मिनट से ज्यादा लगे, उसकी मात समझी जाय। फिर आपने चाल बदली! चुपके से मुहरा वहीं रख दीजिये।"

मीर साहब का फ़रज़ी पिटता था। बोले—मैंने चाल चली ही कब थी?

मिर्ज़ा—आप चाल चल चुके हैं। मुहरा वहीं रख दीजिए—उसी घर में।

मीर—उस घर में क्यों रक्खूँ? हाथ से मुहरा छोड़ा कब था।

मिर्ज़ा—मुहरा आप क़यामत तक न छोड़ें, तो क्या चाल ही न होगी? फ़रज़ी पिटते देखा, तो धाँधली करने लगे!

मीर—धाँधली आप करते हैं। हार-जीत तक़दीर से होती है, धाँधली करने से कोई नहीं जीतता।

मिर्ज़ा—तो इस बाज़ी में आपकी मात हो गई।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मीर—मुझे क्यों मात होने लगी।

मिर्ज़ा—तो आप मुहरा उसी घर में रख दीजिए, जहाँ पहले रक्खा था।

मीर—वहाँ क्यों रक्खूँ? नहीं रखता।

मिर्ज़ा—क्यों न रखिएगा? आपको रखना होगा।

तकरार बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी टेक पर अड़े थे। न यह दबता था न वह। अप्रासंगिक बातें होने लगीं। मिर्ज़ा बोले—किसी ने ख़ानदान में शतरंज खेली होती, तब तो इसके क़ायदे जानते। वे तो हमेशा घास छीला किए, आप शतरंज क्या खेलिएगा। रियासत और ही चीज़ है। जागीर मिल जाने ही से कोई रईस नहीं हो जाता।

मीर—क्या! घास आपके अब्बाजान छीलते होंगे! यहाँ तो पीढ़ियों से शतरंज खेलते चले आते हैं।

मिर्ज़ा—अजी जाइए भी, गाज़िउद्दीन हैदर के यहाँ बावर्ची का काम करते-करते उम्र गुज़र गई, आज रईस बनने चले हैं। रईस बनना कुछ दिल्लगी नहीं।

मीर—क्यों अपने बुजुर्गों के मुँह में कालिख लगाते हो—वे ही बावर्ची का काम करते होंगे। यहाँ हमेशा बादशाह के दस्तरख़्वान पर खाना खाते चले आए हैं।

मिर्ज़ा—अरे चल चरकटे, बहुत बढ़-बढ़ कर बातें न कर।

मीर—ज़बान सँभालिए, वर्ना बुरा होगा। मैं ऐसी बातें सुनने का आदी नहीं हूँ। यहाँ तो किसी ने आँखें दिखाईं कि उसकी आँखें निकालीं। है हौसला?

मिर्ज़ा - आप मेरा हौसला देखना चाहते हैं, तो फिर आइए, आज दो-दो हाथ हो जाँय, इधर या उधर।

मीर—तो यहाँ तुमसे दबनेवाला कौन है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दोनों दोस्तों ने कमर से तलवारें निकाल लीं। नवाबी ज़माना था, सभी तलवार, पेशक़ब्ज़, कटार वग़ैरह बाँधते थे। दोनों विलासी थे पर कायर न थे। उनमें राजनीतिक भावों का अध:पतन हो गया था। बादशाहत के लिए क्यों मरें? पर व्यक्तिगत वीरता का अभाव न था। दोनों ने पैंतरे बदले, तलवारें चमकीं, छपाछप की आवाज़ें आईं। दोनों ज़ख्म खाकर गिरे, और दोनों ने वहीं तड़प-तड़प कर जानें दे दीं। अपने बादशाह के लिए जिनकी आँखों से दो बूँद आँसू न निकला, उन्होंने शतरंज के वज़ीर की रक्षा में प्राण दे दिए।

अँधेरा हो चला था। बाज़ी बिछी हुई थी। दोनों बादशाह अपने-अपने सिंहासनों पर बैठे मानों इन दोनों वीरों की मृत्यु पर रो रहे थे।

चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था। खँडहर की फूटी हुई मेहराबें, गिरी हुई दीवारें और धूलि-धूसरित मीनारें इन लाशों को देखतीं और सिर धुनती थीं।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्रसाद और प्रेमचन्द की कहानिय

'गुंडा' प्रसाद की सिद्ध रचना है और 'शतरंज के खिलाड़ी' प्रेमचन्द की पहुँची हुई कहानी है। कला की दृष्टि से दोनों पूर्ण हैं। कथावस्तु, चरित्रचित्रण, कथोपकथन, वर्णन, भाषा, शैली, प्रयोजन आदि की दृष्टि से वे पूर्ण हैं। अनुभूति और कला का योग दोनों में पूरा है। हृदय की कसौटी पर भी दोनों खरी उतरती हैं। सहृदय पाठक उन्हें बार-बार पढ़कर भी अतृप्त ही रहता है। उनमें वह निरपेक्ष रमणीयता है जिससे एकान्त में अपने आप पढ़ने से भी वे उतनी ही मधुर लगती हैं जितनी किसी सुरीले और शिक्षित कण्ठ से पढ़ी जाने पर। उनमें वह शुभेच्छा और सद्भावना भी पूरी मात्रा में है जो किसी भी सहृदय में सत्वोद्रेक कर सकती है। इस प्रकार दोनों में बहुत समानता है। इतना ही नहीं, दोनों के क्षेत्र भी समान हैं। दोनों इतिहास के आधार पर चलती हैं, दोनों चरित्र-प्रधान हैं। दोनों अँग्रेजी राज्य के प्रारंभिक युग से सम्बन्ध रखती हैं। दोनों में दो बड़े नगरों के चित्र हैं और साथ ही दोनों में उन गिरते दिनों की एक मानसिक झाँकी है—मनुष्यत्व, वीरत्व और व्यसन की एक मर्मस्पर्शी झलक।

इतनी अधिक समता होने पर भी दोनों में विषमता भी इतनी है कि वे दो भिन्न स्कूलों की कृति कही जा सकती हैं। प्रसाद-स्कूल 'कला के लिए कला' मानता है, उसके लिए कला का मुख्य उद्देश्य आनन्दानुभव है, रसानुभूति है, इसीसे वह देश, काल, व्यक्ति, वस्तु, गति, व्यंजना, शैली और प्रयोजन आदि सबको गौण मानता है, उनकी आत्मा को—उनमें से झलकते हुए व्यङ्ग्य को सर्वस्व मानता है। इसीसे इस स्कूल का विद्यार्थी तटस्थ होकर एक किनारे बैठा रहता है, अपने ध्यान में मग्न रहता है, जब कभी किसी घटना से उसका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्यान-भंग होता है, हृदय छू जाता है, वह लाचार होकर अपने भाव को प्रगट करता है। यही भावाभिव्यक्ति कहानी बन जाती है। प्रेमचन्द-स्कूल इससे सर्वथा भिन्न है। वह आत्मपरिष्कार और लोकसंग्रह को कहानी साहित्य का उद्देश्य मानता है। उसके अनुसार कहानी में ये तीन गुण अवश्य होने चाहिएँ—(१) आध्यात्मिक या नैतिक उपदेश, (२) अत्यन्त सरल भाषा और (३) स्वाभाविक वर्णन-शैली। इन्हीं तीन सिद्धान्तों के कारण यह स्कूल बड़ा लोकप्रिय रहा है और लोकमंगलकारी भी।

यद्यपि दोनों कहानियों में हृदय स्पर्श करने की क्षमता है—अनुभूति की पूरी मात्रा है, तथापि दोनों में भेद स्पष्ट है। एक में गुणों की ओर दृष्टि है, दूसरी में दोष देखकर सुधारने की सदिच्छा। एक में कला की उदारता है—दूसरी में मनोरंजन और स्वाभाविकता की सीमा है। गुंडा कहानी का कोई उपदेश नहीं है—चाहे कोई संदेश हो। उसकी भाषा प्राञ्जल हिन्दी है और शैली पूर्ण रूप से नाटकीय। ये ही तो कलापूर्ण कहानी के लक्षण हैं। और 'शतरंज के खिलाड़ी' में तो ऊपर के तीनों सिद्धान्तों का पूर्ण निर्वाह हुआ है। नैतिक उपदेश की प्रवृत्ति तो कहीं मात्रा से अधिक प्रकट हो गई है। उदाहरण के लिए 'इस संप्रदाय के लोगों से दुनियाँ अब भी खाली नहीं है'। 'यह राजनीतिक अधःपतन की सीमा है' आदि के समान वाक्य व्यंग्य को खोलकर रस का अपकर्ष कर देते हैं। हाँ, बहुत साधारण पाठकों के लिए बात अवश्य स्पष्ट हो जाती है।

अन्त में सब प्रकार से देख लेने पर भी दोनों कहानी अपने-अपने ढंग की बेजोड़ चीजें हैं, नमूने की रचनाएँ हैं।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'जोग' की झाँकी

हिमालय, विन्ध्य, सह्याद्रि जैसे पहाड़ गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र जैसे नदी-नद, ऊलर-मंचर जैसे सरोवर, जिस देश में हों, उसमें अगर महान् और भीषण जल-प्रपात न हों, तो प्रकृति माता कृतार्थ कैसे हो ? दक्षिण में उत्तर-कानड़ा ज़िला और मैसूर राज्य की सरहद पर ऐसा जल-प्रपात है, जो दुनिया में सर्वप्रथम नहीं तो, सर्वश्रेष्ठ में से एक अवश्य है। अङ्गरेज़ी किताबों में उसका नाम है, 'गोरसप्पा फाल्स', लेकिन हमारे देश का उसका नाम है 'जोग'।

लार्ड कर्जन जब भारत आया, तब 'जोग' का प्रपात देखने के लिए वह इतना लालायित था कि भारत आते ही उसने 'जोग' जाने की तैयारी कर दी और अपनी यात्रा से उस प्रपात की प्रतिष्ठा बढ़ाई। जिस स्थान पर खड़े होकर उसने 'जोग' के अद्भुत दृश्य का अपने नयनों से आकंठ पान किया, मैसूर राज्य ने उसका नाम 'कर्जन-सीट' कर दिया है।

मैसूर राज्य ने उसी स्थान के नज़दीक एक अतिथिशाला बनवा दी है, जिसके विज़िटर्स-बुक में देश-विदेश के रसिक और प्रकृति-प्रेमी यात्रियों ने अपने आनन्द-उद्गार लिख रखे हैं। अगर उद्गारों का एक संग्रह छपा दिया जाय, तो यह एक असाधारण प्रकृति-काव्य-संग्रह बन जाय। यह सब काव्य उच्चकोटि के हैं ; पर 'जोग' का प्रत्यक्ष दर्शन उन काव्यों की अपूर्णता ही प्रमाणित करता है, और एकदम मुंह से निकल पड़ता है—"एतावान् अस्य महिमा ज्यायांश्च पूरुषः" (इतनी बड़ी उसकी महिमा ! और वह इससे भी बड़ा !)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

छोटी सी शरावती नदी के तीन नाम हैं—पहले उसका नाम होता है भारंगी या वराहगंगा, बीच में शरावती और जहाँ वह समुद्र से मिलती है, वहाँ उसे कहते हैं बालनदी। शरावती के प्रवाह में 'जोग' अपने प्रपात से एक रोमांचकारी दृश्य नहीं दिखाता, तब भी वह अपने सौन्दर्य से मनुष्य का मन अवश्य हरण करती। किन्तु तब वह भारत की अन्यान्य नदियों में से एक नदी रह जाती—अखिल-भारतीय विशेषता नहीं पाती। इस प्रपात के कारण शरावती भारत की एक अद्वितीय नदी हो गई है।

जब मैं 'जोग' देखने पहले पहल चला, तब महात्माजी के साथ दक्षिण की खादी-यात्रा पर था। हम 'शिमोगा-सागर' तक पहुँचे थे। सागर में मैंने पूज्य बापूजी से कहा—"यहाँ से १५ मील पर 'गोरसप्पा' का प्रपात है। आप देखने चलें।" बापूजी ने कहा—"मैं कैसे जा सकता हूँ? मैं अगर ऐसी स्वच्छन्दता करने लगूँ तो स्वराज्य का काम कौन करेगा?···तुम जाओ। तुम शिक्षा-शास्त्री हो। वहाँ हो आकर विद्यार्थियों को कुछ न कुछ दे सकोगे। मेरा वहाँ जाना तो स्वच्छन्दता होगी।" मैंने कहा—"लेकिन 'गोरसप्पा' ९६० फीट की ऊँचाई से गिरता है। लार्ड कर्ज़न ख़ास कर इसे देखने आया था।" बापूजी ने अक्षुब्ध भाव से कहा—"आकाश का पानी इससे भी अधिक ऊँचाई से गिरता है।" एक बात में हार कर मैंने दूसरा मंसूबा बाँधा—"आप न सही तो कम से कम महादेव भाई को 'गोरसप्पा' जाने की इजाज़त दे दीजिए।" मैं जानता था कि उस दिन महादेव भाई को बहुत काम था। बापूजी की आज्ञा बिना वे आ नहीं सकते थे। बापूजी ने यहाँ भी ठंढा-सा ज़वाब दे दिया—"महादेव नहीं जायगा। मैं ही उसका 'गोरसप्पा' हूँ। तुम और राजा जी जाओ।" अन्त में उन दोनों को छोड़ कर राजा जी, मैं तथा कई मित्रगण 'जोग' का अलौकिक दृश्य देखने चल पड़े। वह दर्शन क्या था—मानों विराट का विभूति-दर्शन।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उस प्रसंग का वर्णन मैंने गुजराती में लिखा है, और मेरे 'लोक-माता' नामक ग्रंथ में यह प्रकट भी हो चुका है। वह अद्भुत दृश्य देखकर एक कुतूहल तो तृप्त हुआ, लेकिन यह नदी इतनी ऊँचाई से कूदने के बाद आगे कहाँ जाती है, कैसे जाती है, कैसे दीख पड़ती है, सरित्पति के साथ उसका संगम कैसा होता है यह सब देखने की और शरावती के वक्षस्थल पर बच्चों की भाँति नौका-विहार करने की इच्छा तीव्र वेग से जागृत हुई। सत्यसंकल्प अन्तरात्मा ने उस इच्छा को आशीर्वाद दिया, और बारह बरस के बाद 'जोग' के दुबारा दर्शन का सौभाग्य मिल गया। पहली बार नदी के उद्गम से हम प्रपात की ओर गये थे। अब की बार नदी मुख से प्रवेश करके किश्तो में प्रतीप सफर करते हम प्रपात की तरफ गये, और जहाँ नौका ठहर गई, वहाँ तैलवाहन (मोटर) के सहारे पहाड़ की घाटी पर चढ़कर राजा प्रपात के सिर तक पहुँच गये।

शरावती के इस अर्धचन्द्राकार दर्जे में चार प्रपात हैं। दाहिनी ओर 'राजा प्रपात' ऊपर से जो गिरता है, तो एकदम कहीं भी रुके बिना ६६० फीट की गहराई में कूद पड़ता है। सचमुच यह राजा है। उसकी जल-राशि, उसका उन्माद और उसकी हिम्मत जगत् के सम्राट् की-सी ही है। उसी की बाईं ओर महारुद्र की जैसी गर्जना करता हुआ रुद्र (Roarer) प्रपात राजा के चरणों में आ गिरता है। रुद्र की गर्जना मीलों तक उस घाटी और उसके आस-पास की पहाड़ियों को निनादित कर देती है। उसकी ध्वनि को न हम मेघ-गम्भीर कह सकते हैं न सागर-गम्भीर। मेघ-गर्जना आकाश-विद्रावी होते हुए भी क्षण-जीवी होता है; और सागर की सनातन घोषणा में ज्वार-भाटा का आन्दोलन होता है। रुद्र की ध्वनि अविरत, अखंड और धारावाहिक होती है। उसका नशा कुछ अजीब क़िस्म का होता है।

राजा और रुद्र दुनियाँ में कहीं भी सम्राट् की पदवी आसानी से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन 'जोग' का वैभव तो वीरभद्र के अनेक रूप से आकाश में उड़ते उसके सफेद जटा-जाल के कारण है। वीरभद्र का प्रपात हाथी के कुंभस्थल के सदृश एक चट्टान पर जैसे ही गिरता है कि उसमें से आतिशबाज़ी के बाण के जैसे अनगिनत फ़व्वारे फूट पड़ते हैं और वे ऊँचे-ऊँचे उड़ते ही जाते हैं। क्या यह शिवजी की तांडव नृत्य है? या सूर्य-बिम्ब के पृष्ठभाग से निकलनेवाली सर्वसंहारकारिणी किन्तु कल्पनामनोहर ज्वालाएँ हैं? या भूमि माता के वात्सल्य की स्तन्य-धारा के फुहारे फूट निकले हैं? सचमुच वीरभद्र, देखनेवाली आँखों को, पागल बना देता है!

वीरभद्र (Rocket) की बाईं ओर कर्पूरगौरी, तन्वगी तथा अनुदरा पर्वतकन्या पार्वती (Lady) अपने लावण्य से हर किसी को आह्लादित करती है। इन चारों प्रपातों का मानों रक्षण करने के लिये ही बाईं और दाहिनी ओर दो बड़े-बड़े पहाड़ खड़े हुए हैं। खड़े-खड़े दूसरा और कर ही क्या सकते हैं। इसलिए प्रपातों की अखंड गर्जना को प्रतिपल प्रतिध्वनित करते रहना, उनके इन्द्र धनुओं को धारण करना और छोटी-मोटी वनस्पति को अङ्ग में लगाए रोमांचित होना—यही उनका अखिल उद्योग-सा हो गया है।

अबकी बार जब हम गये, गर्मी के दिन थे। भारंगी का जल बहुत कुछ कम हो गया था। वीरभद्र की जटाएँ भी देखने में नहीं आती थीं। रुद्र की फलागें भी कुछ छोटी हो गई थीं। पार्वती ने भी विरहिणी का रूप धारण कर लिया था। हमारी आशा थी कि कम से कम राजा का वैभव तो पहले जैसा होगा; किन्तु विश्वयज्ञ करने के बाद कोई सम्राट् जैसा अकिंचन हो जाता है और उसीसे अपना वैभव व्यक्त करता है, वैसी ही दशा हमारे इस राजा प्रताप की हो गई थी।

उस दफे जब हम 'जोग' देखने गए थे, तब पहले मैसूर-बाजू पर गए; और वहाँ की अतिथि-शाला में ठहरे थे। इस बार ठहरना तो था

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं ; इसलिए उत्तर-बाजू से दर्शन के लिए हम प्रस्थित हुए और जहाँ से राजा की धारा गिरती थी, दौड़ते-दौड़ते वहाँ जा पहुँचे। कड़ी धूप और ठंढी फुहार दोनों के बीच हमारी जो स्थिति हुई, उसका वर्णन क्या किया जाय ? हम राजा के मुकुट तक पहुँच गये थे। गरम गरम पत्थरों के ऊपर सोकर वहाँ से हमने नीचे की घाटी में झाँका, तो कभी ख्वाब में भी नहीं आया था कि ऐसा दृश्य हमने कहीं देखा। ऊपर से राजा की धारा जो गिरती थी, वह नीचे ज़मीन तक पहुँचती ही न थी। ऊपर हम देखते थे कि मस्त हाथी की सूँड़ जैसी एक बड़ी जलधारा गिर रही है। नीचे गिरते गिरते शतधा विदीर्ण होकर उसकी सहस्र धाराएँ बन गईं। कुछ और नीचे जाते ही उन धाराओं के बड़े-बड़े जल-बिन्दु बनकर मौक्तिक-माला की शोभा धारण करने लगे। ये मौक्तिक भी चूर्ण होकर मोटे मोटे कण हो गए। अब तो इन्होंने सीधी नीचे जाना छोड़कर कुछ स्वच्छन्द विहार शुरू कर दिया। कण भी भिन्न होकर शीकर पुञ्ज में परिणत हो गए और बादलों के जैसे बिचरने लगे। लेकिन इतने से ही प्रकृति-माता को सन्तोष नहीं हुआ। इन बादलों का भी धुआँ बन गया, और आते हुए पवन के साथ उड़-उड़ कर ये सारी हवा को शीतल बनाने लगे। आश्चर्य तो यह था कि इतनी बड़ी जलधारा की एक छोटी बूंद भी ज़मीन तक नहीं पहुँचती थी। नीचे की ज़मीन गरम और ऊपर की हवा ठंडी—ऐसी स्थिति देख मुझे तो राजाओं के दान का स्मरण हो आया। प्रजा को दुष्काल-पीड़ित देख कर राजा जब उदार हाथों से धन वितरण करता है, तब उसके जय-जयकार से दिशायें निनादित हो उठती हैं, किन्तु प्रजा के—गरीब जनता के—मुँह तक अनाज का एक कण तक नहीं पहुँचता !

किन्तु इन्द्रधनुओं की शोभा तो अलकेश्वर के मन में भी ईर्ष्या पैदा करनेवाली थी। लेकिन ये इन्द्रधनु भी स्थायी नहीं थे। पवन की लहरें जैसे दिशा बदलती थीं, सीकर-पुंज भी उसी भाँति अपना स्थान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बदल देते थे, और ये इन्द्रधनु—पार्वती के साथ जैसे शंकर नाचे—इधर-से-उधर दौड़ते फिरते थे, क्षण में क्षीण हो जाते थे और क्षण में मयासुर के प्रासाद की शोभा धारण करते थे। कर्म के साथ उसका फल जैसे आता ही है, वैसे ही हरएक धनुष के साथ उसका प्रतिधनु अपना वर्णक्रम उलट कर उपस्थित रहता ही था। उसने अपना स्थान बदल दिया तो इन सुरधनुओं ने भी तुरन्त अपना स्थान बदल दिया। सुरधनु का यह खेल हम बहुत देर तक देखते रहे। जितना अधिक देखते थे, देखने की प्यास उतनी ही बढ़ती जाती थी। हम घंटे-दो-घंटे के ही मेहमान हैं। हम जानते थे कि हमारा पुण्य क्षीण हो रहा है, और हम थोड़े ही समय में मर्त्यलोक में वापस जानेवाले हैं। स्वर्ग के लोभी देवता जिस विषाद के साथ स्वर्ग-सुख का अनुभव करते हैं, पराक्रमी पुरुष अपने यौवन के उत्तरार्द्ध में अपने संकल्प की पूर्ति के लिये जैसा अधीर हो उठता है, वैसे ही हमलोग उस गन्धर्व-नगरी का आँख कान नाक और सारी त्वचा से सेवन करने लगे और साथ ही अपनी कल्पना द्वारा उस आनंद को शतगुणित भी करते रहे।

हमारे साथ दो-तीन लड़कियाँ भी थीं। रात को उनके लिये हमने एक अलग किश्ती मँगाई थी। हम पुरुषों की दो किश्तियाँ दोनों बाजू से चल रही थीं। लड़कियों की किश्ती बीच में थी। जब ये लड़कियाँ गाने लगीं, तब शान्त प्रकृति माता का अञ्चल लहरा उठा। चन्द्रमा ऊपर से हँसता था। नारियल और सुपारी के वृक्षपुंज अपना ऊँचा सिर नज़दीक ला-लाकर संगीत के आलापों का पान कर रहे थे। दूसरे दिन उन आलापों का स्मरण कर वे किस मस्ती से झूम उठते थे! चन्द्रमा अस्त हुआ। अनन्त तारिकाएँ आस-पास की पहाड़ियों को ताकने लगीं और बालाओं का गीत शान्त होकर अनन्त शान्ति में विलीन हो गया। सुबह उठते ही अपनी किश्ती से उन्होंने पुकार-पुकार कर हमें जगाया। यह जलविहार सात्विक शान्तिमय एवं प्रसन्न यौवन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मय था। किन्तु प्रपात का दर्शन तो अद्भुत भीषण चमत्कारी था। उन बालाओं के मुँह पर अब प्रातःकालवाली वह प्रसन्नता नहीं थी। ऐसा अद्भुत दृश्य कैसे सम्भव हो सका! क्या सचमुच हम पृथ्वी पर हैं या स्वप्नसृष्टि में विहार कर रहे हैं—ऐसा विस्मय उनके मुख पर स्पष्ट दीख पड़ता था। वे एक-दूसरे की आँखों में देख-देख कर अपना विस्मय बढ़ा रही थीं, और उनका वह विस्मय देखकर हमें ऐसा अभिमान होता था, मानो हमी इस काव्यमय सृष्टि के जनक हों।

वर्षों से चर्चा चली आ रही है कि गोरसप्पा के प्रपात से बिजली पैदा की जाय या नहीं। अगर शरावती के पानी को एक बाजू लेकर बड़े-बड़े नल के द्वारा, ऊपर से नीचे छोड़ा जाय और उसकी सहायता से बिजली पैदा की जाय, तो सारे मैसूर राज्य में सस्ती से सस्ती बिजली मिलने लग जाय। उत्तर और दक्षिण कानड़ा को भी उसी से सहायता पहुँचाई जा सके। साथ ही लोगों का बड़ा लाभ भी हो। किन्तु ऐसा करने से यह अद्भुत रम्य प्राकृतिक दृश्य हमेशा के लिये नष्ट हो जायगा। अभी तक यह निश्चित नहीं हो पाया है कि इन दोनों में से कौन-सी चीज़ वांछनीय है? हजारों लाखों लोगों को पेटभर खाना मिल सकेगा; सैकड़ों महत्वाकांक्षी नवयुवकों को अपनी योग्यता सिद्ध करने का मौका मिल सकेगा और हजारों जानवरों का दुःख दूर हो सकेगा, साथ ही एक जगह इस तरह का कल-कारखाना सफलता-पूर्वक चल जायगा, तो भारत के सारे प्रपातों से ऐसा ही काम लिया जायगा, और इस तरह देश को एक महान् से महान् अलौकिक शक्ति प्राप्त हो जायगी। तो क्या केवल एक अद्भुत रम्य दृश्य के लोभ से हम लाखों लोगों का दुःख दूर न करें? कला के शौक की भी तो एक मर्यादा होनी चाहिये। अपनी रानी को हँसाने के लिये अपनी राजधानी जलानेवाले बादशाह नीरो में और हमारी इस कला-भक्ति में तत्वतः कौन-सा फ़र्क है?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसके जवाब में जो कुछ कहा जाता है. उसका उल्लेख करने के पहले एक छोटा-सा विषयान्तर यहाँ जरूरी है। यूरोप में जब महायुद्ध शुरू हुआ और वहाँ के लाखों नवयुवक तोप और बन्दूकों के चारा बन गये, तब साहित्यशिरोमणि रोमाँ-रोलाँ की भूत-दया द्रवित हो उठी, और उन्होंने घायलों की सेवा के लिए कुछ थोड़ा-सा प्रवन्ध भी किया। लेकिन जब उभयपक्ष के शत्रुओं ने एक दूसरे की कला-पूर्ण इमारतों पर बम की वर्षा शुरू कर दी, तब तो रोमाँ रोलाँ की कलात्मा पुण्य प्रकोप से भभक उठी, और उन्होंने अपनी आवाज़ बुलन्द करके सारे यूरोप से अपील की - ऐ कमबख़्तो ! एक दूसरे को मारते हो, मारो ; मिट जाना चाहते हो, मिट जाओ ; किन्तु ये कलाकृतियाँ हैं। कम-से-कम इनका नाश तो न करो। यूरोप की आत्मा ने रोमाँ-रोलाँ की यह आर्ष वाणी सुन ली, और वे कलाकृतियों के नाश करने से बाज़ भी आए।

तो क्या सचमुच ही कलाकृतियाँ मनुष्य की आत्मा की द्योतक या प्रेरक हैं ? या उच्च अभिरुचि से आच्छादित विलासिता की ही साधन-सामग्रियाँ हैं ? कला का जिसे सच्चा खयाल है, वह तुरन्त कह उठेगा कि कला और विलासिता के बीच वही अन्तर होता है, जो आसमान या जमीन के बीच है। कलाकृतियों के द्वारा जो निरतिशय आनन्द मनुष्य को होता है, वह सच ही सोती हुई आत्मा को जागरित कर देता है। करोड़ों वोल्ट बिजली पैदा करके लाखों लोगों को खिलाने-पिलाने की व्यवस्था करना कोई बुरी बात नहीं है ; किन्तु कला के द्वारा जो आनन्द और संस्कारिता मानव को मिलती है, वह तो आत्मा का ही खाद्य है।

और यहाँ (जोग) तो मनुष्य-कृत कोई कला-कृति है नहीं। यह तो कलाकारों को भी भव्यता एवं रम्यता की एक साथ ही दीक्षा देने-वाली प्रकृति-माता की विलक्षण विभूति है। इसे बिगाड़ने के पहले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हज़ारों दफे सोचना चाहिये। 'जोग' का प्रपात केवल इसी युग की सम्पत्ति नहीं है। हमारे अनेक ऋषि-पूर्वजों ने इसके सामने बैठकर भगवान् का ध्यान किया होगा और हमारे वंशजों के वंशज भी इसे देख कर अपने जीवन के अज्ञात एवं सुप्त पहलू का साक्षात्कार करेंगे।

उपयोगितावाद की शरण लेकर 'अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन्' वाले पंडित-मूर्ख हम न बनें। इस प्रपात को आबाद रख कर अगर इससे कुछ लाभ उठाया जाय, तो अवश्य उठावें। मानव-बुद्धि के लिए यह बात असम्भव तो नहीं होनी चाहिए, किन्तु इस जोग-तांडव के दर्शन से मनुष्यजाति को वंचित करने का धर्मतः अधिकार तो किसी को नहीं है। मन्दिरों में हम मूर्ति की स्थापना करते हैं। क़ुदरत ने भी उसी भगवान् की यह ऐसी भव्य-विभूतियाँ हमारे सामने खड़ी कर दी हैं। यहाँ केवल दर्शन, ध्यान और उपासना के लिए ही आना चाहिए और अगर हृदय में कुछ संबल हो तो तदाकार बन जाना चाहिए।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'जोग' की झाँकी

प्रकृति की अद्भुत विभूति के साक्षात्कार से जिस संभ्रम का उदय होता है उससे कुछ दर्शकों की अन्तर्वृत्तियाँ तो इतना सहम जाती हैं कि वे मूक होकर देखते ही रह जाते हैं, आगे या पीछे उनसे कुछ कहते नहीं बनता। कुछ ऐसे होते हैं जो दृश्य का पहले तो 'आकण्ठ पान' करते हैं और पीछे अवकाश से समुदित संस्कार को ऐसी भावप्रधान भाषा में व्यक्त करते हैं जो दृश्य की चमत्कारिणी एक विराट् मूर्त्ति तो सामने लाती है, पर एक-एक ब्यौरे का ऐसा पता नहीं देती कि पाठक की आँखों में वह चित्र झूलने लगे जिसकी एक-एक रेखा के अवस्थान, परिप्रेक्षा, प्रतियोग और वर्णभेद अंकन की सजीवता का दम भर रहे हों। कुछ ऐसे भी होते हैं जिनमें दृश्य की साङ्गोपांग समष्टि को सामने खड़ा कर देने की तो क्षमता होती है, किन्तु अद्भुत दृश्य के साथ अपनी भावुकता की मन्त्रणा से, वे अपना ऐसा तादात्म्य कर लेते हैं कि उनका द्रष्टृत्व बहुत कुछ आच्छादित हो जाता है। अर्थात् उनकी सी अवस्था में द्रष्टा दृश्य की दृष्टि से देखता है अपनी दृष्टि से नहीं। पर कुछ, और कुछ ही, ऐसे विशिष्ट दर्शक देखने में आते हैं जो दृश्य के विष्यक् सौन्दर्य की वास्तविक चर्वणा करते हुए भी अपने परिच्छेदक व्यक्तित्व को दृश्य की मोहिनी अनुभूति में घुल नहीं जाने देते, किन्तु अपनी उस दिव्य दृष्टि से प्रकृति के विराट् वैभव का साक्षात्कार करते और अपनी अनुपम कला से औरों को उसका रसास्वाद कराते हैं।

जोग की झाँकी दिलानेवाला सचमुच वैसा ही विशिष्ट दर्शक है। उसका यह प्रपात-वर्णन वर्णन होकर भी उत्कृष्ट श्रेणी का निबन्ध है। प्रज्ञा और भावुकता का ऐसा सुन्दर सहयोग कदाचित् ही देखने को मिलता है। उसकी उपमायें कलाश्रित होती हुई भी तात्कालिक-सी जान पड़ती हैं। संस्कृत साहित्य का परिपक्व ज्ञान अलग ही बोल रहा है। गाँधीजी का प्रसंग वैसा ही कटुसरस

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है जैसा शर्बत में मिर्च का स्वाद । उसमें—दृश्य की मनोरमता स्वतःसिद्ध तथ्य नहीं है द्रष्टा की दृष्टि पर ही वह बहुत कुछ आश्रित रहती है—इस दार्शनिक तत्त्व की व्यञ्जना बड़े अच्छे ढंग से की गई है ।

यद्यपि विहार-योजना और उपभोगसामग्री प्रपात और सरिता की अतुल रमणीयता की माँग पूरा-पूरा पूरी कर रही थी, तथापि वह 'जलविहार' सात्विक शान्तिमय एवं प्रसन्न यौवनमय था । क्योंकि वासना के पंक से मलिन न होकर वह निष्काम था, उसके वर्धमान उत्तरोत्तर उत्कर्ष का कोई अपकर्षक नहीं था, वह व्यक्ति-सम्बन्ध के कारण परिच्छिन्न न होकर अपरिच्छिन्न था, सरस था ।

विशुद्ध कला के मार्मिक पारखी लेखक ने कला के पैरों में से उपयोगिता की बेड़ियाँ कटवा देने की जो जबरदस्त वकालत की है वह उसका पक्षपात नहीं सूचित करता, बल्कि कला और उपयोगिता की कबसे उलझी गाँठ को सुगमता से सुलझाने का एक नया रास्ता बतलाता है ।

भाषा भावानुरूप होकर भी सरल है । वक्रता लाने का प्रयत्न नहीं किया गया है । कहीं-कहीं सरलता लाने की जो बोलती चेष्टा है उसने भाषासौष्ठव को बिगाड़ा नहीं बनाया ही है । लेखक की प्रगतिशीलता और राजनीतिक चेतना इस प्रपात-वर्णन में भी अनुपस्थित नहीं है ।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF.

फूलवालों की आखिरी सैर

पिछले जाड़े में मिर्ज़ा रौशनबख़्त परलोक सिधार गए। सन् १८४३ की पैमाइश थी। दिल्ली के अन्तिम सम्राट् बहादुर शाह के चहेते बेटे शाहरुख ने एक डोमनी को घर में डाल दिया था। रौशत मिर्ज़ा उसके ही पेट से थे।

सच पूछो तो अब दिल्ली का नाम ही नाम है। वह दिल्ली तो अब सपनापुरी हो गई, जहाँ कभी भारत के सिरताजों ने कंचन लुटाया था। अगर ईंट, पत्थर और गारे के ढेरों का नाम दिल्ली है तो वह अब भी मौजूद है। पर, अगर दिल्ली हमारे वैभव और गौरव का स्मृतिस्तम्भ और हिन्दू मुसलिम का मिलन मन्दिर थी, तो अब वह मिट चुकी। इतिहास के कुछ अस्त-व्यस्त पन्ने और कुछ चलचलाव की तैयारी करनेवाले बूढ़े, उस 'दिल्ली' की यादगार हैं। मिर्ज़ा रौशनबख़्त उस टिमटिमाते हुए दीपक के दाग थे, जो बहादुर शाह के साथ ठंढा हो गया। इसमें शक नहीं कि जब उन्होंने होश सँभाला, तो मुगल राजवंश के सूरज का तेज ढल चुका था; तो भी उन्होंने वे दिन देखे थे, जब हिन्दुस्तान बेजान न हुआ था; और उसकी आत्मा 'दिल्ली' में बसती थी।

मुझे मिर्ज़ा साहब से मिलने का सौभाग्य कई बार प्राप्त हुआ। शाम को कुदसिया बाग के खँडहरों में टहला करते थे। ८७-८८ वर्ष की अवस्था थी, भौंएँ तक सफेद हो गई थीं; मगर पुरानी हड्डियाँ थीं। बाल बाँका न हुआ था। हाथ में जामुनी लाठी लिए, चौगोसिया टोपी पहने, दो बन्दी अँगरखा उठाये, मजे में चल-फिर लेते थे।

दिल्ली की उतरती कला का चित्र मिर्ज़ा साहब के दिल पर खुदा हुआ था। मैं सलाम करके चुपचाप उनके पास जा बैठता। किसी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सुननेवाले की देर थी, फिर मिर्ज़ा किसके रोके रुकते। किसी भी विषय पर बातचीत आरम्भ हो वे उसे खींचकर बहादुर शाह और किले तक ले जाते और वहीं ख़तम करते थे। शेर-शायरी का चर्चा छिड़ा, और उन्होंने 'जफ़र' की कसक-कहानी सुनाकर खुद रोना और दूसरों का रुलाना शुरू किया। संगीत का नाम आया तो उन्होंने तानरस खाँ के गाने और मिर्जा काले के सितार की तारीफ़ के पुल बाँधे; गरज़ दिल्ली क्या थी, बूढ़े मिर्ज़ा के लिए गुणों की खान थी, जहाँ फ़रिश्ते बसते थे और जिसका हर एक मकान तिलस्म से कम न था।

एक दिन मिर्ज़ा साहब को मैंने बहुत उदास पाया। बहुत जब्त करने पर भी, धुँधली आँखें आँसुओं का भेद न छिपा सकीं। मैंने पूछा तो पहले तो उन्होंने उड़ाना चाहा, फिर कहा—''मियाँ, आज आगा मिर्ज़ा कुछ लोगों के साथ, 'फूलवालों की सैर' के लिए राजासाहब से चन्दा माँगने गए थे। मुझे मालूम हुआ तो दिल पर गहरी चोट लगी। आज हम ऐसे हो गये कि मामूली रईसों के आगे हाथ फैलाते फिरें!"

मैं सन्नाटे में आ गया; मिर्ज़ा साहब भी ठंडी साँस भरकर चुप हो रहे—मगर कब तक? पान की डिबिया से एक बीड़ा निकाल कर मुँह में रख लिया, और कहा—''मियाँ, 'फूलवालों की सैर' का तुमने बड़ा नाम सुना होगा। अब उसमें क्या धरा है; हाँ, उसके भी कोई दिन थे। आज मैं तुम्हें गदर के दो साल पहलेवाली सैर का हाल सुनाता हूँ। अब हम भी कमर कसे बैठे हैं, मालूम नहीं कब कूच का परवाना आ जाय। फिर यह बातें सुनानेवाला शायद ही कोई मिले,

"ज़माना बड़े शौक से सुन रहा था,
हमीं सो गये दास्तां कहते कहते।"

मिर्ज़ा साहब अब इस संसार में नहीं हैं, तो भी उनकी भर्राई हुई आवाज़ मेरे कानों में गूँज रही है और वह शब्द चित्र आँखों के आगे है। आज यह धरोहर पाठकों की भेंट करता हूँ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बहादुरशाह और उनके बाप में बड़ी नोक-झोंक रहती थी। दोनों एक दूसरे की आँख में खटकते थे। अकबर शाह ने बड़े यत्न किये कि उनके चहेते बेटे मिर्ज़ा जहाँगीर, उनके बाद गद्दी के वारिस हों, और बहादुरशाह यों ही रह जाँय, मगर एजेण्ट मि० स्टीन ने उनकी एक न चलने दी। न्याय का दामन हाथ से न जाने दिया। मिर्ज़ा जहाँगीर बड़े मुँहफट और ठेठ उजबक थे। स्टीन साहब की अड़ंगा नीति से आग बबूला हो गये, और भरे दरबार में उन्हें "लूलू है बे!" कहकर तमंचा चला दिया। एजेण्ट ने उन्हें बँधवा कर इलाहाबाद भिजवा दिया। इस पर मिर्ज़ा की माँ मुमताजुन्निसा बेगम ने कुतुब साहब की दरगाह में एक मानता मानी कि अगर मेरा बेटा वापस आ गया तो चादर और फूलों की छपरखट चढ़ाऊँगी। उनकी कामना पूरी हुई, मिर्ज़ा जहाँगीर बन्धन-मुक्त होकर लौट आये। बेगम ने मानता की चादर कुतुब भिजवाई. बड़े ठाट-ठस्से रहे। दिल्लीवाले एक तो ऐसे ही रँगीले ठहरे, इसी बहाने मेला रच लिया। महरौली में हिन्दू-मुसलमानों की ऐसी रेल-पेल हुई कि कभी देखी न सुनी। फूलों की मसहरी के साथ लोगों ने एक ऐसा मनभावन फूलों का पंखा भी रख दिया, जो बादशाह को बहुत सुहाया। तब से यह दस्तूर हो गया कि भादों चढ़े मुसलमान दरगाह पर और हिन्दू योगमाया के मन्दिर पर फूलों का पंखा चढ़ाते थे। देखने में तो यह एक तमाशा था, पर वास्तव में हिन्दू-मुसलिम एकता की यह भी एक सीढ़ी थी। मेले-ठेले के बहाने हिन्दू-मुसलमान एक एक-दूसरे से मिलते, हँसते खेलते और दुख-दर्द में शरीक होते। एक मन्दिर के आगे शीश नवाता, तो दूसरा दरगाह के आगे झुकता। अकबर ने सांस्कृतिक एकता का जो सोता बहाया था, और अबुलफ़जल सरमद व दारा-शिकोह ने जिसे अपने खून से पनपाया था, उसकी एक लहर अब भी बह रही थी। 'फूलवालों की सैर' इसी का दिग्दर्शन था।

जब बहादुर शाह सिंहासन पर विराजे, तो हिन्दू-मुसलमानों का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाता और भी मजबूत हुआ । अभागे सम्राट् के शरीर में अकबर और दारा की आत्मा प्रकाशमान थी । बहादुर शाह की माँ किसी राजपूत की लड़की थी, जिसका नाम 'लालबाई' था । इसीलिए दोनों जातियाँ, उसकी दोनों आँखें थीं । होली और दिवाली में लाल किले में वैसी ही चहल-पहल रहती थी, जैसे ईद और शबेरात में । 'फूलवालों की सैर' उस पावन प्रेम का मधुर सम्मिलन था ; इसीलिए किसी त्योहार में ऐसे ठाट न रहते थे । आज हम उसी सैर का अन्तिम दृश्य देखेंगे ।

सन् १८५५ का सावन न भूलेगा । मेह ऐसा बरसा कि जल-थल एक हो गये । या तो बरसता ही न था, और जो बरसा तो ऐसा कि जल-प्रलय की याद ताजी हो गई । फिर भादों आया । फुहार थी या रूई के गालें मतवाले बादल हाथियों जैसे झूमते थे । इन्हा दिनों 'सैर' की तारीख का ढिंढोरा शहर में पिटा । दिल्लीवालों के दिल की कली खिली । तैयारियाँ तो महीनों से हो रही थीं ; अब लोगा ने जोड़े तोड़े का हिसाब ठीक किया ।

इधर लाल किले की चहल पहल का ठिकाना न था । पूर्णिमा को पंखा चढ़ेगा ; आज एकादशी थी । कम-से-कम तीन दिन पहले किलेवाले निकलें तो मजा आये । फिर शहर वाले आ जायँगे तो रंग में भंग हो जायगा ।

बहादुरशाह तसबीह खाने में बैठे थे कि राजदुलारियों और शाहजादों ने आकर घेर लिया । नजराने गुजारे, और दबी आवाज में पौ फटते कूच की अनुमति माँगी । बादशाह ने हँसते-हँसते हामीं भर दी । हाँ, कहने की देर थी ; फिर तो आमोद की नदी ऐसी उमड़ी कि कुछ न पूछिए । इधर चूड़ीवालियों ने रातो रात कलाइयों को सँवारा, उधर रंगरेजियों ने दुपट्टे रँग दिये, कढ़ाइयाँ चढ़ गईं, मालिनों ने गजरे बनाये । अन्ना ने कामिनी मूरतों को सिंगारदान के आगे बिठलाया । बाँदियों ने पोर-पोर मेंहदी रचाई । किसी शाहजादी ने बाँदी को झिड़क

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कर कहा—"आग लगे। मेरे हाथ में चूर डाल दिये। लो बुआ, देखना मेरे हाथ तो कच्चे लहू हो गये।"

दूसरी ने मुँह बिचका कर कहा—"बाजी! जरा इनकी बातें सुनो। हाथ बीर बहूटी हो गये, फिर भी इन्हें चैन नहीं।"

तीन का गजरा बजा होगा कि सवारी का बिगुल बजा। लाहोरी दरवाजे के आगे पालकियाँ, डोलियाँ सुखपाल और रथ मोतीमहल के आगे आ खड़े हुए। अब इस महल का निशान तक बाकी नहीं; गदर के बाद नींव तक खुद गई। हाँ, तो तुरकिनों और गुजरनों ने रास्ते बन्द कर दिये। बेगमें और राजकुमारियाँ सवार हुईं। अब यह समाँ है कि हर सवारी के साथ हबशिनों और तुरकिनों के झुण्ड मोटे-मोटे होंठ, लाल लाल दीदे, सातों हथियार बाँधे, सिर पर आड़े मुँड़ासे घोड़ों पर सवार रवाना हुईं। सबसे पीछे अरदाबेगनियों की पलटनें मशाले और पनशाखे लिये, यामिनी में दामिनी की जोति जगाती हुई साथ-साथ हैं। बेगमों का हाल है कि गेंदई, धानी; सुरमई या गुलनारी जोड़ा भारी दाम का पहने, आबेरवाँ या शबनम के दुपट्टे, जिनपर मोतियों या सलमे-सितारे की लोई टकी हुई। जीनतमहल के सुखपाल के साथ गुजरनें मोरछल और चँवर लिये अदब से "निगाह रूबरू हज़रत बादशाह बेगम सलामत" कहती दौड़ रही हैं। हर डोली या पालकी के साथ "अल्लाह अमान" का शोर उठता है।

अभी ऊषा ने अरुणकुमार के बंधन खोले ही होंगे कि दीवाने-खास से बादशाह की सवारी निकली। बहादुरशाह खुद हवादार में सवार हैं। दो चोबदार छत्र और सूरजमुखी लिये दौड़ रहे हैं। पीछे युवराज और दो तीन चहेते राजकुमार तामजाम और तख़्तरवाँ पर बैठे हैं। दिल्ली दरवाजे तक सिपाहियों के परे नंगी तलवारें लिये खड़े हैं। अब जुलूस का नक़शा ऐसा रहा कि सबके आगे निशान का हाथी, उस पर शाही झंडा. फिर नक्कारे का ऊँट और तुर्क सवारों की पल्टन, रिसाले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के बाद रौशनचौकी, फिर राजकुमारों के घोड़े पीछे बादशाह का हवादार और फौज का परा। बाद में किले के नौकर-चाकर और मशालची।

बाजारों और सड़कों पर आधी रात से लोगों के ठठ के ठठ जमा थे। पनवाड़ियों ने तोरन बाँधकर छिड़काव कर दिया था। महरौली तक हरकारों की डाक बैठी हुई थी। घोड़ों पर गंगा-जमनी साज़, पुट्ठों पर पाखरें, पाँव मैं झाँझन, सिर पर सुनहरी कँलगी पड़ी हुई—"हटो! बचो! महाबली बादशाह सलामत" की आवाज़ लगाते हैं। इधर ख़ासबरदार, शोरे की सुराहियाँ लिए कहार पंखा, आफ़ताबी सँभाले, साथ-साथ दौड़ रहे हैं। सोने की थालियों में रुपये भरे हुए हैं, जिन्हें बादशाह मुट्ठियाँ भर-भर कर लुटाते हैं, यहाँ तक कि कंगाल मालामाल हो गए। दोनों तरफ से स्त्रियाँ आशीष देती हैं, तो बादशाह हिंदुओं को हाथ जोड़कर और मुसलमानों को झुककर जवाब देते हैं।

जुलूस हुमायूँ के मक़बरे और निज़ामउद्दीन औलिया होते हुए झरना पहुँचा।

झरना का ज़िक्र करो, तो दिल में टीस-सी उठती है। यह भी महरौली का एक टुकड़ा था। चारों तरफ शाही इमारतें ; उधर अमराई, इधर झरने में जैसे अमृत छलक रहा है। फ़ौवारे चल रहे हैं, हरियाली ऐसी छाई है कि जैसे आकाश की नीलिमा प्रकृति ने चुरा ली हो। अब तो झरना सूख गया ; सूखे ठुंड रह गये, महल खँडहर हो गये। जहाँ कभी श्यामा और पपीहे बसते थे, अब उल्लुओं का बसेरा है।

सवारियों का ठहरना था कि राजकुमारियाँ झपाझप उतर पड़ीं। हरी बनातें पड़ी हैं और बछेरा पलटन के नन्हें-नन्हें सिपाही अंदर पहरा दे रहे हैं। इधर मालिनें फूलों के कंठे गूँथ रही हैं, बगीचा मधु-मालती और मौलश्री की सुगन्ध से महक रहा है। उधर ऊदे-ऊदे बादल उमड़ उमड़ कर आते हैं। बुलबुलों की चहक, कोयलों की कूक और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मयूरों की झनकार—फिर अलबेली राजकुमारियाँ कब चुप बैठतीं ? अमराई में डाल-डाल पर रेशमी झूले पड़ गये। उधर पेंगे बढ़ीं, इधर पेड़ों के नीचे अलाव बना कर पकवान बनने शुरू हुए। बाँदियों ने अन्दरसों और फुलकियों के मज़े दिखाये ; वहाँ शाहज़ादियों ने पैर जोड़-कर ऐसे लम्बे लम्बे झोंके भरे कि विरहियों के हृदय की धड़कन भी बंद हो जाये। बहादुरशाह भी एक ही रसिक थे। कहा—"दिलदार ख़ानम और टेढ़मुँही ख़ानम को बुला लाओ !" वह बेचारियाँ पानी में शराबोर कपड़े निचोड़ती, कनियाती-कतराती आ पहुँचीं। उस समय इन्होंने संगीत में बड़ा नाम निकाला था। समय-काल को खूब पहचानती थीं। मत्त मयूरों की तरफ देखकर ऐसा मलार अलापा कि प्रकृति संगीतमय हो गई। फिर शाहज़ादियों ने अपनी रसीली तानें मिलाईं, तो गज़ब ही हो गया—

"झूला किन डारो रे अमरियाँ–झूला किन डारो रे अमरियाँ
रैन अँधेरी, ताल किनारे, मोर झँकारे, बादर कारे,
बरसन लागी बुँदिया, फुइयाँ फुइयाँ
दो सखी झूले दो ही झुलाएँ, चार मिल गइयाँ भूल भूलइयाँ
झूला किन डारो।"

पत्ते-पत्ते से, कन-कन से "झूला किन डारो" कि आवाज़ आने लगी।

झूला बंद हुआ तो शाहज़ादियाँ अमराई पर टूट पड़ीं। अब यह हाल है कि कुछ खाती हैं, कुछ फेंकती हैं, किसी को काँटा चुभा, कोई धूम से नीचे आ पड़ी। अन्नाएँ बिलबिलाते हुए पीछे हैं, कहती हैं—"मैं वारी ! कीड़े-मकोड़ों का डर है, कहीं चोटीवाला न छिपा हो। नहीं तो इस बुढ़ौती में उलटे उस्तरे से यह सफेद चोंड़ा मुड़ जाये" ! मगर यहाँ अठखेलियों, ठठोलियों से किसे फ़ुरसत है। कोई कहती है, 'बुआ ! क्या ! लकाझक सुनहरी जोड़ा निकाला है, कालो गोट से कलेजो फेंकड़ा किया है ! अलमबरदार को क़सम ! वह डुपट्टा सदके का है।' किसो अनेलो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को हमजोलियाँ नक्कू बना रही हैं। कहीं गुठलियों की फेंकाफेंक हो रही है। थोड़ी देर में कपड़ों की रंगत बदल गई।

शाम हुई तो धमाधम झरने में कूद पड़ीं। कोई डुबकी खाती हैं तो कोई तैरती हैं। पानी किसी के कमर भर है, तो किसी के गले-गले। कोई कीचड़ में लथपथ है, तो कोई कलाबाज़ियाँ खाती है। फिर सबने बाहर निकल कर जोड़े बदले, बनाव सिंगार किया।

इतने में सूर्यास्त की तोप दगी, रात के खाने की पुकार हुई दस्तर ख़ान के चारों ओर मक्खियों से बचने के लिये बारीक जाली का परदा तान दिया गया। बीच में चंदन-चौकी बिछी, जिसपर बहादुर बिराजे। अहलू पहलू शाहज़ादियाँ और बेगमें बैठीं. आमने सामने शाहज़ादे बैठे। गुलाबपाशों से केसर और केवड़े की लपट उठ रही है। बाबरचीखाने की चौधराइन बैठी सोने चाँदी के थालों की मुहरें तोड़ सब पकवानों को निहार रही है। सबकी आँखें नीची हैं क्या मजाल जो पलकें उभरें! बादशाह कभी अपने सामने से किसी राजकुमार को 'अलश' देते, तो वह सहमा सहमा आगे आता; और मुजरा करता। किसी राजकुमारी को हिस्सा मिलता, तो वह लजाई चितवनों को दाएँ-बाएँ फेंकती आदाब बजा लाती। पकवानों के नाम कहूँ, तो घंटे बीत जायँ। पुलाव कई किस्म के थे—इरानी, नूरमहली, नरगिसी, मोती और जाने क्या-क्या। रोटियों में हवाई चपातियों से लेकर नान-तुनक और नान-गुलज़ार तक की भरमार है, आमों और कढ़ावचढ़ों से ही सब सेर हो चुके थे, अब पेट में जगह कहाँ थी, चुप मुँह झुठलाकर उठ गये।

अब रात की बहार कुछ न पूछो। शम्सी तालाब के किनारे लाल-लाल कँवल जगमगा रहे हैं। पेड़-पौधों में कुमक़ुमे जुगनू जैसे जगर मगर कर रहे हैं, वह देखो, रोशनचौकी का गश्त इस ठाट से निकला है, जैसे तानाशाह की बारात हो। कहीं तानरसखाँ अलाप ले रहे हैं,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तो कहीं बुलबुलहजारदास्ताँ' की चहक दिल में चुटकी लेती है, इधर कुछ ढोठ राजकुमारियाँ चन्दन की नौकाओं पर बैठी पानी में उतरीं तो मालूम होने लगा कि वरुणकुमारियाँ जलक्रीड़ा कर रही हैं। कहीं कहानी हो रही है, तो कहीं आँखमिचौनी या पहेलियाँ बूझी जा रही हैं। सारांश यह कि दो दिन इसी राग-रंग में काटे। दूसरे दिन शाम को कनकव्वे लड़े। जान पड़ता था, इन्द्रधनुष के टुकड़े हवा में उड़ रहे हैं। कोई कलेजाजली उड़ाता है, तो कोई कलचढ़ी, दोपन्नी या तुक्कल। किसी की पतंग ठुमकियाँ भरती है, कोई हत्थे पर से उखड़ गई, कोई चकरा रही है। इसके बाद तालाब पर तैराकों का मेला लगा। कोई कुरसी बनाये तैरता है, तो कोई पलथी मारे हुक्का गुड़गुड़ाता है। किसी ने जोगिया आसन मारा, तो कोई मेढ़क बना मल्लाही तैरता है। ऐसे ऐसे कमाल दिखाये कि बादशाह भी फड़क उठे, और जी खोलकर रुपया लुटाया।

तीसरा दिन सैर का आया। दो दिन पहले से ही दिल्ली खाली होने लगी थी, और आज तो वहाँ कोई मरदुवा देखने में न आता था। अजमेरी दरवाजे से लेकर कुतुबसाहिब तक दाएँ बाएँ दूकानें लग गई, और ऐसी भीड़ हुई कि खावे से खावा छिले। रईसों की पालकियाँ, जवानों के घोड़े और नरतकियों के रथों ने अजीब तमाशा दिखाया। रथों पर सुनहरी कलस, कलाबत्तू के डोरे और जरदोजी के फूब, जिनमें नागौरी पासे फँदे हुए, घोड़े गंगाजमनी गहने-पहने, गुँधी हुई अयालें बिदकाते, रेशमी बागडोर के साथ टाप मिलाते चले जाते हैं। और महरौली के बाजार का हाल न पूछो। दूकानें दुलहन बनी हुई हैं। गमलों में गेंदा, सूरजमुखी और मदनमस्त पड़े महक रहे हैं। हिंदुओं ने कदली-खम्भों के शामियाने तान दिये हैं। एक तो दिल्ली के दूकानदार आवाज़ लगाने में यों ही उस्ताद होते हैं, और आज तो उन्होंने आसमान सिर पर उठा रखा है। कोई ककड़ी की तारीफ में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहता है,—"लैला की पसलियाँ हैं, मजनू की उँगलियाँ हैं।" कोई जामुन को दिखला कर कहता है,—"काले भौंराले नून के बताशे हैं जी!" एक बेर वाले ने तो सितम ढा रखा है, कहता है—"प्यारी लाडो ने तोड़े हैं बेर! घूँघटवाली ने तोड़े हैं बेर!"

तीसरे पहर पलटनों ने पहराबंदी कर दी। बाजार में हल्ला हुआ कि बादशाह फातिहा की दरगाह है। इतने में तोपखान ने सलामी उतारनी शुरू की, शाही जुलूस निकला। आगे आगे निशान के दोनों हाथी सूँड़ से लोगों को सलाम करते जाते हैं। कारचोबी की झूल गंगा-जमुनी सेहरा जगमगा रहा है। पीछे कई हाथियों हर मुगल सम्राटों की विजय-पताकाएँ लहरा रही हैं। बाद में ऊँटों पर नौबत बज रही है। घुड़सवार दो दो की कतार बनाए नंगी तलवारें लिए चले जा रहे हैं। बहादुरशाह ज़रबफ्त की मसनद पर हवादार में सवार हैं, अंदर पंखा भी खिंच रहा है। बादशाह मोतियों का कंठा और हीरे व माणिक की माला गले में डाले हैं, हीरे के भुजबंद, नौरत्नों की सुमरन, चौरासी मणियों का मुकुट सूरज की आँखों को चौंधिया रहा है। सवारी के पीछे सैकड़ों खवास, नक़ीब और चोबदार एक-सी वरदी पहने, 'हटो-बचो' की आवाज़ लगाते चले आते हैं। बाद में राजा रईसों की सवारी बड़े आनबान के साथ चली आती है। यह जुलूस बाजारों में होता हुआ दरगाह पहुँचा, और वहाँ से फिर 'झरना' लौट आया, जहाँ सब लोग पंखे का तमाशा देखने के लिए शाही महलों में बैठ गये।

झुटपुटे के समय शाही पंखा निकला। यह सोने का बना हुआ है, नीचे सच्चे मोतियों की झालर है, ऊपर सोने का मोर है, जिसकी दुम में रंग-बिरंगे जवाहिरात जड़े हुए हैं। ऊपर फूलों की चादर है, और सामने फूलों की छड़ियाँ हैं। आगे शहनाई बजती है। साथ ही भिश्ती ताल मिला कर इस ढब से कटोरे बजाते हैं कि जलतरंग का

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धोखा होता है। आतिशबाज़ी छूट रही है, और केवड़ा जल व गुलाब जल का छिड़काव ऐसी बहुतायत से हो रहा है, जैसे गुलशन जुलूस पर साया करते हवा में उड़ा जाता हो।

इतने में शहरवालों के पंखे आने शुरू हुए। आगे-आगे ढोलताले-वाले, पीछे सुनहरे फरेरे लहरा रहे हैं, जिनके सिर पर अबरक के दीपक जगमगा रहे हैं। पीछे पुलिस के जवान, छाती फुलाए चले जाते हैं। इसके पीछे नौबतखाना और अखाड़ों के पट्ठे हैं। बाँके तिरछे जवान, मछलियाँ फड़काते, डंड निकालते, गद्का-फरी और तलवार व बिनवट के हाथ दिखलाते जा रहे हैं। अब पीछे आँखें डालो तो भाँति भाँति के बाजे वायु-तरंगों को अपने इशारों पर नचा रहे हैं। उधर कटोरों की छन-छन के जवाब में डंडवाले खट-खटाहट की गत मिला रहे हैं। पीछे नर्तकियों के झुंड तख़्तेरवाँ पर खड़े नाच रहे हैं। आखिर में फौजी सिपाहियों ने घेरा डाल दिया है, मगर सैलानियों की ऐसी अटूट भीड़ है कि थाली सिर-ही-सिर चली जाय। सभी निराली सज़धज बनाए, ठेमल ठेला करते टूटे पड़ते हैं। दूकानों और छज्जों पर ऐसी भीड़ कि मकानों की चूल ढीली पड़ गई हैं। चारों ओर से फूलों की लपट उठती है, जिधर देखिए फूलों के बारह आभरन महक रहे हैं। सबके पीछे फूलों का अनोखा पंखा देख कर यह गुमान होता है। कुसुमबेल की बारात निकली हो। सारे बाजार में ऐसा प्रकाश जगमगा रहा है, जैसे सोने की लंका जल रही हो। प्रकाश, संगो, सौंदर्य —इन तीनों के मेल ने ऐसी त्रिवेणी बहाई है कि इन्द्रलोक पर भी ओस पड़ जाय।

किसी रसिक को देखकर बाजेवाले एक घड़ी खड़े होकर अपना कमाल दिखलाते हैं, तो वह मुट्ठियाँ भर-भरकर इनाम देता है। इस प्रकार जुलूस धीरे-धीरे शाही दरवाजे के आगे आ खड़ा हुआ। बेगमों और राजकुमारियों के लिये चिकें पड़ गईं। बादशाह बारहदरी में

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आकर बैठ गये। अब हर कोई जान तोड़कर अपने करतब दिखाने लगा। मिर्ज़ा गौहर के शागिर्दों ने सितार पर 'दरबारी' की ऐसी गत बजाई कि समाँ बँध गया, हर तरफ से 'वाह वाह' की आवाज़ आने लगी। बादशाह ने मोती की माला उतारकर दे दी। कटोरेवालों ने ऐसी मुबारकबाद बजाई कि सब लोग लोट गये; वह भी अशरफियों के तोड़े पाकर निहाल हो गये। अखाड़ेवालों ने भी ऐसे हुनर दिखाये कि सब दंग हो गये। एक लठैत पर चारों तरफ से पत्थर पड़ रहे हैं, मगर उसने लकड़ी से चक्कर बनाया कि सब टकराकर उचट पड़ते हैं। कोई रेशमी रूमालों को तलवार की काट से टुकड़े टुकड़े कर देता है। किसी को दुशाला मिला, तो किसी को सुनहले रुपहले कड़े। इतने में पंखा सामने आया तो शहर के रईसों ने मुजरा किया। सबको इत्र-पान मिला, गुलाब छिड़का गया। युवराज ने पुष्पहार पहन कर सबको बिदा किया। पंखा आगे बढ़ा, तो राजघराने के लोग साथ साथ हो गये। मुसलमानों का पंखा दरगाह गया, हिन्दुओं का पंखा योगमायाजी के मंदिर पहुँचा। आधे राजकुमार इसके साथ आये आधे उसके साथ। बादशाह किसी के साथ न गए, क्योंकि दरगाह जाते तो हिंदू बुरा मानते, मंदिर जाते तो मुसलमान बिगड़ते। मुसलमानों ने हठ की तो बादशाह ने साफ कह दिया, "अमां! यह कैसे होगा! तुम्हारे हिन्दू भाई यही कहेंगे कि मुसलमान था, मुसलमानों के पंखे में शरीक हुआ। हमें गैर समझा। ना, अमाँ, ना, जैसा एक के साथ करना वैसा दूसरों के साथ करना। आतिशबाजी में हिंदू-मुसलमान दोनों आते हैं तो हम भी चले चलेंगे।"

आधी रात तक दोनों पंखे चढ़ा कर हिंदू-मुसलमान सीधे शम्सी तालाब पहुँचे। थोड़ी देर में बादशाह आये और राजा रईसों के साथ महताबी में जुलूस किया। सैलानी तालाब को घेर कर बैठ गए। पानी में सैकड़ों बजरे और डोंगे पहले से तैर रहे थे। अब शाही आतिशबाज़

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और शहर के आतिशबाज आमने सामने आ खड़े हुए, और जल-युद्ध आरम्भ हो गया।

थोड़ी देर में आकाश पर रंग-बिरंगे तारे झिलमिलाने लगे। वायु-मंडल में सैकड़ों चाँद और सूरज तैरने लगे। हवाइयाँ, लट्टू, छल्ले और बान इस जोर से उड़ते थे कि कान सुन्न हो गए। इधर पानी में बारूद के जहाज छूटे। उनमें अनार, महताबियाँ और छछून्दर उड़ते, तो अनूठा दृश्य दिखाई देता था। इस चमक-दमक और धूएँ के बादलों को देखकर दावानल का संदेह होता था। फिर दोनों एक दूसरे से सट गये, और अपनी अपनी कारीगरी दिखाई। ऐसे ऐसे अनार छूटे, जैसे हरे पेड़ों में आग लगी हो, और वह जल-जल कर हवा में कूदते और फिर गिर पड़ते हों। नसरी ऐसी छोड़ी कि सौ सौ बार मरकर उठे, और रह रहकर साँस ले। दो बजे तक यही सिलसिला रहा, तब कहीं मनमाना इनाम पाकर सब लोग प्रभात वेला अपने-अपने ठिकाने लौटे।

जब आँखें खोलीं तो मेला बिछुड़ चुका था। फूल वालों की सैर का अन्त हो गया था।

× × × ×

वह दिल्ली क्या हुई; वह धनवैभव, वह भाई चारा, वह सहानुभूति, वह समवेदना कहाँ गई; वह हँसते हुए मुखड़े, वह प्रेम की उमङ्गें, वह हर्ष की तरंगें कहाँ हैं ?

फूलवालों की सैर अब भी होती है, दूकानें अब भी लगती हैं, लोगों का जमाव अब भी होता है। भादों की बौछार अब भी आती है। काले बादल अब भी गुदगुदी करते हैं, अमराई में कोयल की कूक से अब भी दिल में हूक उठती है। मगर अब वह प्रेरणा, वह भावना कहाँ है, जिसने फूलवालों की सैर को सच्ची राष्ट्रीयता की झाँकी बना दिया था ? वह फूल कहाँ हैं, जो हिंदू मुसलमानों को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक माला में गूँथ देते थे ? वह बिजन कहाँ है, जो भारत-माता के जख़मी दिल को ठंडा करता था ? वह 'झरना' कहाँ है, जो भारत की सांस्कृतिक एक़ता का सोता था ? वह 'ज़फ़र' कहाँ है, जिसकी छत्रछाया ने राष्ट्रीयता का पौधा खिलते-खिलते हठात् मुरझा गया।

वह फूल मुरझा गये, वह गलहार क्षत-विक्षत हो गया, वह सोता सूख गया, वह 'ज़फ़र' अनन्त निद्रा में लीन है।

अरे बेख़बर 'फूलों की चादर' क्यों चढ़ाता है,
तमन्ना फूटकर रोई थी जिसपर यह वो तुरबत है !

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फूलवालों की आखिरी सैर

अख्तरहुसैन रायपुरी की यह रचना सफल निबंध है। सफल निबंध शुद्ध साहित्य के भीतर आता है। निबंध में साहित्यसुलभ भावों की रमणीयता और बरबस मन को लुभानेवाली भाषा की लुनाई दोनों हैं। इसमें चुभन इतनी अधिक हैं कि 'समझदार' के दिल पर गहरी चोट लगती है। भाषा में ऐसा जादू है कि अतीत का चित्र सा खिंच जाता है।

सफल साहित्यिक निबंध भी दो प्रकार का होता है—एक काव्यमय और दूसरा आलोचनामय। काव्यमय निबंध ही अच्छा निबंध है। ऐसे निबंध का यह पहला लक्षण है कि उसमें ऐसी विविध और बारीक जानकारी की बातें रहें जिनसे हृदय का कुतूहल भी शान्त हो और आनन्द की अनुभूति हो। जिस प्रकार दो मित्रों की स्नेहभरी बातचीत में किसी निर्दिष्ट विषय का अभाव रहने पर भी ज्ञातव्य बातों की बहुलता रहती है, असंबद्धता में भी एक संबंध-सूत्र चला करता है और उल्लास उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है; उसी प्रकार काव्यमय निबन्ध में ज्ञातव्यों की विविधता के साथ रमणीयता रहनी ही चाहिए। कहानी में जो स्थान घटना का है निबन्ध में वही स्थान जानकारी के विस्तार का है। इस निबन्ध में यह गुण पर्याप्त मात्रा में है। यह मज़ेदार बातों की 'खान' है, इसकी हर एक बात तिलस्म से कम नहीं है।

अच्छे निबन्ध का दूसरा गुण है शैली और भाषा की रोचकता। सौम्य और समर्थ शैली के बिना निबन्ध प्रभावक हो ही नहीं सकता। प्रस्तुत निबन्ध की शैली में इसीलिये इतना प्रभाव है, क्योंकि वह बड़ी अनुरूप, सरल, सौम्य और प्रवाह-मय है। सब बातें सीधे हृदय तक पहुँच जाती हैं। भाषा की नफ़ासत भी वैसी ही है जैसा उसका दिलकश मज़मून। ऐसी शैली और भाषा पर मुग्ध होकर ही आलोचक कह बैठते हैं—रीतिरात्मा काव्यस्य। शब्द एव काव्यम्। शैली ही साहित्य की आत्मा है। भाषा ही साहित्य है।

बातों की लड़ियाँ ऐसी गुथी हुई हैं कि उनके बीच के अलंकार-उत्प्रेक्षाएँ और उपमाएँ—शाही ज़माने के इलाकेबन्दों की याद दिलाते हैं। कहीं कहीं तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भाषा ऐसी संगीतमय है कि उससे अर्थ की प्रतिध्वनि निकलती है। प्रसंग और रस की ढाल पर उतरती हुई भाषा सहृदय पाठक को मस्त कर देती है। उसमें बनाव सिंगार काफ़ी है पर बनावट तनिक भी नहीं।

वर्णनीय में और वर्णनशैली में ऐसा चमत्कार है कि आँखों के आगे खिंच गये चित्र पर आँखें तरस कर दो बूँदें बिना ढाले मुँदती ही नहीं। मुँदती भी हैं तो बहुत देर तक उन्हीं बीते दिनों की कहानी कानों में गूँजा करती है।

निबन्ध की तीसरी विशेषता है व्यंग्य और विनोद की देन। निबन्ध में विनोदशीलता तो पर्याप्त है ही, आदि से अंत तक एक छिपा हुआ व्यंग्य भी है। भारत के मुसलमानों पर, साम्प्रदायिकता पर, और दिल्ली की उतरती हुई दशा पर मिर्ज़ा के चित्रण में व्यंग्य की रेखा साफ साफ देख पड़ती है।

निबन्ध का चौथा गुण है आत्मीय राग। निबन्ध में लेखक की आत्मीयता और निजी छाप होनी चाहिए। इस निबंध को पढ़ने से ऐसा मालूम पड़ता है मानो हम रायपुरी जी से हिल-मिलकर बातें कर रहे हैं। वे हमसे दूर नहीं हैं, हमारे पास ही बैठे हैं। यही आत्मीयता का गुण तो इस निबन्ध का आकर्षण है।

निबन्ध की पाँचवीं और सबसे बड़ी विशेषता है प्रभाव की गम्भीरता। निबन्ध में ऐसा प्रभाव होना चाहिए कि वह सामयिक न होकर चिरस्थायी हो। इस निबन्ध में यह गुण भी है। यह जब कभी पढ़ा जायगा तब इसकी अभिनवता और रमणीयता ज्यों की त्यों बनी रहेगी। इसमें मानव हृदय का चित्र है, कला के शृंगार का वह इतिहास है जो देश और काल के परे की चीज़ है। अतीत सौभाग्य की स्मृति वर्तमान अभाव की अनुभूति को इतना तीव्र कर देती है कि करुण हृदय को बिना रुलाये नहीं छोड़ती।

इस निबन्ध के विशेष अध्ययन के लिए इसकी तुलना दूसरे निबन्ध से करनी चाहिए। 'वे दिन कहाँ' में जो मार्मिक टीस है वही निबन्ध का स्थायी भाव है, वही सहृदयों को लोट-पोट कर देता है। अन्य बातें रीति, भाषा, वृत्ति, अलंकार आदि भी सबके सब रसानुरूप हैं। यही निबन्ध की पूर्णता का रहस्य है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कलाजगत् और वस्तुजगत्

[१]

जब हम 'भारतवर्ष' नहीं, बल्कि 'भारतमाता' कहते हैं, तब इसमें हमारा क्या दृष्टिकोण रहता है ? हम मानचित्र उठाकर देखते हैं तो नदियों, समुद्रों, पर्वतों और प्रदेशों का सीमा-विस्तार देख पड़ता है, कहीं कोई मूर्ति नहीं, यह तो एक नकशा है। किन्तु बाहर (वस्तुजगत् में) जो नकशा है, वही हमारे भीतर मातृभूमि की एक जीवित प्रतिमा भी रच देता है और हम गा उठते हैं –

नीलांबर प्रावार हरित पट पर सुंदर है ;
सूर्य चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारा-मण्डल हैं ;
बंदी विविध विहंग, शेष-फन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ॥

इस प्रकार जब हम मातृ-भूमि की वंदना करते हैं तब घोर रियलिस्ट राजनीतिक होते हुए भी भावप्रवण हो जाते हैं, वस्तुजगत् के काव्य-जगत् में चले आते हैं। यही वस्तुजगत् और काव्यजगत् का पार्थक्य ज्ञात हो जाता है। मनुष्य जब जड़ की नहीं, बल्कि सजीवता की उपासना करता है; तब वह कवि हो जाता है। हम स्वयं जड़ नहीं, एक जीवित प्राणी हैं ; इसीलिए हम वस्तुजगत् को अपनी ही तरह एक व्यक्तित्व देकर देखने के आदी हैं। केवल हाड़-मांस का शरीर ही मनुष्य नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। शरीर तो एक शव है, मनुष्य का एक नश्वर आकार; जैसे देश का नकशा। उस आकार-प्रकार में मनुष्य की जो आत्मचेतना है, वही उसे जीवित प्राणी बनाती है, वही मातृभूमि को भी भारतमाता के रूप में उपस्थित कर देती है। उसी चेतना के कारण वस्तुजगत् रूप-रंग, रस-गंध और ध्वनिमय है। जड़-सृष्टि (वस्तुजगत्) में चेतना का अधिकाधिक सरस विकास ही कविता है। कवि जब कहता है—

'धूलि की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान।'

तब मानो वह पार्थिव जगत् (वस्तुजगत्) में उसी आत्मचेतना का. शरीर में आत्मा की भाँति आभास पाता है। इस प्रकार कविता, पार्थिव धूलिकणों (लौकिक क्षणों) में अलौकिक चेतना कि किरणद्युति है, वास्तविकता के बहिर्मुख पर अन्तर्मुख का 'आनन आप उजास' है।

[२]

कविता का भी अपना एक विज्ञान है। वह केवल कपोल-कल्पना नहीं, बल्कि उसका भी वैज्ञानिक आधार है। हम देखते हैं कि कुम्हार के सामने वास्तविकता (पार्थिवता) की मिट्टी का एक ढेर लगा रहता है, इसे ही वह न जाने कितने आवर्त्तों से एक मंगलघट बना देता है। इस नये रूप में मूल वास्तविकता क्या से क्या हो जाती है। इसी प्रकार वस्तुजगत् को कलाजगत् में परिणत करने के लिये हमारे मन के भीतर भी न जाने कितने आवर्त्त चलते हैं—कुम्हार के घूमते हुए चाक से अधिक तीव्र गति से। हम आँखों से जिन प्रत्यक्ष दृश्यों को देखते हैं, उन्हें देखने के लिये, मन कितनी फेरियाँ देकर आँखों तक पहुँचाना पड़ता है यह वैज्ञानिक जानते हैं। ऐसी ही क्रिया कविता में भी एक मनोवैज्ञानिक 'रोटेशन' है। कवि को अपनी कला की मूर्ति अंकित करने के लिये, मनोविज्ञान से भी आगे जाकर एक और सूक्ष्म-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विज्ञान की शरण लेनी पड़ती है, वह है भावविज्ञान। साहित्य का रस-शास्त्र वही भावविज्ञान है। काव्य को जब हम अलौकिक कहते हैं, तब हमारा अभिप्राय यह रहता है कि उसमें कवि केवल दृश्य (वस्तु) जगत् का दिग्दर्शक न रहकर कुछ आंतरिक क्षणों का रस-सिद्ध साधक भी रहता है।

[३]

वृक्ष में कोई फूल गुलाब की भाँति अकेला खिलता है, कोई अपनी डाल में गुच्छ बनाकर। छायावाद के वर्तमान कवि अपने-अपने काव्य में एकान्तभाव से एकाकी खिले हैं, समुदाय को लेकर नहीं। छायावाद और वस्तुवाद अथवा भावजगत् और दृश्यजगत् की कविता विश्व-रंगमंच के अव्यक्त (स्वगत) और व्यक्त (लोकगत) कथन के समान है। इसे हम सबजेक्टिव और आबजेक्टिव भी कह लें। स्वगत में आत्म-लीन किंवा अपने में खोये हुए क्षणों का उद्गार रहता है। सभी के जीवन में ऐसे एकाकी क्षण भी आते हैं, अतएव वे एकान्त उद्गार भी कहीं न कहीं, किसी न किसी क्षण, सहृदयों के संवेदन बन जाते हैं;

कवि जब अपनी चेतना में वस्तुजगत् को ग्रहण करता है तब वह विचारप्रधान हो जाता है, जब कल्पनाजगत् को स्पर्श करता है तब रसप्रधान। एक में वह मनोवैज्ञानिक रहता है, दूसरे में भावुक। प्रबंधकाव्य में दोनों का सहयोग रहता है।

कवि वस्तुजगत् में तभी आता है जब वह समुदाय की मनोधारा में अवगाहन करना चाहता है। समुदाय के संगम पर खड़ा होकर वह स्वगत विचार भी करता है और समूहगत भी। किन्तु उसका स्वगत भी समूह की ओर ही प्रवाहित रहता है, यथा, गुप्तजी के 'द्वापर' में। वस्तुजगत् प्रायः प्रबन्धकाव्यों का क्षेत्र है। प्रबन्धकाव्य के मनो-विज्ञान में वह भावुकक्षण भी सम्मिलित रहता है, जहाँ व्यक्तिसमूह की विचारधारा से नहीं, बल्कि अपने ही रसस्रोत से अनुरंजित रहता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। दूसरे शब्दों में, वह कल्पना से ऊर्मिल रहता है। वस्तुजगत् और कल्पनाजगत् का यह संयोग गुप्तजी के 'साकेत' में है, जहाँ वे समूह के कवि के साथ ही छायावाद के भी कलाधार हैं।

हाँ, तो वर्तमान छायावादी अपने भाववृन्त में आत्म-व्यंजक हैं, गुप्तजी इत्यादि विश्वव्यंजक। दोनों का कविकर्म अलौकिक है- एक लोकोत्तर चित्र प्रदान करता है, दूसरा लोकोत्तर चरित्र। दोनों अपने अपने क्षेत्र में शोभन कलाकार हैं। किन्तु छायावाद की कला में भी लोकव्यंजना संभव है, जैसे पंतजी की इधर की रचनाओं में। अंतर सामाजिक दृष्टिकोण के प्रसार का है। द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि गुप्तजी मध्ययुग के उन आदर्शों के कवि हैं जो जनता में एक अभ्यासपूर्ण विश्वास बन गये हैं; किन्तु पंत आदर्शों की जनशोषक रूढ़ियों को तोड़कर उस समाज के कवि हैं, जहाँ नवमानव का त्राण है। छायावाद की नवीन लोकव्यंजक कला भी भविष्य में कैसा सुविकास पायेगी, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता, तथापि इसका भी विकास तो होगा ही। अभी तो वह अपने रूखे-सूखे प्रयास में है।

[४]

भीतर की अपेक्षा, मनुष्य बाह्य प्रभावों को अधिक शीघ्रता से ग्रहण करता है, जैसे जलवायु और प्रकाश को। यह प्रभाव प्राकृतिक है। किन्तु भीतर से जो ग्रहण किया जाता है वह मार्मिक होता है, प्राकृतिक जगत् के प्रभावबोध से भी अधिक स्पंदनशील। छायावाद की कल्पना मिथ्या नहीं, वह तो अनुभूति को, स्पंदन को, अभीष्ट तक पहुँचाने में एक पोएटिक आकलन है—किसी रस को हृदयंगम कराने में जब वस्तुजगत् का कोई मापदंड सहायक नहीं होता, तभी वहाँ कल्पना अग्रसर होता है।

जो वस्तुजगत् के सुख-दुख की तीव्रता से भौगोलिक शीतोष्ण की भाँति अभ्यस्त हैं, वे छायावाद में भी उसी तीव्रता द्वारा सुख दुख से

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अवगत होना चाहते हैं और निष्फल होने पर उसे मिथ्या कह देते हैं। सचमुच अबतक छायावाद ने वस्तुजगत् को व्यावहारिक जीवन के लिए ही छोड़ दिया है। व्यावहारिक जीवन को जिस रस की आवश्यकता है, केवल उसे ही लेकर उसने अपने काव्य को सुस्निग्ध कर लिया। उसने कपास के बजाय रेशम दिया। उसे हृदयंगम करने के लिए वैसी ही स्निग्ध विदग्धता अपेक्षित है। किंतु इसके पूर्व ?—

आः, आज तो मनुष्य अपने निपीड़न में बाहर-भीतर दोनों ही जगह स्पंदनशून्य हो गया है। आज भी जिनकी चेतना शेष है, वे अपनी स्वल्पता में, अपनी सम्पन्नता के स्वास्थ्य में अनेकों के वंचित सुख को सूचित करते हैं।

[५]

देश का एक विचारक-समुदाय वह है जो काव्य को अतिवास्तविकता (उपयोगिता) के ही दृष्टिकोण से देखना चाहता है। उसकी उपयोगिता के जगत् में मनुष्य केवल उदरंभरि ही न हो जाय, नवीन जागृति के कवियों को इसका ध्यान रखना होगा।

ध्यान रखना होगा कि रोटी का टुकड़ा यदि पेट के लिए उपयोगी है तो जीवन का गान हृदय के लिए। जो कुछ शरीर की पूर्ति करे वही उपयोगिता नहीं है, आज के संक्रान्ति-काल में यदि इसे ही उपयोगिता मानते हैं तो इसके मानी यह हैं कि जीवन का वाद्य-यंत्र कहीं टूट गया है और बिना नवीन निर्माण हुए उससे कोई सुरीला स्वर नहीं निकाला जा सकता। किंतु नवीन निर्माण में लक्ष्य हमारा सुरीले स्वर का ही रहेगा, चाहे स्वरलिपियाँ (अब तक की रूढ़ नियम-नीतियाँ) बदल जाँय। शरीर ही जीवन नहीं है, शरीर के आधार से हम जो चरितार्थ करते हैं वही जीवन है। भावकाव्य उसी जीवन को ग्रहण करता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उपयोगिता की पूर्ति व्यावहारिक कार्यों में है, उसका क्षेत्र औद्योगिक है। उद्योग और भावयोग दोनों अपने-अपने स्थान पर समीचीन हैं, इन दोनों का तुलनात्मक विभाजन कर एक को आवश्यक और दूसरे को व्यर्थ नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता पड़ने पर भावयोग की सीमा में उद्योग, शांतिनिकेतन में श्रीनिकेतन की भाँति, शोभित हो सकता है।

मनुष्य के भीतर जो भावयोग (काव्य) है, वही उद्योग को भी सहज कर देता है। यदि गान न रहे, यदि काव्य न रहे तो मनुष्य का श्रम अथवा जीवन की वास्तविकताएँ कितनी विकराल हो जायँ, यह खेत जोतता हुआ किसान और सड़क कूटता हुआ मजदूर भी बतला सकता है।

काव्य यदि उद्योग को सहज कर देता है तो अभाव में भी एक भाव बरसा देता है, वहाँ अकिंचन कृषकवधू कहती है—

टूटि खाट पर टपकर टटिऔ टूटि।
पिय कै बाँह उसिसवाँ सुख कै लूटि॥

जो झोंपड़ी में रहता है, उसके लिए वही सब कुछ नहीं है। वह न केवल किसान है, न केवल मजदूर, न अन्य श्रमजीवी, वह तो कोमल स्पन्दनों का प्राणी भी है। झोंपड़ी का किसान भी केवल गाय-बैल की तरह आहार ग्रहण कर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता, वह कभी-कभी अपनी तान भी छेड़ता है उसके भी कुछ स्वप्न रहते हैं। वह क्या गाता है, क्या गुनगुनाता है, इसके उदाहरण हमारे साहित्य के 'ग्रामगीत' हैं, जिनमें छायावाद और रहस्यवाद का अभाव नहीं। उन गीतों में तो हमारे चिरमूक गाय-बैल भी अपने हृदय के भाव कहते हैं, स्वयं मूक रहकर उन्होंने किसानों को अपनी भाषा दे दी है। मनुष्येतर जीव-जगत् ने यही भाषा उन रहस्यवादी तपस्वियों को भी दे दी थी, जिन्होंने अपने आश्रम में खग-मृग इत्यादि को अपना पारिवारिक बना लिया

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

था। जैसे परिवार के लोग उपयोगिता के नाम पर ही एक नहीं हैं, वल्कि 'अनेक' से 'एक' होने के कारण परस्पर पूरक हैं, उसी प्रकार हमारा पालित जीवजगत् भी। किंतु भारत के लिए जो कुछ स्वाभाविक एवं पारिवारिक है, वह पश्चिम के लिए व्यापारिक है। हाँ, व्यापारिक जगत् ने आज जीवन में जो विषमता उत्पन्न कर दी है यदि हम उसकी ओर आँख मूँद लेते हैं तो आज का शेष गान भी गाने को न रह जायगा। हम गान की रचना तो करें किन्तु आसन्न समस्या की ओर से उदासीन भी न हों।

[६]

संसार में अगणित वास्तविकताएँ हैं, भारत ने सभी वास्तविकताओं को शोभन नहीं माना। जिन वास्तविकताओं से मानव-जीवन को सुरस मिला, उसने उन्हीं की चाशनी में अपने स्वभाव को ढाला। वह ढली हुई स्वाभाविकता ही हमारे जीवन की कला है। हम यों क्यों न कहें कि वास्तविकता जब स्वाभाविकता बनती है तभी वह कला हो जाती है। वास्तविकता और स्वाभाविकता में उतना ही अन्तर है, जितना पश्चिम और भारत में अथवा व्यापारी और गृहस्थ में, व्यापारी और गृहस्थ की संकलन-बुद्धि में विज्ञान और काव्य का अन्तर है। विदेशी व्यापारिक जगत् ने अपने रूखे-सूखे विज्ञान की दूकान में वास्तविकता की इतनी ढेरी लगा दी है कि वह अपने ही बोझ से आप दबा जा रहा है। भारत ने जब अपनी स्वाभाविकता को अपनी कला बनाया तब उसने मानो वास्तविकता को कवित्व का मनोयोग दिया अथवा विज्ञान को सौंदर्य प्रदान किया। विज्ञान में जो कुछ सत्य और शिव है उसे उसने सौंदर्य द्वारा मनोरम बना लिया। इस प्रकार उसने वैज्ञानिक वास्तविकता को रूपांतरित कर साहित्यिक स्वाभाविकता को जन्म दिया।

जीवन की इसी स्वाभाविकता को सूचित करने के लिए हमारे यहाँ भित्तिचित्र कला का जन्म हुआ था। उन चित्रों में एक विशेष भारतीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दृष्टिकोण निहित है, वह यह कि कला हमारे चारों ओर के भावमय जीवन से रूप-रंग ग्रहण करती रही है। घर के भीतर रहनेवाले अपने शरीर के भीतर (हृदय में) जो कुछ थे, उसीका प्रकाशन इन भित्तिचित्रों से हुआ। गृह को देखकर जिस प्रकार हम गृहपति को जानते थे उसी प्रकार इन भित्तिचित्रों द्वारा देह के भीतर रहनेवाले देही को जानते थे; देह के न रहने पर भी देही अपने परिचय के लिए जीवित रहता था। हमारे चारों ओर का जीवन जिस संस्कृति या स्वभाव के साँचे में ढला हुआ था, उसीके अनुरूप हमारी चित्रकला का रूप-रंग था। जिस प्रकार उन पौराणिक दीवालों पर विविध वर्ण-व्यंजक तूलिका दौड़ती रही, उसी प्रकार हमारे गृह जीवन में भी एक कला घूमती रहती थी। भारत का जीवन वास्तविकता की भित्ति पर एक काव्य (स्व-भाव) रहा है, मानो पृथ्वी पर हरियाली। उसकी 'स्वाभाविकता' में वास्तविकता, कविता के लिए आधार थी, आधेय या आराध्य नहीं। इस प्रकार भारत अपने जीवन में एक फ्रेस्को आर्ट का आर्टिस्ट रहा है।

व्यक्ति के मूर्त्त जीवन में एक अमूर्त्त कवित्व भी अगोचर है। और सच तो यह है कि वह अमूर्त्त कवित्व ही हमारे मूर्त्त जीवन का प्राण है, विकास है; उसीसे हम वास्तविकताओं की मिट्टी में भी एक जीवित प्रतिमा हैं। अन्यथा, जीवन हाड़-माँस की ठठरियों के दुस्सह भार के सिवा क्या रह जाय? कला के बिना वास्तविकता मृत है, जीवित वास्तविकता ही मानवीय स्वाभाविकता है। काव्य, संगीत, चित्र तथा अन्यान्य कलाएँ हमारे जीवन-पोषण मनोरागों के साहित्यिक स्वरूप हैं, जिन्हें एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी, पूर्वजों की वसीयत के रूप में पाती चली जाती है। इसीलिए कला की उपेक्षा कर, साहित्य को, जीवन को, एकमात्र शुष्क वास्तविकता पर ही केन्द्रीभूत कर देना भावयोग का लक्ष्य नहीं हो सकता, उद्योग का हो सकता है। उद्योग ने आवश्यकता से अधिक वास्तविकता पर ध्यान दिया। (लौहयन्त्रों की भरमार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इसका उदाहरण है।) अपने व्यावहारिक जीवन में जब हम कला को मूर्त्त करते हैं तब हमारा उद्योग भी केवल उद्योग न रह कर भावयोग की एक कला हो जाता है। यन्त्रों की कला नहीं, बल्कि मानवीय श्रम की कला, जीवन की तन्मयता की कला, स्वाभाविक कला।

हाँ, आज का हमारा कला-प्रेम बहुत कुछ अस्वाभाविक हो गया है। केवल इसीलिए नहीं कि हम वास्तविकता पर आवश्यकता से अधिक ध्यान देने लगे हैं, बल्कि इसलिए भी कि कला हमारे लिए रूढ़ हो गई है। युग की हलचलों में जहाँ कला का बहिष्करण तथा वास्तविकता का नवीकरण (समाजवाद) मध्ययुग तथा आधुनिक युग की विभीषिकाओं द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों की खिन्नता को सूचित करता है, वहाँ नव चैतन्य-युग के प्रश्नों से आँख मूँद कर कला के संरक्षण का ढोंग भी एक फैशन-सा लगता है। आज आर्टगैलरियों की कला मुट्ठीभर सम्पन्न व्यक्तियों के लिए एक ललित कौतुक जुटाती है। प्रदर्शनकारी उसे प्रदर्शित करते हैं, देखनेवाले देखते हैं और कला विद्युद्दीपों में ज्वलन्त हँसी हँसकर रह जाती है। वह 'दर्शन' नहीं, प्रदर्शन की वस्तु हो गई है। आज हमें प्रदर्शन को तो छोड़ना है, साथ ही नवीन वस्तु-जगत् की वास्तविकता (अभाव-जगत्) को चिर-कुरूप भी नहीं हो जाने देना है।

कला द्वारा इस वस्तुजगत् में भी भाव-जगत् उसी प्रकार शोभित होगा जिस प्रकार ईंट-मिट्टी के मकान के सामने स्वास्थ्यकर उद्यान। भाव-जगत्, वस्तुजगत् का स्वास्थ्य है। वस्तुजगत् यह शरीर है तो भाव-जगत् उसका जीवन।

[७]

मध्ययुग से लेकर आज के अवशेष-मध्यकाल तक हम ऐश्वर्य और सौंदर्य की रंगीनी की उपासना करते आए हैं। जीवन की यह फैन्सी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दिशा राजा-रईसों द्वारा परिचालित रही है। जिस प्रकार उनके शासन हमारे राजनीतिक नियम थे, उसी प्रकार उनकी रुचियाँ और प्रवृत्तियाँ भी हमारी पसन्द बन गई थीं। संसार दोज़ख़ बना हुआ था और उसी के मूर्छित स्वप्न-लोक में वैभव के स्तम्भों पर एक जन्नत बसी हुई थी। राजा-रईसों ने महलों में बैठकर स्वर्ग को प्रत्यक्ष पाया, साधारण लोगों ने झोंपड़ों में कलप कर महलों का स्वप्न देखा। रईसी जीवन के इसी मॉडल में हमारा अब तक का जीवन ट्रेड होता आया, फलतः कला ने भी वही रंगत ली। इसके विरुद्ध हमारा असन्तोष तब जगा जब हमने होली के कच्चे रंग की रंगीन स्वप्नों को फू होते देखा।

आज की विवर्ण परिस्थितियों में फैशन ने कला को बला बना रखा है—यहाँ आह भी ग्रामोफोन में भी भरी जाती है। यह हृदयहीन मनोरञ्जकता, यही संवेदन-हीन कला-प्रियता, मध्ययुग के स्वभाव विशेष की एक नुमाइश दिखाकर विस्मृति के अन्धकार में विलीन हो जायगी।

आज कला के सामने वस्तुजगत् ही नहीं है, बल्कि दोनों के बीच एक गहन गर्त्त, अभाव-जगत् के रूप में प्रगट हो गया है। वस्तुजगत् का जो दैन्य, भाव-जगत् के इन्द्रजाल को अपनी रंगीन छत बना कर आत्मविस्मृत था, आज वही इस इन्द्रधनुषी आकाश को लुप्त होते देख कर अपने अभाव-गह्वर में चीत्कार कर उठा है। देख रहा है कि कितनी गहरी खन्दक़ में वह जीवन-शून्य होकर पड़ा हुआ था। कला को, साहित्य को, समाज को, राजनीति को, आज सबको अभाव-जगत् में भाव-जगत् लाने के लिये सहयोग करना है। वस्तुजगत् की मांसलता में ही भाव-जगत् की कला-प्रतिमा रूपवान् (साकार) होगी। निरी वास्तविकता को प्रमुख बना देने के लिए नहीं, बल्कि भाव-जगत् को पुनर्जन्म देने के लिए नहीं, बल्कि भावजगत् को पुनर्जन्म देने के लिए, जीवन के विषम संगीत को सम पर लाने के लिए, यदि हम अभाव-जगत् को नव-जीवन दे सकें, वस्तुजगत् को परिपूर्ण मनुष्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समाज का स्वर दे सकें तो हमारा भावजगत् (कला का मनोलोक) सचमुच ही स्वर्गीय हो जाय।

आज के अभाव-जगत् में भी हमारे कल्पक कलाकार चिर अपेक्षित रहेंगे, किंतु उनसे निवेदन यह होगा कि सदियों की जो चेतना कुण्ठित होकर आत्मलिप्सु हो गई है, उसमें आत्मनिरीक्षण का संस्कार उत्पन्न करें। आज हमारे कला जगत् को वर्ड्सवर्थ जैसी आत्माएँ चाहिए।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कलाजगत् और वस्तुजगत्

लिखने की एक कला होती है। जिसे इस कला का अभ्यास हो गया है उसका लिखा हुआ सभी कुछ मनोरम होता है—साहित्य के सम्मेलन में स्थान पाता है। प्रस्तुत रचना यद्यपि है तो आलोचना, विचार से रँगा हुआ सामयिक लेख पर भाषा और शैली के चमत्कार ने उसमें साहित्य के प्राण भर दिए हैं। वस्तु और कला का सम्बन्ध स्थिर करने में लेखक ने ऐसी सरस भाषा और लोकप्रिय व्यास शैली का प्रयोग किया है कि प्रत्येक साहित्यिक पाठक उसे पढ़कर सुखी होता है। लेख का प्रारम्भ ही ऐसा साहित्यिक और नाटकीय है कि पाठक का मन तुरन्त उस विषय की ओर खिच जाता है। फिर धीरे-धीरे एक-एक बात सामने आती है। लेखक ने प्रत्येक बात को नाप तौल कर प्रकरणों की संख्या-सी गिना दी है।

इस निबंध का दूसरा गुण यह है कि उसके सुलझे विचार लेखक के मननशील अनुभव का परिचय देते हैं। ये विचार सूखे और तर्कप्रसूत नहीं, बल्कि ऐसे हरे और भावप्रसूत हैं कि उन्हें पढ़ने से आलोचना का नहीं, रचना का आभास मिलता है।

किन्तु लेखक ने अपनी भाषा को 'अन्तःसलिला सरस्वती' बनाने के फेर में कहीं-कहीं भाव-प्रवाह से जो हाथ धो डाला है वह उसकी कलाजगत् की अतिभक्ति का सूचक है। लेखक के लिए जैसे अभ्यास की आवश्यकता होती है वैसे ही 'श्रुत' की भी।

— — —

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दो बातें

मैंने 'बोलचाल' नाम की एक पुस्तक लिखी है। बाल से लेखर तलवे तक जितने अंग हैं, उन सब अंगों के कुल मुहाविरों पर, इसमें पैंतीस सौ से कुछ अधिक चौपदे हैं। अंगों के मुहाविरों के अलावा और भी बहुत से मुहाविरे काम पढ़ने पर इसमें आ गये हैं। चौपदे बिल्कुल बोलचाल के रंग में ढले हैं, नमक-मिर्च लगने पर बात चटपटी हो जाती है, गढ़ी और सीधी-सादी बातें भी एक सी नहीं होतीं, चौपदे और बोलचाल की भाषा में कुछ भेद है तो इतना ही।

कोई दिन था कि हम कुछ थे, कुछ नहीं, बहुत कुछ थे। देवता हमारा मुँह जोहते थे, स्वर्ग में हमारी धूम थी, और धरती हमारे उधारने से ही उधरती थी। हम आसमान में उड़ते, समुद्र को छानते, जंगलों को खँगालते, और पहाड़ों को हिला देते थे। दुनिया में हमारे नामलेवा थे। देस-देस में हमारी धाक थी, दिशायें हमारी जोत से जगमगाती थीं और आसमान के तारे हमें आँख फाड़-फाड़ कर देखते थे। हम अन्धकार में उजाला करते थे, बन्द आँखों को खोलते थे, सोतों को जगाते थे और उकठे काठ को भी हरा बना देते थे। सूरमापन हम पर निछावर होता था, दिलेरी हमारे बाँट में पड़ी थी, बहादुरी हम पर दम भरती थी, और आन-बान हमारा बाना था। हम बेजान में जान डालते थे. सूखी नसों में लहू भरते थे, बिगड़ों को बनाते थे, गिरों को उठाते थे, बे-जड़ों की जड़ जमाते थे, और भूलों को राह पर लगाते थे। बड़े-बड़े अठकपाली हमारे सामने अपना अठकपालीपन भूल जाते थे, हमारा तेवर बदलते ही बेतरह आँख बदलनेवाले राजा-महाराजाओं का रंग बदल जाता था, और दुनिया में हवा बाँधनेवालों

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगती थीं। आज ये बातें मुँह पर नहीं लाई जा सकतीं, अब हमारा रंग इतना बिगड़ गया है कि हम पहचाने भी नहीं जा सकते। हमी लोगों में ऐसे लोग हैं जो यह जानते ही नहीं कि हम क्या और कौन थे और अब क्या हो गये। इसमें न किसी का जादू काम कर रहा है और न किसी का टोना. न दैव हमारे पीछे पड़ा है, न बुरा भाग, जो कुछ हम भोग रहे हैं वे हमारी करतूतों के फल हैं, और आज भी वे हमें रसातल ले जा रही हैं।

आज दिन हमारे सिरधरों का ही सिर नहीं फिर गया है, आगे चलनेवाले भी आग लगा रहे हैं, भगवा पहनने वाले भी भाँग खाये बैठे हैं। जिनको वीर होने का दावा है, वे भाइयों की मूँछें उखाड़ कर मूँछ मरोड़ रहे हैं, दूसरों का घर मूस कर अपना घर भर रहे हैं, औरों के लहू से हाथ रँग कर अपना हाथ गरम कर रहे हैं, सगों का पेट काट कर अपना पेट पाल रहे हैं, और बेबसों के घर को जलाकर अपने घर में घी के दीये बाल रहे हैं। पूँजीवालों का पेट दिन दिन मोटा हो रहा है पर किसी सटे पेटवाले को देखते ही उनकी आँख पर पट्टी बँध जाती है। संडे मुसंडे डंडे के बल माल भले ही चाब लें पर भूख से जिनकी आँखें नाच रही हैं उनको वे कानी कौड़ी भी देने के रवादार नहीं। जो हमारा मुँह देखकर जीते हैं, हम उन्हीं को निगल रहे हैं, और जो हमारे भरोसे पाँव फैलाकर सोते हैं हम उन्हीं को आँख बन्द करके लूट रहे हैं। हमी में डूबकर पानी पीनेवाले हैं, आँख में उँगली करनेवाले हैं, खड़े बाल निगलने वाले हैं, आग लगा कर पानी को दौड़नेवाले हैं, रँगे सियार हैं, भीगी बिल्ली हैं, और काठ के उल्लू हैं।

आज हमारे घरों में फूट पाँव तोड़ कर बैठी है, वैर अकड़ा खड़ा हुआ है, अनबन की बन आई है, और रगड़े-झगड़े गुलछर्रे उड़ा रहे हैं। हम से लम्बी लम्बी बातें सुन लो, लम्बी डगें भरने की कहानियाँ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कहलवा लो, लेकिन लम्बी तान कर सोना ही हमें पसन्द है। आँख होते हमें सूझता नहीं, कान होते हम सुनते नहीं, हाथ होते हम बेहाथ हैं, और पाँव होते बेपाँव। समझ चल बसी, विचारों का दिवाला निकल गया, आस पर ओस पड़ गई, सूझ को पाला मार गया, मगर कान पर जूँ तक नहीं रेंगती। बेटियाँ बिक रही हैं, माँ-बहनें लुट रही हैं, जोरू पिस रही हैं, मगर हमें दाँत पीसना नहीं आता। दूसरे धूल में फूल उगाते हैं, हमें फूल में भी धूल ही हाथ आती है। लोग काँटों में फूल चुनते हैं, हम काँटों में उलझ-उलझ मरते हैं। आबरू उतर गई, पतपाती चला गया, बड़ाई धूल में मिल गई, मगर हम धूल फाँकने ही में मस्त हैं।

हम आसमान के तारे तोड़ना चाहते हैं, मगर काम आँखों के तारे भी नहीं देते। हम पर लगा कर उड़ना चाहते हैं, मगर उठाने से पाँव भी नहीं उठते। हम पालसी पर पालिश करके उसके रंग को छिपाना चाहते हैं, पर हमारी यह पालसी हमारे बने हुए रंग को भी बदरंग कर देती है। हम राग अलापते हैं मेल-जोल का, पर न जाने कहाँ का खटराग पेट में भरा पड़ा है। हम जाति-जाति को मिलाते चलते हैं, मगर ताब अछूतों से आँख मिलाने की भी नहीं। हम जाति-हित की तानें सुनाने के लिये सामने आते हैं, मगर ताने दे-दे कलेजा छलनी बना देते हैं। हम कुल हिन्दू जाति को एक रंग में रँगना चाहते हैं मगर जाति जाति के अपनी डफली और अपने अपने राग ने रही सही एकता को भी धता बता दिया है। हम चाहते हैं देश को उठाना, पर आप मुँह के बल गिर पड़ते हैं। हमें देश की दशा सुधारने की धुन है, पर आप सुधारने पर भी नहीं सुधरते। हम चाहते हैं जाति की कसर निकालना, मगर हमारे जी की कसर निकाले भी नहीं निकलती। हम जाति को ऊँचे उठाना चाहते हैं, पर हमारी आँख ऊँची होती ही नहीं। हम चाहते हैं जाति को ज़िलाना, मगर हमें मर मिटना आता ही नहीं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दू जाति अपनी भूलभुलैया में बेतरह फँसी हैं, इससे हमारा जी दुखी है, हमारा कलेजा चोट खा रहा है, दिल में फफोले पड़ रहे हैं। हमने 'बोलचाल' में दिल के फफोसे फोड़े हैं वे उसमें चौपदे की सूरत में फूटे हैं। उसमें वे बिखरे हुए हैं, इस पुस्तक में एक जगह जमा किये गये हैं; उसके छपने में अभी देर है, इधर देर की ताव नहीं। हमें जल्दी इसलिये है कि जितना ही जल्द हिन्दुओं की आँखें खुलें, उतना ही अच्छा। उनका जी दुखाना. उन्हें कोसना, उन्हें बनाना, उन्हें खिझाना, उनकी उमंगों को मिटियामेट करना पसन्द नहीं, अपने हाथ से अपने पाँव में कुल्हाड़ी कौन मारेगा; अपनी उँगलियों से अपनी आँखों को कौन कुचालेगा। मगर अपनी बुराइयों, कमजोरियों, भूलचूकों, ऐबों, लापरवाइयों और नासमझियों पर आँख डालनी ही पड़ेगी; बिना इसके निबाह नहीं। दवा कड़वी होती है, मगर उसको पीते हैं, फेंक नहीं देते। हमारे चौपदे कुछ कड़वे होवें, मगर वे हितजल के गडुवे हैं। अगर उनमें से किसी एक के पढ़ने से भी जाति के कान खड़े हुए और उसकी आँखें खुलीं, हमारे माई के लाल सच्चे लाल बने, तो मेरे मुँह की लाली रह जावेगी और मैं समझूँगा कि मैंने वामन होकर भी चाँद को छू लिया।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्रुवस्वामिनी

द्वितीय अंक

(शकदुर्ग के भीतर सुनहले कामवाले खंभों पर एक दालान, बीच में छोटी-छोटी सीढ़ियाँ, उसी के सामने काश्मीरी कुराई का सुन्दर लकड़ी का सिंहासन। बीच के दो खम्भे खुले हुए हैं, उनके दोनों ओर मोटे-मोटे चित्र बने हुए तिब्बती ढंग के रेशमी पर्दे पड़े हैं। सामने बीच में थोड़ा-सा आँगन की तरह, जिसके दोनों ओर क्यारियाँ, उनमें दो-चार पौधे और लताएँ फूलों से लदी दिखलाई पड़ती हैं।)

कोमा—(धीरे-धीरे पौधों को देखती हुई प्रवेश करके) इन्हें सींचना पड़ता है, नहीं तो इनकी रुखाई और मलिनता सौंदर्य्य पर आवरण डाल देती है। (देखकर) आज तो इनके पत्ते धुले हुए भी नहीं हैं। इनमें फूल जैसे मुकुलित होकर ही रह गये हैं। खिलखिलाकर हँसने का मानों इन्हें बल नहीं। (सोचकर) ठीक इधर कई दिनों से महाराज अपने सन्धि विग्रह में लगे हुए हैं और मैं भी यहाँ नहीं आई, तो फिर इनकी चिन्ता कौन करता? उस दिन मैंने यहाँ दो मञ्च और भी रख देने के लिए कह दिया था; पर सुनता कौन है? सब जैसे रक्त के प्यासे! प्राण लेने और देने में पागल! वसन्त का उदास और अलस पवन आता है, चला जाता है। कोई उस स्पर्श से परिचित नहीं। ऐसा तो वास्तविक नहीं है? (सीढ़ी पर बैठ कर सोचने लगती है) प्रणय! प्रेम! जब सामने से आते हुए तीव्र आलोक की तरह आँखों में प्रकाश-पुञ्ज उड़ेल देता है, तब सामने की सब वस्तुएँ और भी अस्पष्ट हो जाती हैं। अपनी ओर से कोई भी प्रकाश की किरण नहीं। तब वही केवल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वही ! हो पागलपन, भूल हो, दुःख मिले। प्रेम करने की एक ऋतु होती है। उसमें चूकना, उसमें सोच समझ कर चलना दोनों बराबर हैं। सुना है दोनों ही संसार के चतुरों की दृष्टि में मूर्ख बनते हैं तब कोमा ! तू किसे अच्छा समझती है ?

(गाती है)

यौवन तेरी चंचल छाया।
इसमें बैठ घूँट भर पी लूँ जो रस तू है लाया।
मेरे प्याले में मद बनकर कब तू छली समाया।
जीवन वंशी के छिद्रों में स्वर बन कर लहराया।
पलभर रुकनेवाले ! कह तू पथिक ! कहाँ से आया ?

(चुप होकर आँखें बन्द किये तन्मय होकर बैठी रह जाती है)

(शकराज का प्रवेश। हाथ में एक लम्बी तलवार लिये हुए चिंतित भाव से आकर इस तरह खड़ा होता है जिससे कोमा को नहीं देखता।)

शकराज—खिंगल अभी नहीं आया, क्या वह बन्दी तो नहीं कर लिया गया ? नहीं, यदि वे अन्धे नहीं हैं तो उन्हें अपने सिर पर खड़ी विपत्ति दिखाई देनी चाहिए। (सोचकर) विपत्ति ! केवल उन्हीं पर तो नहीं है, हम लोगों को भी रक्त की नदी बहानी पड़ेगी। चित्त बड़ा चंचल हो रहा है, तो बैठ जाऊँ ? इस एकान्त में अपने बिखरे हुए मन को सँभाल लूँ ? (इधर-उधर देखता है, कोमा आहट पाकर उठ खड़ी होती है। उसे देखकर) अरे, कोमा ! कोमा !

कोमा—हाँ महाराज ! क्या आज्ञा है ?

शकराज—(उसे स्निग्धभाव से देखकर) आज्ञा नहीं, कोमा ! तुम्हें आज्ञा न दूँगा। तुम रूठी हुई सी क्यों बोल रही हो ?

कोमा—रूठने का सुहाग मुझे मिला कब ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शकराज—आज-कल मैं जैसी भीषण परिस्थिति में हूँ, उसमें अन्य-मनस्क होना स्वाभाविक है, तुम्हें यह न भूल जाना चाहिए।

कोमा—तो क्या आपकी दुश्चिंताओं में मेरा भाग नहीं। मुझे उससे अलग रखने से क्या वह परिस्थिति कुछ सरल हो रही है।

शकराज—तुम्हारे हृदय को उन दुर्भावनाओं में डाल कर मैं व्यथित नहीं करना चाहता। मेरे सामने जीवन-मरण का प्रश्न है।

कोमा—प्रश्न स्वयं किसी के सामने नहीं आते। मैं तो समझती हूँ कि मनुष्य उन्हें जीवन के लिये उपयोगी समझता है। मकड़ी की तरह लटकने के लिये अपने-आप ही जाला बुनता है। जीवन का प्राथमिक प्रसन्न उल्लास मनुष्य के भविष्य में मंगल और सौभाग्य को आमन्त्रित करता है। उससे उदासीन न होना चाहिए महाराज!

शकराज—सौभाग्य और दुर्भाग्य मनुष्य की दुर्बलता के भय हैं। मैं तो पुरुषार्थ को ही सबका नियामक समझता हूँ। पुरुषार्थ ही सौभाग्य को खींच लाता है, मैं इस युद्ध के लिये उत्सुक नहीं था कोमा, मैं ही दिग्विजय के लिये नहीं निकला था।

कोमा—संसार के नियम के अनुसार आप अपने से महान् के सम्मुख थोड़ा सा विनीत बनकर इस उपद्रव से अलग रह सकते थे।

शकराज—यही तो मुझसे नहीं हो सकता।

कोमा—अभावमयी लघुता में मनुष्य अपने को महत्वपूर्ण दिखाने का अभिनय न करे तो क्या अच्छा नहीं है?

शकराज—(चिढ़कर) यह शिक्षा अभी रहने दो कोमा, मैं किसी से बड़ा नहीं हूँ तो छोटा भी नहीं बनना चाहता। तुम अभी तक पाषाणी प्रतिमा की तरह वहीं खड़ी हो, मेरे पास आओ।

कोमा—पाषाणी! हा, राजा! पाषाण के भीतर भी कितने मधुर स्रोत बहते रहते हैं; उनमें मदिरा नहीं, शीतल जल की धारा बहती है। प्यासों की तृप्ति—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शकराज—किन्तु मुझे तो इस समय स्फूर्ति के लिये एक प्याला मदिरा ही चाहिए।

कोमा—(स्थिर दृष्टि से देखती हुई) मैं ले आती हूँ। आप बैठिए। (कोमा एक छोटा सा मंच रख देती है और चली जाती है। शकराज मञ्च पर बैठ जाता है। खिंगल का प्रवेश)

शकराज—कहो जी, क्या समाचार है ?

खिंगल—महाराज ! मैंने उन्हें अच्छी तरह समझा दिया कि हम लोगों का अवरोध दृढ़ है। उन्हें दो में से एक करना ही होगा। या तो अपने प्राण दें अन्यथा मेरे सन्धि नियमों को स्वीकार करें।

शकराज—(उत्सुकता से) तो वे समझ गये ?

खिंगल—दूसरा उपाय ही क्या था ? यह छोकड़ा रामगुप्त, समुद्रगुप्त की तरह दिग्विजय करने निकला था। उसे इन बीहड़ पहाड़ी घाटियों का परिचय नहीं मिला था। किन्तु सब बातों को समझ कर वह आपके नियमों को मानने के लिये बाध्य हुआ।

शकराज—(प्रसन्नता से उठकर उसके दोनों हाथ पकड़ लेता है) ऐं, तुम सच कहते हो ? मुझे तो आशा नहीं। क्या मेरा दूसरा प्रस्ताव भी रामगुप्त ने मान लिया ?

(स्वर्ण के कलश में मदिरा लेकर कोमा चुपके से आकर पीछे खड़ी हो जाती है।)

खिंगल—हाँ, महाराज ! उसने माँगे हुए सब उपहारों को देना स्वीकार किया और ध्रुवस्वामिनी भी आपकी सेवा में शीघ्र ही उपस्थित होती है। (कोमा चौंक उठती है और शकराज प्रसन्नता से खिंगल के हाथों को झकझोरने लगता है।)

शकराज—खिंगल ! तुमने कितना सुन्दर समाचार सुनाया ! आज देवपुत्रों की स्वर्गीय आत्मायें प्रसन्न होंगी। उनकी पराजयों का प्रतिशोध है। हम लोग गुप्तों की दृष्टि में जंगली, बर्बर और असभ्य हैं, तो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

फिर मेरी प्रतिहिंसा भी बर्बरता के ही अनुकूल होगी। हाँ, मैंने अपने शूर-सामन्तों के लिये भी स्त्रियाँ माँगी थीं।

खिंगल – वे भी साथ ही आवेंगी।

शकराज—तो फिर सोने की झाँझवाले नाच का प्रबन्ध करो। इस विजय का उत्सव मनाया जाय। और मेरे सामन्तों को भी शीघ्र बुला लाओ।

(खिंगल का प्रस्थान। शकराज अपनी प्रसन्नता में उद्विग्न-सा इधर-उधर टहलने लगता है। और कोमा अपना कलश लिये हुए धीरे-धीरे सिंहासन के पास जाकर खड़ी हो जाती है। चार सामन्तों का प्रवेश। दूसरी ओर से नर्तकियों का दल आता है। शकराज उनकी ओर ही देखता हुआ सिंहासन पर बैठ जाता है। सामन्त लोग उसके पैरों के नीचे सीढ़ियों पर बैठते हैं। नर्तकियाँ नाचती हुई गाती हैं।)

गाना

अस्ताचल पर युवती सन्ध्या की
खुली अलक घुँघराली है।
लो, मानिक मदिरा की धारा
अब बहने लगी निराली है।
भर ली पहाड़ियों ने अपनी
झीलों की रत्नमयी प्याली।
झुक चलीं चूमने वल्लरियों
से लिपटी तरु की डाली है।
यह लगा पिघलने मानिनियों का
हृदय प्रणय मृदु रोष भरा।
वे हँसती हुई दुलारभरी
मधु लहर उठाने वाली हैं।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भरने निकले हैं प्यार भरे,
जोड़े कुंजों की झुरमुट से।
इस मधुर अँधेरी में अब तक,
क्या इनकी प्याली खाली है?
भर उठीं प्यालियाँ, सुमनों ने,
सौरभ मकरन्द मिलाया है।
कामिनियों ने अनुराग भरे,
अधरों से उन्हें लगाया है।
वसुधा मदमाती हुई उधर
आकाश लगा देखो झुकने।
सब झूम रहे अपने सुख में
तूने क्यों बाधा डाली है?

एक सामन्त—श्रीमान्! इतनी बड़ी विजय के अवसर पर इस सूखे उत्सव से संतोष नहीं होता, जब कि कलश सामने भरा हुआ रखा है।

शकराज—ठीक है, इन लोगों को केवल कहकर ही नहीं; प्यालियाँ भर कर भी देनी चाहिएँ।

(सब पीते हैं और नर्तकियाँ एक-एक को सानुरोध पान कराती हैं)

दूसरा सामन्त—श्रीमान् की आज्ञा मानने के अतिरिक्त दूसरी गति नहीं। उन्होंने समझ से काम लिया; नहीं तो हम लोगों को इस रात की कालिमा में रक्त की लाली मिलानी पड़ती।

तृतीय सामन्त—क्यों, बकबक करते हो? चुपचाप इस बिना परिश्रम की विजय का आनन्द लो। लड़ना पड़ता तो सारी हेकड़ी भूल जाती।

दूसरा सामन्त—(क्रोध से लड़खड़ाता हुआ उठता है) हमसे?

तीसरा—हाँ जी तुमसे!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरा सामन्त—तो फिर आओ तुम्हीं से निपट लें। (सब परस्पर लड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। शकराज खिंगल को संकेत करता है। वह उन लोगों को बाहर लिवा जाता है। तूर्यनाद)

शकराज—रात्रि के आगमन की सूचना हो गई। दुर्ग का द्वार अब शीघ्र ही बन्द होगा। अब तो हृदय अधीर हो रहा है खिंगल !

(खिंगल का पुनः प्रवेश)

खिंगल—दुर्ग-तोरण में शिविकायें आ गई हैं।

शकराज—(गर्व से) तब विलम्ब क्यों ? उन्हें अभी ले आओ।

खिंगल—(सविनय) किन्तु रानी की एक प्रार्थना है।

शकराज—क्या ?

खिंगल—वह पहले केवल श्रीमान् से ही सीधे भेंट करना चाहती हैं। उनकी मर्यादा.........

शकराज—(ठठाकर हँसते हुए) क्या कहा—मर्यादा ! भाग्य ने झुकने के लिए जिन्हें विवश कर दिया है उन लोगों के मन में मर्यादा का ध्यान और भी अधिक रहता है। यह उनकी दयनीय दशा है।

खिंगल—वह श्रीमान् की रानी होने आ रही हैं।

शकराज—(हँसकर) अच्छा, तुम मध्यस्थ हो न ? तुम्हारी बात मानकर मैं उससे एकान्त में ही भेंट करूँगा। जाओ।

(खिंगल का प्रस्थान)

कोमा—महाराज ! मुझे क्या आज्ञा है ?

शकराज—(चौंककर) अरे, तुम अभी यहीं खड़ी हो ? मैं तो जैसे भूल ही गया था। मेरा हृदय चंचल हो रहा है। मेरे समीप आओ कोमा।

कोमा—नई रानी के आगमन की प्रसन्नता से ?

शकराज—(सँभलकर) नई रानी का आना क्या तुम्हें अच्छा नहीं लगा कोमा ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोमा—(निर्विकार भाव से) संसार में बहुत सी बातें बिना अच्छी हुए भी अच्छी लगती ही हैं, और बहुत सी अच्छी बातें बुरी मालूम पड़ती हैं।

शकराज—(झुँझलाकर) तुम तो आचार्य मिहिरदेव की तरह दार्शनिकों की-सी बातें कर रही हो !

कोमा—वे मेरे पिता तुल्य हैं, उन्हीं की शिक्षा में मैं पली हूँ। हाँ ठीक है, जो बातें राजा को अच्छी लगें वे ही मुझे भी रुचनी चाहिए।

शकराज—(अव्यवस्थित होकर) अच्छा, तुम इतनी अनुभूतिमयी हो, यह मैं आज जान सका।

कोमा—राजा, तुम्हारी स्नेह-सूचनाओं की सहज प्रसन्नता और मधुर अलापों ने जिस दिन मन के नीरस और नीरव शून्य में संगीत की, वसन्त और मकरन्द की सृष्टि की थी, उसी दिन से मैं अनुभूतिमयी बन गई हूँ। क्या वह मेरा भ्रम था ? कह दो—कह दो कि वह तेरी भूल थी। (उत्तेजित कोमा सिर उठाकर राजा की आँखों से आँख मिलाती है।)

शकराज—(संकोच से) नहीं कोमा, वह भ्रम नहीं था। मैं सचमुच तुम्हें प्यार करता हूँ।

कोमा—(उसी तरह) तब भी यह बात ?

शकराज—(सशंक) कौन सी बात ?

कोमा—वही जो आज होने जा रही है ! मेरे राजा ! आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न कराकर अपने गर्व की तृप्ति के लिये कैसा अनर्थ कर रहे हो ?

शकराज—(हँसकर बात उड़ाते हुए) पागल कोमा ! वह मेरा राजनीति का प्रतिशोध है।

कोमा—(दृढ़ता से) किन्तु, राजनीति का प्रतिशोध, क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता ?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शकराज—जो विषय न समझ में आवे उस पर विवाद न करो।

कोमा—(खिन्न होकर) मैं क्यों न करूँ ? (ठहर कर) किन्तु नहीं, मुझे विवाद करने का अधिकार नहीं। यह मैं समझ गई (वह दुखी होकर जाना चाहती है कि दूसरी ओर से मिहिरदेव का प्रवेश)

शकराज—(संभ्रम से खड़ा होकर) धर्मपूज्य ! मैं वन्दना करता हूँ।

मिहिरदेव—कल्याण हो ! (कोमा के सिर हाथ रखकर) बेटी ! मैं तो तुझको ही देखने चला आया। तू उदास क्यों है ? (शकराज की ओर गूढ़ दृष्टि से देखने लगता है)

शकराज—आचार्य ! रामगुप्त का दर्प दलन करने के लिये मैंने ध्रुवस्वामिनी को उपहार में भेजने की आज्ञा उसे दी थी। आज रामगुप्त की रानी मेरे दुर्ग में आई है। कोमा को इसमें आपत्ति है।

मिहिरदेव—(गंभीरता से) ऐसे काम में तो आपत्ति होनी ही चाहिए राजा ! स्त्री का सम्मान नष्ट करके तुम जो भयानक अपराध करोगे, उसका फल क्या अच्छा होगा ? और भी, यह अपनी भावी पत्नी के प्रति तुम्हारा अत्याचार होगा।

शकराज—(क्षोभ से) भावी पत्नी ?

मिहिरदेव—अरे क्या तुम इस क्षणिक सफलता से प्रमत्त हो जाओगे ? क्या तुमने अपने आचार्य की प्रतिपालिता कुमारी के साथ स्नेह का सम्बन्ध नहीं स्थापित किया है ? क्या इसमें भी सन्देह है ? राजा ! स्त्रियों का स्नेह-विश्वास भङ्ग कर देना कोमल तन्तु को तोड़ने से भी सहज है ; परन्तु सावधान होकर उसके परिणाम को भी सोच लो।

शकराज—मैं समझता हूँ कि आप मेरे राजनीतिक कामों में हस्तक्षेप न करें तो अच्छा हो।

मिहिरदेव—राजनीति ? राजनीति ही मनुष्यों के लिए सब कुछ नहीं है। राजनीति के पीछे नीति से भी हाथ न धो बैठो, जिसका विश्व-मानव के साथ व्यापक सम्बन्ध है। राजनीति की साधारण छलनां

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाओं से सफलता प्राप्त करके क्षण भर के लिए तुम अपने को चतुर समझ लेने की भूल कर सकते हो ; परन्तु इस भीषण संसार में एक प्रेम करनेवाले हृदय को खो देना, सबसे बड़ी हानि है। शकराज ! दो प्यार करनेवाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास है।

शकराज—बस, बहुत हो चुका ! आपके महत्त्व की भी एक सीमा होगी। अब आप यहाँ से नहीं जाते हैं तो मैं ही चला जाता हूँ। (प्रस्थान)

मिहिरदेव—चल कोमा। हम लोगों को लताओं, वृक्षों और चट्टानों से छाया और सहानुभूति मिलेगी। इस दुर्ग से बाहर चल।

कोमा—(गद्‌गद् कण्ठ से) पिताजी ! (खड़ी रह जाती है)

मिहिरदेव—बेटी ! हृदय को सँभाल। कष्ट सहन के लिये प्रस्तुत हो जा। प्रतारणा में बड़ा मोह होता है। उसे छोड़ने का मन नहीं करता। कोमा ! छल का बहिरंग सुन्दर होता है—विनीत और आकर्षण भी ; पर दुखदायी और हृदय को बेधने के लिए। इस बन्धन को तोड़ डाल।

कोमा—(सकरुण) तोड़ डालूँ पिताजी ! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलारभरी वल्लरी, मेरे आँख बन्द करके चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गई है। दे दूँ एक झटका—उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जायँ और वह छिन्न होकर धूल में लोटने लगे ? ना ऐसी कठोर आज्ञा न दो।

मिहिरदेव—(निश्वास लेकर आकाश को देखते हुए) यहाँ तेरी भलाई होती, तो मैं चलने के लिए न कहता। हमलोग अखरोट की छाया में बैठेंगे, झरनों के किनारे दाख के कुञ्जों में विश्राम करेंगे। जब नीले आकाश में मेघों के टुकड़े मानसरोवर जानेवाले हंसों का अभिनय करेंगे, तब तू अपनी तकली पर ऊन कातती हुई कहानी कहेगी और मैं सुनूँगा।

कोमा—तो चलूँ ? (एक बार चारों ओर देखकर) एक घड़ी के लिए मुझे……

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मिहिरदेव—(ऊब कर आकाश की ओर देखता हुआ) तू नहीं मानती ? वह देख, नील-लोहित रंग का धूमकेतु अविचल भाव से इस दुर्ग की ओर कैसा भयानक संकेत कर रहा है !

कोमा—(उधर देखते हुए) तब भी एक क्षण मुझे······

मिहिरदेव—पागल लड़की ! अच्छा, मैं फिर आऊँगा । तू सोच ले, विचार कर ले । (जाता है)

कोमा—जाना ही होगा ? तब यह मन की उलझन क्यों अमङ्गल का अभिशाप, अपनी क्रूर हँसी से इस दुर्ग को कँपा देगा, और सुख के स्वप्न विलीन हो जायँगे। मेरे यहाँ रहने से उन्हें अपने भावों को छिपाने के लिये बनावटी व्यवहार करना होगा ; पग पग पर अपमानित होकर मेरा हृदय उसे सह न सकेगा । तो चलूँ ? यही ठीक है । पिता-जी ! ठहरिए, मैं आती हूँ ।

शकराज—(प्रवेश करके) कोमा !

कोमा—जाती हूँ ! राजा !

शकराज—कहाँ ? आचार्य के पास ? मालूम होता है कि वे दुखी होकर चले गये हैं ।

कोमा—धूमकेतु को दिखा कर उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हारे दुर्ग में रहने से अमङ्गल होगा ।

शकराज—(भयभीत होकर उसे देखता हुआ) ओह भयावनी पूँछ वाला धूमकेतु ! आकाश का उच्छृङ्खल पर्यटक ! नक्षत्र लोक का अभि-शाप ! कोमा ! आचार्य को बुलाओ । वे जैसा आदेश देंगे वैसा ही मैं करूँगा ? इस अमङ्गल की शान्ति होनी चाहिए ।

कोमा—वे बहुत चिढ़ गये हैं । अब उनको प्रसन्न करना सहज नहीं है । वे मुझे अपने साथ लिवा जाने को मेरी प्रतीक्षा करते होंगे ।

शकराज—कोमा ! तुम कहाँ जाओगी ?

कोमा—पिताजी के साथ ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शकराज—मेरा प्यार ! मेरा स्नेह सब भुला दोगी ? इस अमंगल की शान्ति करने के लिये आचार्य को न समझाओगी !

कोमा—(खिन्न होकर) प्रेम का नाम न लो। वह एक पीड़ा थी जो छूट गई। उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जायगी। राजा, मैं तुम्हें प्यार नहीं करती। मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरुष-मूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी। इस स्वार्थ-मलिन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं। अपने तेज की अग्नि में जो सब कुछ भस्म कर सकती हो उस दृढ़ता का, आकाश के नक्षत्र कुछ बना-बिगाड़ नहीं सकते। तुम आशंकामात्र से दुर्बल, कम्पित और भयभीत हो !

शकराज—(धूमकेतु को बार बार देखता हुआ) भयानक ! कोमा, मुझे बचाओ !

कोमा—जाती हूँ ! महाराज ! पिताजी मेरी प्रतीक्षा करते होंगे। (जाती है। शकराज अपने सिंहासन पर हताश होकर बैठ जाता है।)

प्रहरी—(प्रवेश करके) महाराज ! ध्रुवस्वामिनी ने पूछा है कि एकांत हो तो आऊँ।

शकराज—हाँ, कह दो कि यहाँ एकान्त है। और देखो यहाँ दूसरा कोई न आने पावे।

(प्रहरी जाता है। शकराज चंचल होकर टहलने लगता है। धूमकेतु की ओर दृष्टि जाती है तो भयभीत होकर बैठ जाता है)

शकराज—तो इसका कोई उपाय नहीं ? न जाने क्यों मेरा हृदय घबरा रहा है। कोमा को समझा-बुझाकर ले आना चाहिये। (सोचकर) किन्तु इधर ध्रुवस्वामिनी जो आ रही है ! तो भी देखूँ यदि कोमा प्रसन्न हो जाय……। (जाता है)

(स्त्री-वेश में चन्द्रगुप्त आगे पीछे ध्रुवस्वामिनी स्वर्णखचित उत्तरीय

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

में सब अंग छिपाये हुए आती है। केवल खुले हुए मुँह पर प्रसन्न चेष्टा दिखलाई देती है।)

चन्द्रगुप्त—तुम आज कितनी प्रसन्न हो।

ध्रुवस्वामिनी—और तुम क्या नहीं ?

चन्द्रगुप्त—मेरे जीवन-निशीथ का ध्रुव नक्षत्र इस घोर अन्धकार में अपनी स्थिर उज्ज्वलता से चमक रहा है। आज महोत्सव है न ?

ध्रुवस्वामिनी—लौट जाओ, इस तुच्छ नारी जीवन के लिये इतने महान् उत्सर्ग की आवश्यकता नहीं।

चन्द्रगुप्त—देवि ! यह तुम्हारा क्षणिक मोह है। मेरी परीक्षा न लो। मेरे शरीर ने चाहे जो रूप धारण किया हो; किन्तु हृदय निश्छद्म है !

ध्रुवस्वामिनी—अपनी कामना की वस्तु न पाकर यह आत्महत्या जैसा प्रसंग तो नहीं है ?

चन्द्रगुप्त—तीखे वचनों में मर्माहत करके भी आज कोई मुझे इस मृत्यु-पथ से विमुख नहीं कर सकता। मैं केवल अपना कर्तव्य करूँ इसी में मुझे सुख है।

(ध्रुवस्वामिनी संकेत करती है। शकराज का प्रवेश। दोनों चुप हो जाते हैं। वह दोनों को चकित हो देखता है।)

शकराज—मैं किसको रानी समझूँ ? रूप का ऐसा तीव्र आलोक ! नहीं मैंने कभी नहीं देखा था। इसमें कौन ध्रुवस्वामिनी है ?

ध्रुवस्वामिनी—यह मैं आ गई हूँ।

चन्द्रगुप्त—(हँसकर) शकराज को तुम धोखा नहीं दे सकती हो। ध्रुवदेवी कौन है ? यह एक अन्धा भी बता सकता है।

ध्रुवस्वामिनी—(आश्चर्य से) चन्द्रे ! तुमको क्या हो गया है ? यहाँ आने पर तुम्हारी इच्छा रानी बनने की हो गई है ? या मुझे शकराज से बचा लेने के लिए यह तुम्हारी स्वामिभक्ति है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(शकराज चकित होकर दोनों की ओर देखता है।)

चन्द्रगुप्त—कौन जाने तुम्हीं ऐसा कर रही हो ?

ध्रुवस्वामिनी—चन्द्रे ! तुम मुझे दोनों ओर से नष्ट न करो। यहाँ से लौट जाने पर भी क्या मैं गुप्तकुल के अन्तःपुर में रहने पाऊँगी ?

चन्द्रगुप्त—चन्द्रे कहकर मुझको पुकारने से तुम्हारा क्या तात्पर्य है ? यह अच्छा झगड़ा तुमने फैलाया। इसीलिये मैंने एकान्त में मिलने की प्रार्थना की थी।

ध्रुवस्वामिनी—तो क्या मैं यहाँ भी छली जाऊँगी ?

शकराज—ठहरो, (दोनों को ध्यान से देखता हुआ) क्या चिन्ता है यदि मैं दोनों को ही रानी समझ लूँ।

ध्रुवदेवी—ऐं………

चन्द्रगुप्त—हैं………

शकराज—क्यों इसमें क्या बुरी बात है ?

चन्द्रगुप्त—जी नहीं, यह नहीं हो सकता। ध्रुवस्वामिनी कौन है पहले इसका निर्णय होना चाहिए।

ध्रुवस्वामिनी—(क्रोध से) चन्द्रे ! मेरे भाग्य के आकाश में, धूमकेतु सी अपनी गति बन्द करो।

शकराज—(धूमकेतु की ओर देखकर भयभीत-सा) ओह, भयानक ! (व्यग्रभाव से टहलने लगता है)

चन्द्रगुप्त—(शकराज की पीठ पर हाथ रखकर) सुनिए—

ध्रुवस्वामिनी—चन्द्रे !

चन्द्रगुप्त—इस धमकी से तो कुछ लाभ नहीं।

ध्रुवस्वामिनी—तो फिर मेरा और तुम्हारा जीवन-मरण साथ ही होगा।

चन्द्रगुप्त—तो डरता कौन है ? (दोनों ही शीघ्र कटार निकाल लेते हैं।)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शकराज—(घबराकर) हैं, यह क्या ? तुम लोग यह क्या कर रही हो ? ठहरो, आचार्य ने ठीक कहा है—आज शुभ मुहूर्त नहीं। मैं कल विश्वसनीय व्यक्ति को बुला कर इसका निश्चय कर लूँगा। आज तुम लोग विश्राम करो।

ध्रुवस्वामिनी—नहीं इसका निश्चय तो आज ही होना चाहिए।

शकराज—(बीच में खड़ा होकर) मैं कहता हूँ न।

चन्द्रगुप्त—वाह रे कहनेवाले !

(ध्रुवस्वामिनी मानो चन्द्रगुप्त के आक्रमण से भयभीत होकर पीछे हटती है और तूर्यनाद करती है। शकराज आश्चर्य से उसे सुनता हुआ सहसा घूमकर चन्द्रगुप्त का हाथ पकड़ लेता है। ध्रुवस्वामिनी झटके से चन्द्रगुप्त का उत्तरीय खींच लेती है और चन्द्रगुप्त हाथ छुड़ा कर शकराज को घेर लेता है।)

शकराज—(चकित-सा) ऐं, यह तुम कौन प्रवंचक !

चन्द्रगुप्त—मैं हूँ चन्द्रगुप्त, तुम्हारा काल ! मैं अकेला आया हूँ ; तुम्हारी वीरता की परीक्षा लेने ! सावधान !

(शकराज भी कटार निकाल कर युद्ध के लिए अग्रसर होता है। युद्ध और शकराज की मृत्यु। बाहर दुर्ग में कोलाहल। 'ध्रुवस्वामिनी की जय' का हल्ला मचाते हुए रक्ताक्त कलेवर सामन्त कुमारों का प्रवेश। ध्रुवस्वामिनी और चन्द्रगुप्त को घेर कर समवेत स्वर से ध्रुव-स्वामिनी की जय हो।)

पटाक्षेप

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ध्रुवस्वामिनी

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद का सफल नाटक है। नाटक का अर्थ है अभिनय और पाठ्य सामग्री का उचित योग। रंगमंच और रसानंद का मणिकांचन-संयोग। यद्यपि रंगमंच वाले प्रायः बड़े नाटककारों पर अविश्वास का प्रस्ताव पास करते रहते हैं तथापि नाटक का इतिहास कहता है कि बड़े और अमर कलाकार कभी लकीर के फकीर नहीं होते, वे रंगमंच से कामचलाऊ सुलह करके ऐसा नाट्य साहित्य रचते हैं जिसके आध्यात्मिक रहस्य, मानवीय अनुभव और रूप-सौन्दर्य युग-युग और देश-देश में गूँजा करते हैं। भारत के रस-वादियों ने भी यही माना है कि रस ही नाटक का प्राण है। बिना रस का अभिनय केवल मनोरंजन है। पश्चिमी आलोचक चेकव ने भी यही कहा है कि जिन कर्त्ताओं को हम अमर कहते हैं, जिनकी कलाकृतियाँ हमें मस्त कर देती हैं, उन सबमें एक सामान्य और बहुत बड़ा गुण मिलता है। वे किसी दूसरे लोक में पहुँच कर, आपको भी उसका अलौकिक अनुभव कराते हैं। प्रसाद ऐसी ही पहुँचे हुए कर्ता हैं। उस लोक में पहुँचना-पहुँचना तो उनका सदा का अभ्यास है। अपने सभी नाटकों में उन्होंने रस का ध्यान रखा है, रंग का नहीं। पर, 'राग रसोइयाँ पागरी बनत बनत बनि जाय।' कभी-कभी ऐसे नाटक भी बन जाते हैं जिनमें रस ही नहीं अभिनय भी पूर्ण मात्रा में रहता है। ध्रुव-स्वामिनी इस अद्‌भुत योग का सर्वोत्तम उदाहरण है।

अभिनय और अनुभूति के साथ ही नाट्य-साहित्य के तत्त्वों का भी विचार होता है। कथावस्तु, चरित्र, संवाद, भाषा, प्रयोजन आदि। ऐसा विचार करते समय यह ध्यान में रखना अच्छा होता है कि गद्य के दो बड़े रूप, उपन्यास और नाटक एक से होते हैं। उनमें भेद केवल श्रव्य और दृश्य का होता है। जहाँ उपन्यास में पूरी कहानी श्रव्य होती है, नाटक में श्रव्य, दृश्य और सूच्य आदि

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का पँचमेल रहता है। जहाँ उपन्यास में वर्णन के लिए पूरी-पूरी छूट रहती है, नाटक में मितव्यय की प्रशंसा होती है।

ध्रुवस्वामिनी में कोई प्रयोजन तो स्पष्ट नहीं है पर सच्ची ऐतिहासिक वस्तु में कवि ने ऐसी प्राणप्रतिष्ठा की है उसमें इस युग की समस्या और उसका उत्तर (हल) प्रतिबिम्बित है।

सफल नाटक के अनेक अंक आत्मपर्यवसित होते हैं। ध्रुवस्वामिनी का दूसरा अंक ऐसा ही है। वही एक अंक एकांकी नाटक के समान पूर्ण हो गया है। बिना थोड़ा इतिहास जाने अथवा तीव्र कल्पना से काम लिए ऐसा कलापूर्ण एकांकी समझ में नहीं आता।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिनन्दनपत्र

श्रीमान् आचार्य बाबू श्यामसुन्दर दास जी
भूतपूर्व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय ।

श्रीमन्,

आज इस विश्वविद्यालय के छात्रगण तथा हिन्दी-विभाग के अध्यापक श्रद्धा और सत्कार, स्नेह और सौमनस्य, संभ्रम और सम्मान के दो-चार कुसुम लेकर आपकी अर्चना करने के लिए आपके सम्मुख उपस्थित हैं। इस समय हमारे हृदय जिन भावों से आन्दोलित हो उठे हैं उन्हें व्यञ्जित करने में शब्द-शक्ति कुण्ठित-सी दिखाई देती है। ऐसी अवस्था में आपके उन गुणों की चर्चा, जो समय-समय पर हमें पुलकित और प्रमोदित, उद्यत और उत्साहित करते रहे हैं, यदि हमसे पूर्ण रूप में न हो सके तो कोई आश्चर्य नहीं।

हिन्दी भाषा और साहित्य के वर्तमान विकास की इस परितोषक अवस्था के साथ आपकी तपस्या, आपकी साधना, आपकी विद्वत्ता, आपकी दक्षता और आपकी तत्परता का ऐसा अखण्ड सम्बन्ध स्थापित हो गया है कि इस युग की उत्कृष्ट साहित्य-रचना का इतिहास आपकी उद्यमशीलता का इतिहास है। आपके ग्रन्थों की ही नहीं ग्रन्थकारों की रचना की है। आपने धूल में लोटते और चक्की में पिसते यथार्थ रत्नों को राजमुकुट में स्थान दिलाया है। आपके उद्देश्य, आपकी योजना तथा आपके आदर्श सदा उत्कर्षोन्मुख ही होते हैं। हमसे चाहे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आपका यथार्थ गुणानुवाद न बन पड़े, पर हमारे हृदय सर्वदा आपके प्रति कृतज्ञता के भाव से परिपूर्ण रहेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं।

आप ऐसे पुरुषरत्न को इतने दिनों तक अपने बीच प्रधान आचार्य और कार्य-प्रवर्त्तक के रूप में देख-देख हम अपना कितना गौरव समझते आ रहे थे, कितने गर्व का अनुभव करते आ रहे थे। अतः इस विशेष कार्यक्षेत्र से आपके अलग होने पर जो दुःख हमें हो रहा है वह एक-दो दिन का नहीं, अपनी जो गौरव-हानि हम समझ रहे हैं वह कभी पूरी होनेवाली नहीं! आप हमें छोड़कर जा रहे हैं पर जो उज्ज्वल स्मृति छोड़े जा रहे हैं वह निरन्तर हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी, हममें शक्ति और साहस का संचार करती रहेगी। इस विश्व-विद्यालय के भीतर तथा अन्यत्र भी हिन्दी के मान और प्रतिष्ठा के लिए आपने जो कुछ किया है वह चिरस्मरणीय रहेगा।

इस अवसर पर रह-रहकर यह भी मन में उठता है कि आप हमसे अलग कहाँ हो रहे हैं। आपका हमारा सम्बन्ध इस विद्यालय तक ही परिमित नहीं है। वह कहीं अधिक विस्तृत और चिरस्थायी है।

अन्त में हम ईश्वर से यही प्रार्थना करते हैं कि आप शतायु होकर इसी प्रकार हिन्दी के अभ्युदय का प्रयत्न करते रहें और हम आपकी सौम्य मूर्ति को अपने मनोमन्दिर में सदा प्रेमासन पर प्रतिष्ठित रखें।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अभिनन्दन पत्र

पत्र, प्रशंसापत्र अभिनन्दन पत्र आदि की रचना सामयिक और कामचलाऊ मानी जाती है पर प्रस्तुत उदाहरण एक अपवाद है। भाषा और भाव दोनों की दृष्टि से। हिन्दू-विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग की यह वस्तु अनेक विद्यार्थियों और साधकों को कर्मपथ-प्रदर्शन करेगी। इतना ही नहीं, मार्मिक पाठकों को इन पंक्तियों में मर्म की बातें भी मिलेंगी। स्तुति, प्रशंसा, आशंसा अथवा अभिनन्दन में यदि किसी विशिष्ट और अभ्यस्त साधक की वाणी रहती है तो उसके एक-एक वाक्य और एक-एक शब्द में विचार और भाव का समुद्र लहराता रहता है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

रामचरितमानस के सिद्धान्त, साधन और साध्य

रामचरितमानस के अनुसार सगुण राम और निर्गुण ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं। अवतीर्ण राम और परात्पर ब्रह्म राम दोनों एक हैं। इन दोनों की एकता केवल व्यावहारिक—कामचलाऊ नहीं, पारमार्थिक—सच्ची है। इनमें भेदबुद्धि रखनेवाले या ऐसा कहने-सुननेवाले के सम्बन्ध में गोस्वामी जी के क्या उद्‌गार है देखिये—

कहहिं सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाषंडी हरि पद विमुख जानहि झूठ न साच॥

अग्य अकोबिद अंध अभागी। काई विषम मुकुर मन लागी॥
लंपट कपटी कुटिल विसेषी। सपनेहुँ संत सभा नहिं देखी॥
कहहिं ते बेद असंमत बानी। जिन्हके सूझ लाभु नहिं हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥
जिन्ह के अगुन न सगुन विवेका। जल्पहिं कल्पित वचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाहीं। तिन्हहिं कहत कछु अघटित नाहीं॥
बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्हकर कहा करिअ नहिं काना॥

रघुकुलमणि श्रीराम सहजप्रकाश सच्चिदानन्द प्रसिद्धपुरुष प्रकट परावरनाथ परेश पुराण व्यापक ब्रह्म हैं। जो सबका प्रकाशन अनादि मायाधीश है, उसमें और अवधपति राम में उसी प्रकार कोई भेद नहीं जिस प्रकार तरल जल और घनीभूत हिमोपल में कोई भेद नहीं।

परमानन्द भगवान् श्रीराम के इस जीवलोक में अवतीर्ण होने का प्रयोजन सुरञ्जन, सज्जन-सुखदान तो है ही; प्रधान कारण उपासकों और भक्तों का वह अनन्य प्रेम और वह अनपायिनी भक्ति है जो 'भगवान् को साक्षात् लोचनगोचर होने के लिए विवश कर देती है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यदि गोस्वामी जी की साधना, अनुभूति, प्रतिभा, कला और विश्वतोमुखी विद्वत्ता अवतीर्ण राम के रूप, गुण, शील, स्वभाव को इस प्रकार हमारी श्रद्धा, अनुराग, स्नेह, प्रेम, सौहार्द, आशंसा, ममता, स्पृहा रुचि, उत्कण्ठा का पूर्ण पात्र न बना सकती तो उनका यह—'सीयराममय सब जग जानी'—अद्वैतवाद अथवा उनकी यह प्रत्यभिज्ञा कभी हमारे गले के नीचे न उतरती। धन्य हैं तुलसीदास! जिन्होंने व्यक्ताव्यक्त की ऐसी अनूठी एकता का हमें अनुभवसाक्षिक ज्ञान कराया।

अवतीर्ण श्रीराम का परम्पराप्राप्त चरित भी सामान्य नहीं, गूढ़ है। पण्डित मुनि तो उससे विरति की शिक्षा लेते हैं; पर हरि विमुख धर्मरतिशून्य विमूढ़ जन उसे देख-सुन कर मोह में पड़ जाते हैं। इसी हेतु उसका यथावत् प्रतिबिम्ब पड़ने के लिए तुलसी ने पहले ही अपने मन के आईने को श्रीगुरुचरण-सरोज-रज से साफ कर लिया था।

श्रीराम की व्यापक परब्रह्मता के विचार से यह चरित गूढ़ होने पर भी परिच्छिन्न—नपा-तुला—है, किसी व्यक्ति-विशेष का-सा प्रतीत होता है। इसलिए गोस्वामी जी तत्काल इसका समाधान करते हैं—

हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता॥
रामचन्द्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए॥

रामचरित की इसी अनन्ता और अगेयता से हहरकर तुलसी ने उसके मानस = हृदय = सार = रहस्य को ही ग्रहण किया। मानस सरोवर का रूपक तो है ही, मानस का अर्थ रहस्य भी समझना चाहिए। उमा ने हर्षित होकर शंकर से कहा था—

हरिचरितमानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमित सुख पावा॥

यह रामचरित का मानस श्रवण, कीर्तन, मनन आदि का विषय है, अनुकरण का विषय नहीं। अतः रामचरितमानस भक्तिप्रधान ग्रन्थ है, चरित-प्रधान नहीं। यह दूसरी बात है जो हम कवि के कृतित्व की सजीवता से पुलकित होकर चरित के अंश-अंश को आँखों के सामने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

घटित होते देखते हैं। गोस्वामीजी ने राम से अधिक जो राम-नाम की महिमा गाई है, वह भी इसकी भक्तिप्रधानता, मानस-विषयता का ही पोषक है।

यों तो गोस्वामीजी की समन्वय-बुद्धि सभी दार्शनिक सिद्धान्तों में अविरोध देखती, सभी को यथास्थान महत्त्व देती और सभी पक्षों का समर्थन करती है; पर उनके प्रधान के अनुरोध तथा ग्रन्थ के उपक्रम और उपसंहार के विचार से द्वैतसिद्धान्त और भक्तिपक्ष ही में उसका पर्यवसान प्रतीत होता है। यद्यपि द्वैतवाद में माया का कोई स्थान नहीं है और गोस्वामीजी ने माया की चर्चा की है, अतः द्वैतवाद से स्पष्टतः इनकी विमति जान पड़ सकती है, तथापि थोड़ा विचार करने से इनकी स्वतन्त्र दार्शनिकता का पता चल जाता है। ये 'सोयराम' और 'सब जग' में भेद डालकर उपासक को भ्रान्त करनेवाली अविद्या को माया समझते हैं; अद्वैतवादियों के समान जीव-ब्रह्म अथवा आत्मानात्म की अभिमत एकता पर आवरण डालकर भेदबुद्धि उत्पन्न करनेवाली अविद्या को नहीं। इनके मत में उपास्य और उपासक की पृथक् सत्ता तो रहेगी ही। देखिये, ये स्पष्टतः क्या कहते हैं—

मायासंभव भ्रम सब न व्यापिहहिं तोहिं।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहिं॥
सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥
सेवक सेव्य भावबिनु भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज अस सिद्धांत बिचारि॥
बारि मथे घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल॥

निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही॥
श्रुति सिद्धांत इहइ उरगारी। राम भजिअ सब काज बिसारी॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इतना ही नहीं, भेद का इन्होंने स्पष्ट उल्लेख भी किया है—

तातें उमा मोच्छ नहिं, पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो ॥
सगुन उपासक मोच्छ न लेहीं। तिन्ह कहुँ रामभगति निज देहीं ॥

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान ॥
राकापति षोड़स उअहिं तारा गन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ ॥

ऐसेहि बिनु हरि भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा ॥
हरिसेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापइ तेहि विद्या ॥
तातें नास न होइ दास कर। भेद भगति बढ़ाइ विहंगवर ॥

इसके अतिरिक्त अद्वैतवादियों के परम अभिमत ज्ञानमार्ग की विशद विवेचना करते जब प्रसङ्गात् दोनों की तुलना की है तो भक्ति-मार्ग को स्वतंत्र और ज्ञान-विज्ञान को भक्ति के अधीन माना है—

जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ॥
सो स्वतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥

इस भेद-भक्ति के साधनों का निर्देश भगवान् रामचन्द्र ने श्रीमुख से किया है—

भगति के साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहिं पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज-निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल मन बिषय बिरागा। तव मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहिं कँह जानइ दृढ़ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक शरीरा। गद-गद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम ॥

और भी मानस में प्रसङ्ग-प्रसङ्ग पर भक्ति की महिमा, स्वरूप, साधना, तारतम्य आदि का विस्तृत वर्णन है ।

ज्ञानदीपक और भक्तिमणि की तुलना भी स्पष्टतः भक्ति क अभिमत प्रधानता और उपादेयता की ओर संकेत करती है ।

भक्ति और ज्ञान के साध्य फलों में ग्रन्थकार ने भेद दिखलाया है। ज्ञान का फल मोक्ष कहा गया है—

धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना । ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥

पर रामचरितमानस के कथन-श्रवण से उत्पन्न भक्ति का फल मन का विश्राम है । यथा—

रामचरितमानस एहि नामा । सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा ॥
(उपक्रम)

बिनु बिश्वास भगति नहिं बिनु द्रवहिं न रामु ।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह विश्राम ॥
(अभ्यास)

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमन्द तुलसीदास हूँ ।
पायउ परम विश्राम राम समान प्रभु नाहीं कहूँ ॥
(उपसंहार)

मन का विश्रम साधारण वस्तु नहीं, बहुत बड़ी बात है । विनय-पत्रिका में बाबाजी बड़े मार्मिक ढंग से कहते हैं—

मन कबहूँ बिश्राम न मान्यो ।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सरज सुख जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो ॥
जदपि विषय सँग सह्यो दुसह दुख विषम जाल अरुजान्यो ।
तदपि न मूढ़ तजत ममता बस जानत हूँ नहिं जान्यो ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जन्म अनेक किए नानाविधि कर्म कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिवेक नीर बिनु बेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसीदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥

कदाचित् यह शंका किसी के मन में उठे कि भक्ति से तो मुक्ति मिलती नहीं, ज्ञान से मुक्ति मिलती है। अतः जन्म-मरण के दुःखों से दग्ध मुमुक्षु प्राणी के लिए सिवा ज्ञानमार्ग के और कहीं ठिकाना नहीं है, इसलिए गोस्वामीजी इसके लिए भी अवकाश नहीं छोड़ते। वे पहले ही कह चुके हैं कि सगुणोपासक मुक्ति की परवा नहीं करते, वे उसे चाहते नहीं। पर—

राग भगति सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

और—

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोच्छसुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरिभगति बिहाई॥
अस बिचारि हरिभगत सयाने। मुक्ति निरादर भक्ति लुभाने॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिन्दी की गद्यशैली

जानकार कहते हैं कि कविता का एक नाम है कहना। सचमुच कहना ही कविता है चाहे वह गद्य में हो, गद्य में हो अथवा मिली जुली गद्य-पद्य की चम्पू शैली में। इस कहने में सहभाव शब्द और अर्थ का योग, नाम और रूप का साथ) रहता है, इससे इसे साहित्य कहते हैं और इसीसे निर्णयवादी आलोचकों ने कहा है कि साहित्य के सह-भाव को परखने के लिये कहने का ढंग देखना चाहिये। कहने की रीति, कहने के गुण-दोष, कहने के लक्षण-अलंकार आदि भाषा के ढंग की जाँच से ही कही बात का रंग मालूम होता है। इस बात में सभी सयाने एक मत हैं। इससे साहित्यालोचन में शैली का बड़ा ऊँचा स्थान है और इसी से शैली की व्याख्या भी बड़ी ऊँची होती है। शैली का छोटा-सा सीधा अर्थ है भाषा की रीति-नीति। इस अर्थ में शैली साहित्य का एक तत्व है; पर शैली का जब बड़ा अर्थ लिया जाता है तब शैली में कर्त्ता की आत्मा दिखाई पड़ती है और शैली के भीतर अनुभूति को छोड़कर सभी कुछ आ जाता है। इसी अर्थ में कुछ लोग शैली को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

काव्य की आत्मा और साहित्य का सहभाव तक मान लेते हैं। क्योंकि अनुभूति तो हृदय की बात होती है। सामने आनेवाली तो वही पद-रचना है जिसे हम चाहें शैली कहें, भाषा कहें, रीति कहें, टेकनिक कहें अथवा काव्यपुरुष का शरीर। व्यवहार में काम इसीसे चलता है, इसी को लेकर साधक और भावक मिलने की कोशिश करते हैं। दो हृदयों को मिलानेवाली कला भी यही है। इसी के अभ्यास से साधना करनेवाले कवि और भावना करनेवाले आलोचक अपनी अपनी रचना करते हैं और इसी की जानकारी से पाठक रचना का सच्चा रस लेते हैं।

शैली की सत्ता और महत्ता सभी मानते हैं पर उसका संबंध स्थिर करने में कुछ विवाद होता जाता है। एक पक्ष कहता है कि साहित्य में अनुभूति प्रधान होती है अतः अनुभूति को परखना और उसके प्रभावों का वर्णन करना हमारा पहला काम है और शैली को देखना पीछे की बात है। दूसरा पक्ष कहता है, आत्मा तो भीतर छिपी रहती है, उसके देखने का ढोंग करके सामने की कला को क्यों ठुकराते हो। उस आत्मानु-भूति का क्या ठिकाना, उसके तो उतने ही नाम-रूप हैं जितने अनुभव करनेवाले। इससे सोच-समझ कर बुद्धि से काम करो। साहित्य के शब्द और अर्थवाले शरीर की रचना और बनावट देखो, सौन्दर्य आँको और मूल्य-निर्धारण करो। इस प्रकार दो वाद खड़े हो जाते हैं- एक है रसवाद और दूसरा है रीतिवाद। नई भाषा में एक प्रभाववाद है और दूसरा निर्णयवाद। इन दोनों से भिन्न एक निष्पक्ष-वाद है जिसमें दोनों पक्ष एक हो जाते हैं। इसके अनुसार छोटे बड़े का भेद नहीं होता। भाव और भाषा, सत्य और शैली, अनुभूति और कला, हृदय और बुद्धि—दोनों में बराबरी का नाता रहता है। जिसमें दोनों का उचित योग रहता है वही साहित्य सच्चा और सफल होता है। जिस प्रकार मानव जीवन में आत्मा और शरीर का संपर्क रहता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कोई छोटे-बड़े का भाव नहीं, उसी प्रकार साहित्य-रचना में रस और रीति का अभिन्न सम्बन्ध है, कोई चढ़ा ऊपरी का भाव नहीं।

शैली साहित्य का शरीर है। उसे समझने के लिये आत्मा को बिना भुलाये अंगी के सभी अंगों को देखना चाहिये। इस परिचय को और भी घनिष्ट करने के लिये यह भी देखना चाहिये कि साहित्य का यह व्यक्ति किस 'जाति' का है और उस जाति का नाम-रूप के भेदानुसार साहित्य संसार में क्या स्थान है। साहित्य संसार बहुत बड़ा है। यों तो सभी लिखी पढ़ी वस्तु साहित्य में आ जाती है, पर विचार के अनुसार साहित्य के तीन मुख्य भेद होते हैं। ज्ञान शक्ति और प्रयोग ज्ञान का साहित्य उपयोगी होता है, गणित, विज्ञान, इतिहास आदि इसी के भीतर आते हैं। शक्ति का साहित्य हृदय की शक्ति बढ़ाता है, इससे वह उपयोगी नहीं कहा जाता। आचार्य इसी 'शक्ति' को जीवन का सर्वस्व मानते हैं और शक्ति के साहित्य को सच्चा साहित्य। इससे साहित्य-मीमांसा में ज्ञान का साहित्य प्रवेश ही नहीं पाता, वहाँ केवल काव्य, नाटक आदि वे ही कृतियाँ आती हैं जिनमें ऐसी शक्ति हो कि वे अपने भाव और भाव-अव्यक्ति करने के ढंग के कारण सभी नरनारियों को रुच सकें और जिनका प्रधान लक्ष्य हो अपनी अभिव्यंजना-शैली के द्वारा सौन्दर्य और आनन्द का अनुभव कराना। इस शुद्ध साहित्य के कुछ सगोतिया भी हैं जो साहित्य संसार में कार्य की दृष्टि से अच्छा स्थान पा जाते हैं। भेद करने के लिए हम उन्हें प्रयुक्त साहित्य का नाम दे देते हैं। रूप में तो कोई भेद होता नहीं। जिस साहित्य का निर्माण किसी प्रयोजन से होता है, जिसमें कोई आध्यात्मिक अथवा नैतिक उपदेश रहता है, जिसमें लोकसंग्रह और लोकमंगल का सिद्धान्त स्पष्ट रहता है, वह प्रयुक्त साहित्य कहलाता है, और जिसका निर्माण हृदय की अकारण प्रेरणा से होता है, किसी प्रयोजन विशेष से नहीं, जिसमें कोई स्पष्ट उपदेश, मत अथवा सिद्धांत

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नहीं रहता, वह शुद्ध साहित्य कहलाता है। दोनों की रूपरचना एक सी होती है। दोनों को साहित्य की मीमांसा में स्थान मिलता है। दोनों मे लोक-रुचि का रंजन होता है। दोनों में ही सद्भावना रहती है, ज्ञान का आलोक रहता है। दोनों में भेद है तो केवल एक—वह है सत्त्वोद्रेक, रस-प्रतीति या आनन्दानुभूति का। शुद्ध साहित्य अपने आप में पूर्ण होता है—उसमें जो आनन्द मिलता है वह प्रयुक्त साहित्य में कहाँ? इसी से आनंदवादी, रसवादी, कलावादी और सौंदर्यवादी साहित्यालोचक प्रयुक्त साहित्य को सच्चा और ऊँचा साहित्य नहीं मानते। पर व्यवहार में प्रयुक्त साहित्य का बोलबाला रहता है। आदर्शवादी, यथार्थवादी, जीवनवादी अथवा प्रगतिशील आदि की उपाधियाँ उसे समय-समय पर उसकी सेवा के बदले में मिला करती हैं। उसकी कीर्ति भी समाज में रहती ही है, कभी कभी उसका आदर इतना अधिक बढ़ जाता है कि बड़े-बड़े संत, महात्मा, कवि, कर्त्ता, आचार्य और आलोचक उसी को सर्वोत्तम साहित्य मानने लगते हैं, वे कहने लगते हैं कि जिस साहित्य में हमारा जीवन नहीं, समाज और देश का प्रगति नहीं, आदर्श और यथार्थ का उपदेश नहीं, वह साहित्य नहीं है। इस प्रकार वाद विवाद बहुत दिनों से चला आ रहा है और मेल करानेवालों का मत भी हमें मालूम है कि व्यवहार में सरस नीतिवादी साहित्य का लोहा लेना चाहिए। और साहित्य के निराले लोक में कलावादी (अर्थात् शुद्ध) साहित्य का।

अर्थ की दृष्टि से इस प्रकार साहित्य की सामान्य सीमा मान लेने पर भाषारूप की दृष्टि से साहित्य के दो भेद किए जाते हैं १ पद्यसाहित्य और २ गद्यसाहित्य। जिस भाषा में गेयता है, तुकान्त अथवा अतुकान्त छन्दों की बाँध है, वह पद्य है और जो केवल पाठ्य है, गेय नहीं, वह गद्य है। कभी-कभी साहित्य की रचना गद्य पद्य दोनों के मिश्ररूप में भी होती है तथापि उसे आधुनिक आलोचक गद्य की सीमा के भीतर

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ही एक विशेष स्थान दे देते हैं। इन दो भेदों के भीतर अनेक रूप और प्रकार होते हैं।

पद्यसाहित्य के भीतर पाँच मुख्य रूप आते हैं—महाकाव्य, काव्य, खण्डकाव्य, गीतिकाव्य, और मुक्तक। इसी प्रकार गद्यसाहित्य के भीतर भी मुख्य रूप पाँच ही होते हैं—कहानी, निबंध, गद्यकाव्य, उपन्यास और नाटक। कभी कभी चम्पू काव्य और आलोचना की भी गणना इन्हीं के साथ कर ली जाती है। हिन्दी साहित्य में इन सभी रूपों के उदाहरण मिलते हैं। कामायनी, प्रियप्रवास, पंचवटी, पल्लव, आँसू आदि पद्य के रूप, जोग की झाँकी, साधना, गबन, ध्रुवस्वामिनी, यशोधरा और गोस्वामी तुलसीदास गद्य के ऐसे ही प्रसिद्ध उदाहरण हैं। इन्हें देखकर तो साहित्य रूपों के लक्षण गढ़े जा सकते हैं।

इस प्रकार साहित्य के मुख्य रूपों का परिचय हो जाने पर गद्यशैली का अध्ययन सहज हो जाता है।

यों तो शैली के साधारण अध्ययन में भाषा के समास और व्यास, भाव की धारा और तरंग, कथन की संवाद-प्रचुरता और वर्णन-प्रधानता, अभिव्यञ्जना-पद्धति की अंतर्मुखी और बहिर्मुखी वृत्ति, प्रभाव की सौम्यता और उग्रता आदि सामान्य और गौण बातों का विचार होता है। सामान्य पाठकों को इन्हीं का ज्ञान आवश्यक होता है। इसी से आलोचना साहित्य में समास-शैली, व्यास-शैली, धारा-शैली, तरंग-शैली, वर्णनात्मक शैली, आत्माभिव्यञ्जक शैली, अभिव्यञ्जक शैली, प्रसन्न शैली, उग्र शैली आदि नाम प्रसिद्ध हो गए हैं। पर अध्ययन को विशेष गंभीर और तात्त्विक बनाने के लिए प्रत्येक साहित्य रूप में भाषा और व्यक्ति का तात्विक विचार करना पड़ता है। भाषा तत्त्वों का अध्ययन करने के लिए कोमला, परुषा आदि वृत्ति, वैदर्भी, पाञ्चाली आदि रीति और अभिधा, लक्षणा, व्यंजना आदि शक्तियों का विचार

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

करना पर्याप्त होता है। पर साहित्य के व्यक्ति का तात्त्विक विचार करने के लिए प्रत्येक रचना के तत्त्वों की अलग अलग आलोचना करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए कहानी का तात्त्विक विचार करते समय कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, वर्णन, भाषा और शैली, तथा प्रयोजन—इन छः तत्त्वों की विवेचना करनी चाहिए। इसी प्रकार नाटक, उपन्यास, निबंध आदि सभी साहित्य रूपों के कुछ मुख्य तत्त्व होते हैं। उनका विचार करके ही उस रचना के गुणदोषों का निर्णय किया जाता है। और शैली की सच्ची परख तभी होती है जब हम किसी रूप के भीतरी तत्त्वों से पूर्ण परिचय पा लेते हैं। इसी से शैली का सच्चा अध्ययन और निर्णयवादी आलोचना एक ही कोटि की चीज मानी जाती हैं। अतः हिन्दी गद्यशैली का अध्ययन करने के लिए हिन्दी के गद्यसाहित्य के सभी साहित्य रूपों से परिचय करना और उनके तत्त्वों की समीक्षा करना आवश्यक है। ऐसा अध्ययन करके ही विद्यार्थी गद्यशैली का सच्चा ज्ञान प्राप्त कर सकता है और अभ्यास से अच्छा गद्यलेखक बन सकता है।

———

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu